अर्द्ध कथानक

कविवर बनारसीदास

प्रकाशक :
अ. भा. जैन युवा फैडरेशन
ए-4, बापूनगर, जयपुर-302015

सत्साहित्य प्रकाशन ब्यूरो का अठारहवां पुष्प

अर्द्धकथानक
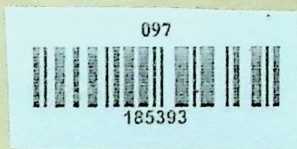
लेखक :

कविवर बनारसीदास

सम्पादक :

स्व० नाथूराम प्रेमी
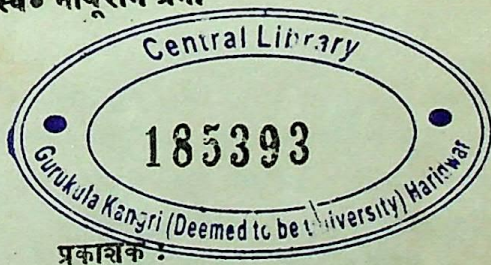
प्रकाशक :

अखिल भारतीय जैन युवा फेडरेशन

ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२०१५

प्रथम संस्करण–१९४३
द्वितीय संस्करण–१९५७
[संशोधित साहित्यमाला ठाकुरद्वार, बम्बई]
तृतीय संस्करण : ३२००
[९ फरवरी, १९८७ई०]

मूल्य : पांच रुपये

मुद्रक :
इण्डिया प्रिंटर्स
दिल्ली

प्रकाशकीय

जिन-अध्यात्म एवं हिन्दी साहित्य जगत में कविवर बनारसीदास एक जाने-माने व्यक्तित्व हैं। उनके 'अर्द्ध कथानक' को हिन्दी का आद्य आत्मकथा साहित्य कहलाने का गौरव प्राप्त है। उनका 'समयसार नाटक' अध्यात्मप्रेमी जगत के कंठ का हार लगातार साढ़े तीन सौ वर्ष से बना हुआ है।

आगामी ९ फरवरी १९८७ को उनके जन्म को चार सौ वर्ष पूरे होने जा रहे हैं। उनका चतुर्थ शताब्दी वर्ष बड़े ही उत्साह से मनाने का निर्णय अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन ने बीना (म० प्र०) में सम्पन्न अपने गत अधिवेशन में लिया था। इस अवसर पर उनकी अनुपलब्ध कृतियों को प्रकाशित करने का निर्णय भी लिया गया था। 'समयसार नाटक' तो निरन्तर उपलब्ध रहता ही है, पर 'अर्द्ध कथानक' व 'बनारसी विलास' बहुत समय से अनुपलब्ध हैं। अतः इनका प्रकाशन करना आवश्यक समझा गया।

प्रस्तुति कृति 'अर्द्ध कथानक' का सम्पादन यशस्वी लेखक एवं पत्रकार स्व. पण्डित नाथूरामजी प्रेमी ने किया था और प्रकाशन भी उन्होंने ही किया था। अब इस कृति को आफसेट पद्धति से अपने अठारहवें पुष्प के रूप में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की ओर से प्रकाशित किया जा रहा है।

कविवर बनारसीदास जी के विषय में तो यहाँ क्या लिखें। 'अर्द्ध कथानक' को पढ़कर आप स्वयं उनके विषय में सब कुछ जान जावेंगे। उन्होंने स्वयं अपनी लेखनी से अपने जीवन के विभिन्न पहलुओं को खुलकर उजागर किया है। 'अर्द्ध कथानक' पढ़ते समय सारी घटनायें चलचित्र की भांति आपके नेत्र पटल पर आती-जाती नजर आवेंगी, जिससे आपका भरपूर मनोरंजन तो होगा ही साथ ही तात्कालिक परिस्थितियों की जानकारी भी मिलेगी। आशा है यह कृति आपको पसंद आवेगी।

इस कृति का प्रकाशन जिस संस्था से हो रहा है, उस अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन का संक्षिप्त परिचय देना यहाँ अप्रासाङ्गिक नहीं होगा—

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन—

समाज में विभिन्न उद्देश्यों से प्रेरित अनेक युवा संगठन पहले से ही मौजूद हैं, परन्तु ऐसे युवा संगठन की नितान्त आवश्यकता थी, जो देव-गुरु-धर्म में आस्थावान यत्र-तत्र बिखरे जैन युवा साथियों में देव-गुरु-धर्म की महिमा, सदाचारमय जीवन की प्रेरणा तथा जिनागम के अभ्यास पूर्वक आत्महित की रुचि उत्पन्न कर सकें। प्रचलित विचारधाराओं को तर्क एवं आगम की कसौटी पर कसकर आगम सम्मत विचारधारा को प्रोत्साहित कर सकें। इस उद्देश्य से दिनांक १ जनवरी १९७७ को अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन का उदय हुआ।

प्रारंभ में परस्पर सम्पर्क एवं पत्र व्यवहार के माध्यम से संगठन की ३५ शाखायें स्थापित की गईं, जिसमें ३४७ सदस्य थे। आज हम अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन के परिवार को एक विशाल वट-वृक्ष के रूप में देख सकते हैं। अब तक फैडरेशन की २९५ शाखायें तथा ११,८३८ सदस्य बनाए जा चुके हैं। संस्था की रीति-नीति एवं आर्थिक सुरक्षा की दृष्टि से इसके एक ट्रस्ट का गठन किया गया है, जिसे रजिस्टर्ड करा लिया गया है। आशा है इस ट्रस्ट की देखरेख में यह संगठन चिरकाल तक अपने उद्देश्यों की पूर्ति में संलग्न रहेगा।

केन्द्रीय कार्यकारिणी वर्ष १९८७-८८ के लिए

१. ब्र० जतीशचन्द जैन शास्त्री, सनावद	अध्यक्ष
२. ब्र० कैलाशचंदजी 'अचल' शास्त्री, तलोद	उपाध्यक्ष
३. श्री अखिल बंसल, जयपुर	उपाध्यक्ष
४. श्री परमात्मप्रकाश भारिल्ल, जयपुर	उपाध्यक्ष
५. श्री विपिनकुमार जैन शास्त्री, बम्बई	महामंत्री
६. श्री अध्यात्मप्रकाश भारिल्ल, जयपुर	मंत्री
७. श्री अभयकुमार जैन शास्त्री, जयपुर	कोषाध्यक्ष
८. श्री शीतल श्रीधर शेट्टी, अब्दुललाट	प्रचारमंत्री
९. ब्र० अभिनन्दनकुमार जैन शास्त्री, इन्दौर	सदस्य

१०. श्री प्रदीपकुमार झांझरी, उज्जैन — सदस्य
११. श्री राजेन्द्रकुमार मानोरिया, अशोकनगर — ,,
१२. श्री विपुल मोटाणी, बम्बई — ,,
१३. श्री आदिनाथ नखाते, नागपुर — ,,
१४. श्री राकेशजैन शास्त्री, नागपुर — ,,
१५. श्री सतीश अमृतलाल मेहता, फतेपुर — ,,

युवा फैडरेशन अपने निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु कटिबद्ध एवं सक्रिय रहे और उसके कदम भटकें नहीं, एतदर्थ निदेशक मण्डल का गठन किया गया है, जिसमें निम्नलिखित महानुभाव हैं —

१. श्री नेमीचन्द पाटनी, आगरा (उ० प्र०)
२. डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल, जयपुर (राज०)
३. पण्डित ज्ञानचन्दजी जैन, विदिशा (म० प्र०)
४. श्री कान्तिभाई मोटानी, बम्बई (महाराष्ट्र)
५. ब्र० पण्डित जतीशचन्द शास्त्री, सनावद (म० प्र०)
६. ब्र० पण्डित अभिनन्दनकुमार शास्त्री, इन्दौर (म० प्र०)

अपने उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु संस्था द्वारा निम्न गतिविधियों का संचालन किया जा रहा है —

१. साहित्य प्रकाशन :—पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट एवं श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट द्वारा आचार्यों एवं विशिष्ट विद्वानों के ग्रन्थ प्रकाशित किये जाते हैं, अतः हमने पूजन-विधान सम्बन्धी प्रकाशनों को मुख्यता दी है। अब तक १७ पुष्पों की १,२६,००० प्रतियाँ प्रकाशित की जा चुकी हैं, इस वर्ष कविवर पण्डित बनारसीदास द्वारा रचित 'बनारसी विलास' एवं 'अर्द्धकथानक' के प्रकाशन का संकल्प है।

२. शिक्षण-शिविरों का आयोजन :—युवा वर्ग में तत्वरुचि जागृति करने के उद्देश्य से प्रतिवर्ष भिन्न-भिन्न स्थानों पर सात दिवसीय शिविर लगाये जाते हैं। सन् १९८४ में मुरार (ग्वालियर) में प्रथम शिविर,

६८५ में बीना (म. प्र.) में द्वितीय शिविर एवं १९८६ में मलाड बम्बई महाराष्ट्र) में तृतीय शिविर सफलता पूर्वक आयोजित किये जा चुके हैं।

३. समाज को प्रवचनकार विद्वान उपलब्ध कराना:—पर्यू षण पर्व ; अतिरिक्त वर्ष के तीनों अष्टान्हिकाओं, महावीर जयन्ती आदि पर्वों में था इसके अतिरिक्त लगने वाले शिक्षण-शिविरों में समाज के आग्रह पर वचनकार व कक्षा लेने वाले विद्वानों की व्यवस्था की जाती है। अभी तक नेक विद्वानों को उक्त पर्वों पर समाज में भेजा जा चुका है। इस व्यवस्था ी सफलता का मुख्य श्रेय आदरणीय ब्र० पण्डित जतीशचन्द जी शास्त्री ो है, जिनकी वजह से विद्वानों का सहयोग निरन्तर मिलता रहा है।

४. प्रवचन प्रसार योजना :—पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के ाध्यात्मिक प्रवचन एवं तात्विक प्रवचनकार विद्वानों के प्रवचनों का चार इस योजना का मुख्य उद्देश्य है। साथ ही आध्यात्मिक भजन, ाक्ति आदि के कैसिट भी प्रसारित किये जाते हैं। अभी तक इस विभाग ा १५,६१० कैसिट समाज में पहुँचाये हैं।

५. वार्षिक अधिवेशन एवं कार्यकर्ता सम्मेलन :—शाखाओं के ातिनिधियों से विचार विमर्श करके गतिविधियों की जानकारी एवं नवीन ोजनाओं पर विचार-विमर्श करने के उद्देश्य से प्रतिवर्ष अधिवेशन एवं ंचकल्याणक प्रतिष्ठा, प्रशिक्षण-शिविर, जयपुर शिक्षण-शिविर तथा ार्षिक मेला आदि विशेष अवसरों पर कार्यकर्ता सम्मेलनों का आयोजन केया जाता है। अभी तक कुरावड़, चांदखेड़ी, मलाड़-बम्बई, फिरोजाबाद इन्दौर, भीलवाड़ा, भिण्ड, मुरार-ग्वालियर, बीना तथा बम्बई में वार्षिक ाधिवेशन सम्पन्न हुये तथा अजमेर, बड़ौदा, जयपुर (पांचबार) अहमदाबाद, बागीदौरा तथा सागर में कार्यकर्ता सम्मेलन हुये।

६. जैनपथ प्रदर्शक में 'युवा भारत' स्तम्भ :—फैडरेशन की गति-विधियों की जानकारी हेतु जैनपथ प्रदर्शक (पाक्षिक) में 'युवा भारत' स्तम्भ प्रकाशित किया जाता है।

७. स्मारिका प्रकाशन :—फैडरेशन द्वारा अभी तक 'दिव्यालोक' स्मारिका का प्रकाशन तीन पुष्पों में किया गया है। इसी श्रृंखला में

नवीन प्रकाशन 'पण्डित बाबूभाई स्मृति विशेषांक' को समाज ने बहु
सराहा है।

८. कविवर बनारसीदास जयन्ती का आयोजन :—अध्यात्मरस
ओतप्रोत पण्डित बनारसीदासजी के जीवन एवं उनकी कृतियों से समा
के अधिक से अधिक लोग परिचित हों—इस उद्देश्य से युवा फैडरेशन
अपनी समस्त शाखाओं को पण्डित बनारसीदास जयन्ती समारोह आय
जित करने की प्रेरणा दी है। गत २० फरवरी १९८६ को उनकी ३९९
जयन्ती का आयोजन लगभग ५० शाखाओं द्वारा किया गया था। आगा
४००वीं जयन्ती भी अधिक से अधिक स्थानों पर बृहद रूप में मनाने
संकल्प है। इस कार्यक्रम के सफलता पूर्वक संचालन हेतु श्री अखिल बंस
को संयोजक नियुक्त किया गया है।

९. शाखाओं एवं सदस्यों का सम्मान :—शाखाओं एवं सक्रि
सदस्यों के तात्विक कार्यों को प्रोत्साहन हेतु केन्द्रीय समिति उन्हें विशे
अवसरों पर सम्मानित करती है।

साहित्य प्रकाशन हेतु उक्त ट्रस्ट के अन्तर्गत एक अलग फण्ड बन
का संकल्प किया गया है, जिसमें कार्यकारिणी के अध्यक्ष ब्र० जतीशचंद
शास्त्री एवं सदस्य ब्र० अभिनन्दनकुमार जी शास्त्री के अथक् प्रयासों
अब तक १,४३,२१६ रुपये प्राप्त हो चुके हैं। एतदर्थ इन दोनों महानुभ
का जितना आभार माना जाये, थोड़ा है। प्रस्तुत प्रकाशन को अल्प मूल्य
उपलब्ध कराने के उद्देश्य से जिन महानुभावों का आर्थिक सहयोग
प्राप्त हुआ है उसके लिये हम सभी दातरों का हृदय से आभार मानते
(सूची पृष्ठ ८ पर प्रकाशित है) साथ ही साहित्य प्रकाशन एवं प्रच
विभाग के प्रबन्धक श्री अखिल बंसल, एम. ए., जे. डी. भी बधाई के प
हैं, जिनका सहयोग प्रकाशन एवं बाईण्डिंग व्यवस्था में प्राप्त हुआ है।

सभी आत्मार्थी बन्धु इस पुस्तक को पढ़कर लाभान्वित हों अ
अपने जीवन को निर्मल बनाते हुये मुक्तिपथ का मार्ग प्रशस्त करें, इ
आशा और विश्वास के साथ— **मंत्री, सत्साहित्य प्रकाशन ब्यूर**

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेश

प्रस्तुत ग्रंथ की कीमत कम करने वाले दातारों की नामावली

1.	श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन पंचायती मन्दिर ताजगंज–आगरा	४०१/–
२.	,, मनोहरलाल सुशीलकुमारजी काला, इन्दौर	१५१/–
३.	,, भागचन्दजी चौधरी, ललितपुर	१५१/–
४.	सुभाष कैमिस्ट्स एण्ड टौबिकोनिस्ट मिल्स, जुहु बम्बई	१५१/–
५.	,, जयन्तीभाई धनजी भाई दोशी, बम्बई	१११/–
६.	,, जगदीशप्रसादजी जैन, दिल्ली	१०१/–
७.	,, जमनाप्रसादजी जैन, ललितपुर	१०१/–
८.	सौ. चम्पा कठरया ध. प. श्री बाबूलालजी कठरया, ललितपुर	१०१/–
९.	स्व॰ श्रीमती रामकुंवरबाई की स्मृति में, हस्ते- श्री दि० जैन स्वाध्याय मण्डल–ललितपुर	१०१/–
१०.	श्री सेठ सुन्दरलालजी जैन, ललितपुर	१०१/–
११.	सौ. सेठानी कैलाशवती जैन, ललितपुर	१०१/–
१२.	गुप्तदान, हस्ते–श्री दिगम्बर जैन श्री दि. जैन स्वाध्याय मण्डल–ललितपुर	१०१/–
१३.	श्री राजकुमार अनिलकुमारजी गोधा, जयपुर	१०१/–
१४.	,, रखबचन्द नेमीचन्दजी पहाड़िया, पीसांगन	१०१/–
१५.	,, चौथूराम जयकुमारजी जैन, जयपुर	१०१/–
१६.	मे. नन्दराम सूरजमल जैन, दिल्ली	१०१/–
१७.	चौ. फूलचन्दजी जैन, बम्बई	१०१/–
१८.	फुटकर	४५९/–

कुल राशि रु. **२६२६/–**

विषय-सूची

परिशिष्ट

पूरी पृष्ठसंख्या—८+४+२८+९६+१५२=२८८

एक असफल व्यापारीकी आत्मकथा

जब प्रेमीजी द्वारा संपादित अर्ध-कथानकका पहला संस्करण पढ़नेका अवसर मिला तो मैं उस ग्रंथसे अतीव प्रभावित हुआ। उसका कारण यह था कि बनारसीदासने साहित्यके उस अंगको जिसे हम आत्मकथा कहते हैं और जिसका प्रयोग सारे प्राचीन भारतीय साहित्यमें बहुत सीमित रूपसे हुआ है केवल अपनाया ही नहीं उसे एक बहुत निखरा हुआ रूप दिया। प्राचीन भारतीय साहित्यका उद्देश्य स्वार्थ न होकर परमार्थ था जिसमें भिन्न भिन्न जनोंकी अनुभूतियाँ मिल कर अनुश्रुतिका रूप ग्रहण कर लेती थीं और यही अनुश्रुतियाँ एकीभूत होकर भारतीय जीवन और संस्कृतिका वह रूप निमोण करती थीं जिसके बाहर निकल कर स्वानुभवसे विचार करना और नवीन दिशाकी ओर संकेत देना कुछ दुस्तर हो जाता था। इसके यह माने नहीं होते कि भारतीय संस्कृतिमें नवीन विचार-धाराओंकी कमी थी। समयान्तरमें अनेक विचारधाराएँ इस देशमें प्रस्फुटित हुईं पर वे सब अनेक विवादोंके होते हुए भी भारतीय संस्कृतिकी बृहद् अनुश्रुतिका एक अंग बनकर रह गईं। प्राचीनताके प्रति भारतीय जनका इतना बड़ा सम्मोह देखकर ही कालिदासने 'पुराणमेतन्न हि साधु सर्वम्' का उपदेश किया तथा प्रसिद्ध जैन तार्किक सिद्धसेन दिवाकरने स्वतन्त्र रूपसे उस बातकी पुष्टि की, पर फल कुछ विशेष न निकला।

समष्टि और समवेतको लेकर साहित्य निर्माण करनेकी भारतीय भावनाका फल यह हुआ कि जीवनकी अनेक अनुभूतियाँ जिन्हें लेखक अपने ढंगसे व्यक्त कर सकते थे समष्टिमें मिल गईं और अनेक अनुभवोंके आधार साहित्यका और विशेष-कर कथा-साहित्यका एक रूढ़िगत रूप खड़ा होता गया जिसके निर्माणमें एकका हाथ न होकर बहुतोंका हाथ दीख पड़ता है। पर भारतीय तत्त्वचिन्तनका उद्देश्य परलोकप्राप्ति था तथा जीवनसंबंधी दूसरे विषय जैसे इतिहास, सामाजिक व्यवस्था, व्यापार, खेल, कुतूहल इत्यादि गौण ही रह गए। भारतीय कथासाहित्यका अवलोकन करनेसे इस बातका पता चलता है कि उसमें जीवन, समाज, लौकिक धर्म, व्यापार इत्यादि संबंधी ऐसी सामग्री मिलती है जिसका इकट्ठा करना एकका काम न

होकर अनेकोंका काम हैं और इस दृष्टिसे जातक कथाओं, जैन कथाओं तथा बृहत् कथा और उससे निकले कथासाहित्यमें हम अनेक भारतीयोंके आत्मचरितोंका संकलन देख सकते हैं, पर ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे हम यह नहीं कह सकते कि कहानियोंको रूप देनेवाले वे आत्मचरित किसी विशेष समयके थे अथवा नहीं।

आत्मचरित-साहित्यके इतिहासमें बौद्ध साहित्यके 'थेर गाथा' और 'थेरी गाथा' के नाम सबसे पहले आते हैं। थेरगाथा खुद्दकनिकायका आठवाँ अध्याय है जिसमें बुद्धकालीन अनेक बौद्ध भिक्षुओंने अपने जीवनवृत्त और अपनी नई पाई हुई आत्मस्वतंत्रताका छन्दोबद्ध वर्णन किया है। उसी तरह खुद्दकनिकायके नवें अध्यायमें भिक्षुणियोंके छन्दोबद्ध आत्मचरित हैं। इन आत्मचरितोंमें एक नवीनता है और आत्मनिवेदन करनेका एक नया ढंग, फिर भी वे आत्मचरित इतने छोटे हैं कि जीवनके अनुभवोंकी उनमें थोड़ी-सी ही झलक मिलती है।

संस्कृत साहित्यमें आत्मचरित लिखनेकी शैलीका कबसे विस्तार हुआ यह कहना संभव नहीं। यों तो कथासाहित्यका आधार वास्तविक घटनाओंपर ही अवलंबित है पर आत्मचरितकी श्रेणीमें तो बाणभट्टकृत हर्षचरित ही आता है। बाणभट्टके अनुसार हर्षचरित आख्यायिका है जिसमें ऐतिहासिक आधार होना चाहिए। आख्यायिकाके अनुरूप हर्षचरितमें हर्ष (६०६-६४८) की जीवन-सम्बन्धी घटनाओंका वर्णन है जिनमें कुछ बाणद्वारा स्वयं अनुभूत और कुछ सुनी सुनाई हैं। पर ग्रंथके आरंभमें बाणने अपने आत्मचरितके कुछ पहलुओंका वर्णन किया है जिससे उनके देशांतरभ्रमण, वस्तुओंकी जानकारी प्राप्त करनेकी उत्सुकता तथा चित्रग्राहिणी बुद्धिका पता चलता है। हर्षचरितमें इतिहास, साहित्य और आत्मचरितका कुछ ऐसा अपूर्व मेल है कि जिसका जोड़ साहित्यमें नहीं मिलता। प्राचीन संस्कृत-साहित्यमें केवल हर्षचरित ही एक ऐसा ग्रंथ है जिससे हमें एक महान् साहित्यकारके परिवार, बंधुबांधवों, इष्टमित्रों तथा जीवनके और पहलुओंका पता लगता है।

आत्मचरित और इतिहासके अपूर्व सम्मिश्रणका पता हमें बिल्हणकृत 'विक्रमांकदेवचरित' से चलता है। बिल्हण प्रकृतिसे ही घुमक्कड़ थे। कश्मीरके राजा

कालशके युगमें उनकी घुमक्कड़ी शुरू हुई और उन्होंने मथुरा, कनौज, और डाहलकी यात्रा की तथा कुछ दिनोंतक डाहलके कर्ण, अणहिल्वाड़के कर्णदेव त्रैलोक्यमल्ल (१०६४-११२७) तथा कल्याणके विक्रमादित्य छठे (१०७६-११२७) के यहाँ रहे तथा सन् १०८८ में विक्रमांकदेवचरितकी रचना की। उनके ग्रंथका विषय तो इतिहास है पर रह रहकर हम कविकी आत्मकथाकी, जिसमें कोरी तीखी बातें सुनाना भी आ जाता है, झलक पाते हैं।

मुसलमानोंके उत्तर भारतमें अधिकार पानेके बाद फारसीमें एक ऐसे साहित्यका सृजन हुआ जिसमें इतिहास और आत्मकथाका मेल है। ऐसे साहित्यकारोंमें अमीर खुसरोका नाम अग्रणी है। खुसरो (१२५५-७२५ हि०) कवि, सिपाही, संगीतज्ञ और सूफी थे। उनका प्रभाव काव्यक्षेत्रमें इतना बढ़ा कि उनके पहलेके कवियोंके नामतक लोग भूल गए। उन्होंने अपने जीवनमें सात सुल्तानोंके राज्य देखे, उनमेंसे कइयोंके साथ वह लड़ाइयोंपर गए और पाँच सुल्तानोंकी सेवामें ओहदेदार रहे। अपने जीवनमें उन्होंने अनेक उतार-चढ़ाव देखे, सुल्तानोंकी विलासिता और रागरंग देखा तथा तत्कालीन बर्बरताओं-पर आँसू बहाए। अपने दीवानोंके दीबाचोंमें खुसरोने खुलकर अपनी रामकहानी कही है और उनकी ऐतिहासिक मसनवियोंमें भी आँखों देखी अनेक घटनाओंका जिक्र है। ऐजाज खुसरवीमें उनके पत्रोंका संग्रह है जिनसे मध्यकालीन जीवनके अनेक छोटे छोटे अंगोंपर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। यह सच है कि खुसरोने कोई अलगसे अपना आत्मचरित नहीं लिखा, पर दीवानोंके दीबाचों और ऐतिहासिक मसनवियोंमें उसने अपनी रामकहानी इतनी छोड़ दी है कि उसके आधारपर ही मध्यकालके इस महान पुरुषका पूरा आँखों देखा चित्र खड़ा हो जाता है।

मुसलमान बादशाहोंमें तो आत्मचरित लिखनेकी परिपाटी ही चल पड़ी थी और इसमें संदेह नहीं कि बाबर और जहाँगीरके आत्मचरितोंमें उस मनुष्यत्वका दर्शन और आसपासकी दुनियाका विवरण मिलता है जिसका पता मध्यकालीन साहित्यमें कम ही दिखलाई पड़ता है। मध्य एशियाने हमें तैमूरलंग, बाबर, हैदर और अबुल गाजीके आत्मचरित दिए हैं। फारसके शाह तहमास्पका आत्म-चरित हमें आकर्षित करता है, तथा भारतके गुलबदन बेगम और जहाँगीरके आत्मचरित प्रसिद्ध हैं।

बादशाहोंके इन आत्मचरितोंकी अपनी विशेषता है। तत्कालीन इतिहास प्रशंसात्मक है और जहाँ प्रशंसाकी आवश्यकता नहीं भी होती वहाँ भी लेखक अपने पासकी दुनियाकी चकाचौंधसे घबराकर ऐसा चित्र खींचते हैं जिससे चित्रित व्यक्ति अपनी असलियत खो बैठता है। पर बादशाहोंकी दूसरी बात थी। उन्हें न चकाचौंध होनेकी आवश्यकता थी न किसीसे डरनेकी, और इसीलिए उन्होंने अपने समसामयिकोंकी निर्दय होकर धज्जियाँ उड़ाई हैं और उनकी कमजोरियोंको हमारे सामने रखा है। पर उनमें भी मनुष्यसुलभ कमजोरी मिल्ती है। यही कारण है कि वे अपनी कमजोरियाँ छिपाते हैं। पर जहाँगीरके आत्मचरितमें हमें उसकी कमजोरियाँ भी दीख पड़ती है जिन्हें पढ़ने पर हमें एक ऐसे मनुष्यका दर्शन होता है जिसमें भले, बुरे और एक कला-पारखीका सम्मिश्रण था। शिकार बहक जानेपर वह नरहत्या कर सकता था पर साथ ही साथ वह न्यायका भी प्रेमी था। शिकारी होते हुए भी वह पशु-पक्षियोंका प्रेमी था तथा फूलोंसे उसे विशेष प्रेम था। बाबरका हृदय बारबार मध्य एशियाके लिए छटपटाता था और भारतीय वस्तुओंके लिए उसके मनमें आदरभावकी कमी थी पर जहाँगीर वास्तवमें भारतीय था। भारतीय पुष्प पलाश, बकुल और चंपा उसके मनको लुभा लेते थे और उसके अनुसार भारतीय आमके सामने मध्य एशियाके फलोंकी कोई हस्ती न थी।

अकबरयुगीन इतिहासमें मुल्ला बदायूनीके 'मुंनखाब उत् तवारीख' का भी अपना स्थान है। इसमें इतिहास और आत्मचरितका खासा मेल है। मुल्ला थे तो धर्मोंके प्रति सहनशील अकबरके नौकर, पर वे थे कट्टर मुसलमान। रह रहकर वे हिन्दुओंको कोसते हैं और ऐसी घटनाओंका वर्णन करते हैं जिनके बारेमें पढ़ कर हँसी रोके नहीं रुकती। अकबरके 'दीन इलाही'को वे कुफ्र मानते थे। सामने कहनेकी हिम्मत तो थी नहीं, पर मौका मिलने पर वे उसकी हँसी उड़ानेमें चूकते न थे। दीन इलाही चलते ही कुछ लोग विश्वाससे और बहुत-से बादशाहकी खुशामदसे उसमें जा घुसे। बदायूनी (मुंनखाब, भा० २, पृ० ४१८–४१९ लो द्वारा अनूदित) ने इस सम्बन्धकी एक मजेदार घटनाका उल्लेख किया है। बनारसके एक मौजी मुसल्मान गोसालखाँ १००४ हि० में दीन इलाहीमें शामिल हो गए। उन्होंने अपनी दाढ़ी और सिर सफाचट करवा दिए तथा अबुलफज्लकी कृपासे बादशाहकी

सेवामें जा घुसे। आदमी चलते पुरज़े थे, किसी तरह बनारसके करोड़ी बन गए और दरबार छोड़ दिया। बदायूनीके अनुसार आप एक वेश्यापर फिदा थे। आगरेसे रवाना होनेके पहले आपने उसे काफी रम्म पिलाई और एक सरपरस्त भी मुकर्रर कर दिया। जब वेश्याओंके दारोगाने बादशाह सलामतसे इस बातकी शिकायत की, तो गोसाला बनारससे पकड़ मँगाए गए। इसके बाद उनपर क्या गुजरी इसका पता नहीं। पर बनारसी हथकंडे दिखलाकर निकल भागे होंगे, इसमें सन्देह नहीं! ऐसी ही मजेदार बातोंसे बदायूनीकी तवारीख भरी पड़ी है जो उनके आत्मचरितके अंग हैं, इतिहाससे उनका सम्बन्ध नहीं।

पर बनारसीदासका आत्मचरित उपर्युक्त आत्मचरितोंसे निराला है। उसमें न तो बाणभट्टका सूक्ष्म चित्रण है न बिल्हणकी खुशामद। शायद फारसी उन्होंने पढ़ी नहीं थी, इसलिए बाबर इत्यादिकी उनके आत्मचरितमें वर्णित बादशाही आन बान शानका उसमें पता नहीं चलता। बनारसीदास एक अध्यातमी और व्यापारी थे। इन दोनोंका क्या संजोग, पर खाली अध्यातमसे तो रोटी चलनेकी नहीं थी, व्यापार करना जरूरी था, पर उनके आत्मचरितसे पता चलता है कि वे कच्चे व्यापारी थे। समय समय पर उनकी व्यापारिक बुद्धि ऊपर उठनेकी कोशिश करती थी, पर उनके अंतरमानसमें अध्यातमकी बहती धारा उसे दबा देती थी। पर वे थे आदमी जीवटके, और जीवनकी कठिनाइयोंसे वे हँसकर भिड़नेको सदा तयार रहते थे। अगर उनके ऐसा कोई दूसरा ज्ञानी उस युगमें अपना आत्मचरित लिखता तो वह आत्मज्ञान और हिदायतोंसे इतना बोझिल हो उठता कि लोग उसकी पूजा करते, पढ़ते नहीं। एक सच्ची आत्म-कथाकी विशेषता है आत्म-ख्यापन, आत्म-गोपन नहीं। बनारसीदासने अपनी कमजोरियाँ उधेड़ कर सामने रख दी हैं और उनपर खुद हँसे हैं और दूसरोंको हँसाया है। अंध विश्वासोंकी, जिनके वे खुद शिकार हुए थे, उन्होंने बड़ी ही खूबीसे हँसी उड़ाई हे। १७ वीं सदीके व्यापारकी चलन कैसी थी, लेन देन कैसे होता था, कारवां चलनेमें किन किन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता था, इन सब बातोंपर अर्ध कथानकसे जितना प्रकाश पड़ता है उतना किसी दूसरे स्रोतसे नहीं। यात्राके समय अनेक विपत्तियोंका सामना करते हुए भी बनारसीदास अपने हँसोड़ स्वभावको भूले नहीं और आफतोंमें भी उन्होंने हास्यकी सामग्री पाई। बनारसीदास अध्यामती और व्यापारी दोनों थे,

इसलिए यह सोचा जा सकता है कि उनमें कठोरता अधिक मात्रामें रही होगी पर उनके आत्मचरितसे यह बात साफ झलकती है कि मृदुता उनमें कूट कूट कर भरी थी। अकबरकी मृत्युके समाचारसे उनका बेहोश होकर गिर पड़ना तथा अपने मित्र नरोत्तमकी मृत्युसे मर्माहत हो उठना उनकी कोमलता और भावुकताके द्योतक हैं। आत्मचरितमें पारिवारिक सम्बन्धों और रीति-रिवाजोंका भी खासा वर्णन है। भाषा भी उन्होंने विषयके अनुरूप चुनी है और व्यर्थके शब्दाडंबर और अलंकारोंसे उसे बोझिल होनेसे बचाया है। ग्रंथकी भाषा अपनी स्वाभाविक गतिसे बढ़ती है और उसका पैनापन सीधा वार करता है। वे जो बात कहते हैं सीधी सादी भाषामें, जिसे लोग समझ सकें। पर वह भाषा इतनी मँजी, अर्थप्रवण और मुहाविरेदार है कि पढ़नेवालेको आनंद मिलता है। उसमें अनेक परिभाषिक शब्द भी हैं जिन्हें समझनेमें अब कठिनाई पड़ सकती है पर १७ वीं सदीमें तो यह भाषा व्यापारियोंमें प्रचलित रही होगी, इसमें संदेह नहीं। थोड़े से शब्दोंमें एक चित्र खींच देना उनकी भाषाकी विशेषता है। व्यर्थके विस्तारका तो अर्धकथानकमें पता ही नहीं चलता। इसमें संदेह नहीं कि भाषा, भाव, सहृदयता और उपयोगी विवरणोंसे भरा अर्धकथानक न केवल हिन्दी साहित्यका ही वरन् भारतीय साहित्यका एक अनूठा रत्न है। बनारसीदासकी आत्मकथाका संबंध राजमहलोंसे न होकर मध्यम व्यापारीवर्गसे है जिसे पगपगपर कठिनाइयों और राजभयसे लड़ना पड़ता था। इसमें साहसकी आवश्यकता थी और बनारसीदास, और जिस वर्गमें वे पले थे उसमें, यह साहस था और इसी लिए उन्हें कोई कुचल न सका।

जैसा हम ऊपर कह आए हैं अर्धकथानक एक व्यापारीकी आत्मकथा है। जहाँ तक भारतीय साहित्यका संबंध है ऐसी कोई पुस्तक नहीं है जिसमें भारतीय दृष्टिकोणसे १७ वीं सदीके व्यापारी जीवनका इतने सुंदर ढंगसे वर्णन हो। इस सदीमें अनेक युरोपीय यात्री जिनमें व्यापारी, डाक्टर, राजदूत, पादरी, सिपाही, जहाज़ी तथा साहसिक सभी थे, जल और स्थलमार्गोंसे इस देशमें आए, पर उनमें अधिकतर यात्रियोंका ज्ञान सीमित था। उनका भारतके भूगोल और प्रकृतिविज्ञानका ज्ञान अधिकतर गतानुगतिक होनेसे परिसीमित था तथा वे भारतीय रीतिरिवाज, जिनको विदेशी समझनेमें असमर्थ थे, उनके लिए हास्यास्पद थे। फिर भी उन्होंने अपने ढंगसे सत्रहवीं सदीके भारतीय रस्मरिवाज, वेषभूषा, खानपान

इत्यादिका वर्णन किया है। बाजारकी गप्पोंपर आधारित उनका इतिहासका ज्ञान भी अधूरा होता था। पर भारतीय पथोंके बारेमें उनका ज्ञान अधिक बढ़ा चढ़ा था। अपने यात्रा-विवरणोंमें उन्होंने सड़कोंके बारेमें अपने अनुभव लिखे हैं। उनमें सड़कोंके नाम, उनपर पड़नेवाले पड़ाव, मिलनेवाले आदमी, दर्शनीय वस्तुएँ, आराम और कष्ट सभी बातें आ जाती हैं। उन दिनों सवारियाँ तेज नहीं थीं तथा सड़कोंपर ठहरनेके ठिकाने भी ठीक न थे तथा यूरोपीय यात्रियोंको बन्दरगाहोंकी शुल्क-शालाओंपर भी भारी तकलीफें उठानी पड़ती थीं। खाने पीने और ठहरनेकी भी असुविधाओंका सामना करना पड़ता था। आगरासे लाहोर तक चलनेवाली सड़क काफी अच्छी हालतमें थी पर दूसरी सड़कोंकी हालत अच्छी न थी। जंगलोंसे होकर गुजरनेवाली सड़कोंपर तो बड़ी मुश्किलोंका सामना करना पड़ता था। रक्षाके लिए काफिले रक्षकोंकी देखरेखमें चलते थे। बीच बीचमें व्यापारी सुरक्षाके लिए इन काफिलोंके साथ हो लेते थे जिससे काफिले बहुत बड़े हो जाते थे। रास्तेमें चोर डाकुओंका भय बना रहता था तथा सुदूर प्रान्तोंमें छोटे मोटे सामन्त और जमींदार काफिलोंसे कर वसूल करनेमें न चूकते थे। इन सब कठिनाइयोंके होते हुए भी ग्रामीण और नागरिकोंका काफिलोंके प्रति व्यवहार अच्छा होता था पर कभी कभी उनसे तनातनी हो जानेपर काफिलोंको हुज्जत तकरारका भी सामना करना पड़ता था।

अर्धकथानकमें बनारसीदासने तत्कालीन सड़कों और व्यापारियोंकी कठिनाइयोंका जो वर्णन दिया है उससे युरोपियन यात्रियोंकी बातोंकी पुष्टि होती है। इतना ही नहीं, अर्धकथानकमें भारतीय व्यापारियोंकी शिक्षा, लेन देन, व्यापारपद्धति इत्यादिके भी ऐसे अनुभूत विवरण हैं जिनका पता सत्रहवीं सदीके भारतीय साहित्यमें मुश्किलसे मिलता है। बनारसीदासके व्यापारी परिवारका इतिहास उनके दादा मूलदाससे प्रारम्भ होता है। वे हिन्दी और फारसी पढ़े थे। वणिक वृत्तिके लिए वे मुगलोंके मोदी बनकर मालवेमें आए और वहाँ नरवरके मुगलकी जागीरदारीमें उसके मालसे उधार देनेका काम करने लगे। सन् १५५१ में बनारसीदासके पिता खरगसेनका जन्म हुआ। कुछ दिनों बाद पिताकी मृत्यु हो गई और खरगसेनको एक नई आफतका सामना करना पड़ा। मुगलने जैसे ही यह समाचार सुना उसने तत्कालीन प्रथाके अनुसार मूलदासके घरपर मुहर छाप लगा कर कब्जा

कर लिया और माल भी ले लिया। माता पुत्र अशरण हो गये और अनेक कष्ट उठाते हुए पूरबमें जौनपुरकी ओर चल दिये।

उस युगमें भी जौनपुर एक बड़ा शहर था। बनारसीदासके अनुसार गोमतीके तटपर बसे इस नगरमें चारों वर्णके लोग बसते थे तथा उसमें अनेक तरहकी दस्तकारीके काम होते थे। शीशा बनानेवाले, दरजी, तंबोली, रंगरेज, ग्वाले, बढ़ई, संगतरास, तेली, धोबी, धुनियाँ, हलवाई, कहार, काछी, कलाल, कुम्हार, माली, कुंदीगर, कागदी, किसान, बुनकर, चितेरे, मोती आदि बींधनेवाले, बारी, लखेरे, ठठेरे, पेसराज, पटुवा, छप्पर बाँधनेवाले, नाई, भड़भूंजे, सुनार, लुहार, सिकलीगर, हवाईगर (आतिशबाजी बनानेवाले), धीवर, और चमार वहाँ रहते थे। नगर मठ, मंडप और प्रासादों तथा पताकाओं और तंबुओंसे युक्त सतखंडे घरोंसे भरा था। नगरके चारों ओर बावन सराएँ थीं और बावन बाजार। अगर कविसुलभ अतिशयोक्ति दूर कर दी जाय तो १६ वीं सदीके जौनपुरका रूप हमारे सामने खड़ा हो जाता है।

खरगसेन अपनी माताके साथ १५५६ में हीरा और लालके व्यापारी अपने जौहरी मामा मदनसिंह श्रीमालके यहाँ पहुँचे और उन्होंने उनकी बड़ी आवभगत की। जब खरगसेन आठ बरसके हुए तो वे पढ़नेके लिए चटसाल भेजे गए जहाँ उनकी एक व्यापारीके बेटेकी तरह शिक्षा हुई। वे सोने चाँदीके सिक्के परखने लगे, घरमें रेहनका हिसाब रखने लगे और जमाका हिसाब ?। वे लेने-देनेका हिसाब विधिपूर्वक रखने लगे और हाटमें बैठकर सराफेके काम सीखने लगे। आजसे कुछ दिन पहले भी एक व्यापारी बालककी शिक्षाका यही क्रम था, और कुछ पुराने शहरोंमें तो यह प्रथा अब भी चली आती है यद्यपि नोट चल जानेसे रुपए परखनेकी कला अब समाप्तप्राय है। पर व्यापारीकी शिक्षा घूमघाम कर बिना किस्मत लड़ाए पूरी नहीं मानी जाती थी। चार बरसबाद खरगसेन बंगाल पहुँचे और वहाँ सुलेमानके साले लोदीखाँके दीवान धन्ना श्रीमालके एक पोतदार बन गए। वह सब पोतदारोंका विश्वास करता था और बिना लेखा जाँचे फारकती लिख देता था। खरगसेनके जिम्मे चार परगने थे और वे दो कारकुनोंकी मददसे तहसील वसूल करते थे और लोदीखाँके पास खजाना भेज देते थे। पर उनके दुर्भाग्यने उनका पीछा न छोड़ा। धन्नाकी

एकाएक मृत्यु हो गई। चारों ओर शोर मच गया और बेचारे खरगसेन जान बचाकर पुनः जौनपुर लौट आए। पुनः वे १५६९ में आगरेमें अपने चाचाके सीरमें सराफी करने लगे। बाईस वर्षकी अवस्थामें उनका विवाह हुआ और चाचीसे न बनने पर अलग रहने लगे। चाचा-चाचीकी मृत्युके बाद पंचनामेंसे प्राप्त सब धन अपनी चचेरी बहनके ब्याहमें खर्च कर जौनपुर लौट आये और रामदास अग्रवालके साझेमें सराफीका काम आरंभ करके मोती और मानिकके चुन्नीका व्यापार करने लगे। १५७६ में पुत्रजन्मके लिए सतीकी जात पर रोहतक गए, पर रास्तेमें ही लुट गए।

१५८६ में बनारसीदासजीका जन्म हुआ। आठ वर्षकी उमरमें वे चटसाल भेजे गए और एक बरसमें अक्षराभ्यास हो गया। बारहवें वर्ष (१५९७)में उनका विवाह हो गया। उसी साल जौनपुरके जौहरियोंपर बड़ी विपत्ति गुजरी जो मध्यकालमें बहुधा व्यापारियोंपर गुजरती थी। जौनपुरके हाकिम चीन कुलीचने कोई गहरी भेंट न पाने पर जौहरियोंको पकड़ कर कोड़े लगवाए और अपनी रक्षाके लिए वे सब भागे। खरगसेन रोते बिलखते अँधेरी बरसाती रातमें सहजादपुर पहुँचे। क़िस्मत अच्छी थी, करमचंद बनिएने उनकी आव-भगत की और परिवारके रहनेकी व्यवस्था कर दी। घरमें कलसे और माट, चादर, सौर, दुलाई, खाट, अन्नसे भरा एक कोठार और भोजनके अनेक पदार्थ थे। मरतेको और क्या चाहिए था। दस मास वहाँ रहकर खरगसेन इलाहाबाद व्यापारको गए और बनिकपुत्र बनारसीदास सहजादपुरमें ही रहकर कौड़ियाँ बेचकर एक दो टके पैदा करके दादीको देने लगे। बेचारी दादीने पोतेकी पहिली कमाईसे नुकतीके लड्डू और सीरनी बाँटी और सतीकी जात मानी। कुछ ही दिनोंके बाद खरगसेनके आदेशानुसार बनारसीदास दो डोलियाँ और चार मजदूर लेकर सकुटुंब फतेहपुर पहुँचे और वहाँ कुछ दिन रहकर अपने पिताके साथ इलाहाबादमें लेना-देन तथा रेहन-उधारका काम करने लगे। बादमें खबर आनेपर कि किलीच आगरे वापिस चला गया सन् १५९९ में सब जौहरी जौनपुर लौट आए। पर उनकी विपत्तिका अंत नहीं था। १६०० में लघु किलीचको अकबरका हुक्म आया कि वह सलीमको कोल्हूबन शिकार खेलनेसे रोके। अपने बादशाहका हुक्म मानकर चीन किलीचने गढ़बंदी कर ली। रास्ते बंद कर दिए गए, गोमती पार करनेसे नावें रोक दी गईं, पुलपरके दरवाजे बंद कर दिए गए। पैदल और

सवार तयार हो गए और चारों ओर चौकीदार रखवाली करने लगे और कंगूरों पर तोपें चढ़ा दी गईं। गढ़में अन्न-वस्त्र, जल, जिरहबखतर, जीन, बंदूकें, हथियार तथा गोला बारूद इकट्ठा कर लिए गए। समरकी तैयारी देख प्रजा व्याकुल हो उठी और लोग भागने लगे। बेचारे जौहरी एक जगह इकट्ठा हुए और किलीचके पास पहुँचे, पर उससे ठाढ़स न पाकर सब भागे। खरगसेन भी जंगलमें छिपे रहे और छह महीने बाद जब मामला सुधरा तो जौनपुर वापिस आए।

अब बनारसीदास चौदह सालके हो चुके थे तथा नाममाला, अनेकार्थ, ज्योतिष और अलंकारके साथ साथ उन्होंने लघुकोकशास्त्र भी पढ़ा। कोकशास्त्र पढ़नेसे नतीजा जो होना था सो हुआ। लगे मानिकोंकी चोरी करने और आशिकी इतनी बढ़ी कि रोजगार एक तरफ धरा रह गया। बुरेका बुरा फल निकला। उन्हें उपदंश हो गया और वे अपनी सास और स्त्रीकी सेवा और एक नापितकी दवासे किसी तरह अच्छे हुए, पर आशिकी और पढ़नेके बीच उनका जीवन-क्रम चलता रहा। सन् १६०४ में खरगसेन यात्राको गये और बनारसीदासकी निरंकुशता बढ़ गई। १६०५ में जौनपुरमें अकबरकी मृत्युका समाचार पहुँचा, पर फिर गड़बड़ी मच गई। लोगोंने अपने घरोंके दरवाजे बन्द कर दिए; सराफोंने बाजारमें बैठना छोड़ दिया, मालमता छिपा दिया, घरोंमें शस्त्र इकट्ठे कर लिए और मोटे वस्त्र पहरकर लोग दरिद्र बन गए। पर यह गड़बड़ी जल्दी ही शान्त हो गई और व्यापारी फिर जौनपुर लौटकर आनंद-मंगल मनाने लगे।

इधर बनारसीदासका मन बदला। उन्होंने अपने काव्यको झूठा मानकर गोमतीके हवाले कर दिया और नेम-धरम मानते हुए पूरे जैनी बन गए। इस तरह दुखसुखमें तीन साल बीत गए। अपने पूतके अच्छे लच्छन देखकर खरगसेन हरख उठे और सन् १६१० में उन्होंने खुले और जड़ाऊ जवाहरात इकट्ठा करके कागजमें उनके भाव लिखे। साथ ही साथ बीस मन घी, दो कुप्पे तेल और जौनपुरी कपड़ा इकट्ठा कर लिया। मालमें २०० रु० लगे जिसमें कुछ घरकी रकम थी और कुछ उधारकी। यह सब मालमता बनारसीदासके सुपुर्द करके उनके पिताने व्यापारसे सारे कुटुम्बके पालनपोषणकी आशा प्रकट की। बेचारे बनारसीदासने जवाहरात तो टेंटमें खोंसे और सारा माल गाड़ियोंपर लादा। बहुत-सी और गाड़ियाँ साथ हो लीं और प्रतिदिन पाँच कोसकी यात्रा करके

काफिला इटावेके पास पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही इतना जोरसे पानी गिरा कि सारा काफिला बचनेके लिए घरोंकी खोजमें भागा। बेचारे बनारसीदास भी चादर लेकर भागते हुए सराय पहुँचे, पर वहाँ दो उमराव ठहरे हुए थे। बाजारमें तिल रखनेको जगह न थी। दौड़ते दौड़ते पैर रूई हो गए पर किसीने बैठने तकको न कहा। पैर कींचसे सन गए और ऊपरसे मूसलाधार बरसात, साथ ही साथ अगहनकी ठंडी हवा। एक स्त्रीने उनसे बैठनेको कहा तो उसका पति बाँस लेकर उठा! रोते झींकते वे एक चौकीदारकी झोंपड़ीमें पहुँचे। उसने इनामकी लालचसे उन्हें और उनके साथियोंकी ठहरनेकी अनुमति दे दी और वे सब कपड़े सुखाकर पयालपर सो गए, पर बदकिस्मतीने साथ न छोड़ा। रातमें एक जोरावर आदमी आ धमका और उन्हें चाबुककी मारका डर दिखला कर भगा देना चाहा। बनारसीदास हड़बड़ाकर भगे तब उसे दया आगई। उसने उन्हें एक टाट सोनेको दिया और खुद उसपर खाट डाल कर पड़ रहा। किसी तरह ठिठुरते हुए रात बीती और सबेरे काफिला आगरेकी ओर चल पड़ा।

बनारसीदास आगरे पहुँचकर वहाँ मोतीकटरेमें ठहर गए। बादमें वे अपने बहनोई बंदीदासके यहाँ जा टिके और माल उधार देनेवालेकी कोठीमें रख दिया। कुछ दिनों बाद उन्होंने अपना डेरा अलग कर लिया और वहीं कपड़ेकी गठरियाँ रख लीं और नित्य नखासे आने जाने लगे। अध्यातमी व्यापारीके भाग्यमें नुकसान ही बदा था, पर घी तेल बेचकर मुनाफेके चार रुपए हाथ लगे। इस तरहसे सब चीजें बेंच-खोंचकर उन्होंने हुंडीको चुकता किया। जवाहरातके व्यापारमें तो और बुरी ठहरी। कुछ चीजें बिना जाने सूझे साधुकुसाधुओंको दे दीं, कुछ गिरों धर कर रकम खा गए। एक बार खुला जवाहर टेंटसे गिरकर खो गया और कुछ पैजामेंमें बँधे जवाहरात चूहे काट ले गए। एक जोड़ी जड़ाऊ पहुँची एक ग्राहकके हाथ बेची तो उसने दिवाला निकाल दिया और एक अँगूठी गिरकर खो गई। इन मुसीबतोंके बीच बनारसीदास बीमार भी पड़ गए। पिताने सब समाचार सुनकर बड़ी हाय तोबा मचाई। इधर बनारसीदास सब खो-खाकर रातमें मधुमालती और मृगावती बाँचने लगे। श्रोताओंमें एक कचौड़ीवाला था, और उससे उधार पर कचौड़ियाँ लेकर उन्होंने छह महिने गुजार दिए। दमादकी दुर्दशा देखकर उनके ससुर समझाबुझाकर अपने घर ले गए। ससुरके घर रहते हुए वे धरमदासके, जो मौजी और उड़ाऊ जीव थे, साझीदार बने, पर

किसी तरह रोजगार चल निकला। दो बरस बाद खैराबाद लौटनेकी सूझी और सब चीजें बेंच-बाँचकर उन्होंने कर्ज चुका दिया। इस तरह व्यापारका पहला दौर सन् १६१३ में समाप्त हो गया।

एक दिन किस्मत खुली, रास्तेमें मोतियोंकी एक गठरी मिल गई। उससे एक तावीज बनवाया और व्यापारके लिए पूरबकी ओर चल पड़े। रास्तेमें अपनी ससुरालमें ठहरे और उनकी दुरवस्था जानकर उनकी पत्नी और सासने सहानुभूतिपूर्वक उनकी मदद की। बनारसीदासकी अवस्था कुछ सुधरी, धुले कपड़े और जवाहरात इकट्ठे किए और आगरे पहुँचे। वहाँ परवेजके कटरेमें ससुरकी दूकानमें भोजन करते थे, रातमें कोठीमें पड़ रहते थे। किस्मतके खोटे थे, कपड़ेके दाममें मद्दी आगई पर जवाहरातके रोजगारमें कुछ फायदा हुआ। कुछ दिन मित्रोंके साथ हँसी खुशीमें बीता, पर व्यापारी थे, रुपए तो कमाने ही थें। दो मित्रोंके साथ पटना जानेके लिए निकल पड़े। सहजादपुर तक तो रथमें गए, पर वहाँ एक बोझिया कर लिया और सरायमें ठहर गए। अभाग्यवश डेढ़ पहर रात बीते लहलहाती चाँदनीमें सबेरा हुआ जानकर वे तीनों बोझियेके सिर माल लदाक' चल निकले पर रास्ता भूल जानेसे जंगलमें जा धँसे। बोझिया तो रो-कलप कर बोझा फेंक चंपत हुआ। अब तीनों मित्रोंको स्वयं बोझा लादना पड़ा और वे रोते रोते आगे बढ़े। यहीं उनकी विपत्तिका अंत नहीं हुआ। वे एक चोरोंके गाँवके पास जा पहुँचे। एक आदमी द्वारा अपना परिचय पूछे जाने पर उनकी जान सूख गई। बनारसीदासने ब्राह्मण बननेका बहाना करके उसे असीसा और उसने उन्हें अपने चौधरीकी चौपालमें ठहरनेको कहा, पर भयके मारे उनकी बुरी दशा थी। जान बचानेके लिए उन्होंने कपड़ोंसे सूत काढ़कर जनेऊ बना कर पहने और मिट्टीसे टीके लगाकर पूरे ब्राह्मण बन गए। चौधरी आ धमके और बनारसीदास और उनके साथियोंको ब्राह्मण जानकर सीस नवाया और उन्हें फतहपुरका रास्ता बतला दिया। इस तरह वे इलाहाबाद पहुँचे।

यों तो बनारसीदासका व्यापार चलता ही रहा, पर सन् १६१६ में अपने पिताकी मृत्युके बाद उन्होंने फिर व्यापार करनेकी सोची। पाँच सौकी हुंडी लिखकर कपड़ा खरीदा, पर इसी बीच आगरेसे लेखा चुकानेके लिए सेठ सबलसिंहका पत्र आगया और बनारसीदास अपना

कपड़ेका काम दूसरेको सुपुर्द करके यात्रापर चल निकले। यात्रियोंकी पूरी जमातमें उन्नीस आदमी हो गये, जिसमें मथुरावासी दो ब्राह्मण भी थे। घाटम-पुरके पास कोररा ग्राममें बनारसीदास सरायमें उतर गए और दोनों ब्राह्मण किसी अहीरके घर जा पहुँचे। एक ब्राह्मण देवता बाजार पहुँचे और एक रुपया भुना कर खाने पीनेका सामान खरीद कर डेरेपर वापिस लौटे। इतनेमें जिस सराफके यहाँ उसने रुपया भुनाया था वह वहाँ पहुँचा और रुपया खोटा कहकर उसे लौटा लेनेको कहा। इस बातको लेकर दोनोंमें तू तू मैं मैं हो गई और मथुरिया ब्राह्मणने सराफको पीट दिया। इसी बीच सराफका भाई आगया। उसने ब्राह्मणोंके सब रुपये जाली ठहराए और उनके गाँठबँधे रुपए घर ले जाकर नकली रुपयोंसे बदलकर कोतवालसे फरियाद कर दी। कोतवाल हाकिमकी आज्ञासे दीवानके साथ कोररा की सरायमें पहुँचा और चार आदमियोंके सामने उनके बयान लिए। कोतवालने उनकी गिरफ्तारीका हुक्म दिया जो सबेरे तक़के लिए रोक ली गई। किसी तरह रात बीती पर सबेरे ही कोतवालके प्यादे उन्नीस सूलियाँ लेकर आ धमके और कहा कि वे सूलियाँ उनके ही लिए हैं। बनारसीदास और उनके साथी पासके एक गाँवके साहूकारकी जमानत देकर किसी तरह बच गए। पहर भर दिन चढ़ने पर बनारसीदासने छह सात सेर फुलेल लेकर हाकिमोंकी भेंट की और सराफको सजा देनेकी माँग की, पर पता चला कि वह तो चंपत हो चुका था। रास्तेमें अपने मित्र नरोत्तमदासकी मृत्युका समाचार सुन कर वे बड़े दुखी हुए। दया करके उन्होंने ब्राह्मणोंको उनके खोये रुपए भी दे दिए। आगरेमें उनके साहूजी ऐश आराममें इतने फँसे थे कि उन्हें हिसाब करनेकी फुरसत ही नहीं थी। किसी तरह एक मित्रकी सहायतासे मामला निपट गया और साझा अलग हो गया। यहीं बनारसीदासकी व्यापारीके नाते अंतिम यात्रा थी। इसके बाद लगता है कि धीरे धीरे उनकी आध्यात्मिक उन्नतिके साथ व्यापारका सिलसिला कम हो चला।

प्रेमीजीने बनारसीदासके अध्यात्म मतके बारेमें उपलब्ध सामग्रीका विधिपूर्वक विश्लेषण किया है और उनके आत्मिक विकासपर भी प्रकाश डाला है। उस समय आगरेमें अध्यात्मियोंकी एक सैली या गोष्ठी थी जिसमें रातदिन परमार्थका चिन्तन होता था। बनारसीदास इन अध्यात्मियोंमें एक प्रमुख स्थान पा गये। बादमें राजस्थानमें अध्यात्मियोंकी और सैलियाँ बन गईं। अब प्रश्न उठता है कि

इन अध्यात्म गोष्ठियोंका अकबरके दीन इलाही मतसे, जो बादशाहके अध्यात्मिक चिन्तनका परिणाम था, क्या सम्बन्ध था। अकबरने १५८२ ई० में दीन इलाहीकी स्थापना की, पर १५८७ के पहले इसके सिद्धान्तोंकी व्याख्या भी न हो सकी थी, और न इनपर कोई अलगसे ग्रंथ ही लिखा गया था, यद्यपि दीन इलाहीके बाह्याचारोंके विषयमें बदायूनीने कुछ लिखा है। मोहसिन फानीने दबिस्तान-ए-मजाहिबमें लिखा है कि दीनके निम्नलिखित दस सिद्धान्त थे, यथा—(१) दान (२) दुष्टोंको क्षमा तथा शान्तिसे क्रोधका शमन, (३) सांसारिक भोगोंसे विरति, (४) सांसारिक बन्धनोंसे विरक्ति और परलोकचिन्तन, (५) कर्मविपाकपर ज्ञान और भक्तिके साथ चिन्तन, (६) अद्भुत कर्मोंका बुद्धिपूर्वक मनन, (७) सबके प्रति मीठा स्वर और मीठी बातें, (८) भाइयोंके प्रति अच्छा व्यवहार तथा अपनी बातके पहले उनकी बात मानना, (९) लोगोंके प्रति विरक्ति और ईश्वरके प्रति अनुरक्ति, (१०) ईश्वर-प्रेममें आत्मसमर्पण और सर्वरक्षक परमात्मासे साक्षात्कार। दीन इलाहीमें व्यक्तिके पवित्र आचरणपर ध्यान रखा गया है। पर किसी मजहबको चलानेके लिए बाह्य कर्मों और संघटनकी भी आवश्यकता पड़ती है और दीन इलाही भी इसका अपवाद नहीं है। फिर भी इसमें पुरोहितीको स्थान नहीं है।

सूफियाना मत होनेसे इसमें धर्म मन्दिरकी आवश्यकता नहीं थी क्योंकि एक अवस्था विशेषको पहुँचनेहीपर लोग इस मतमें प्रवेश पा सकते थे गो कि इस बातके भी प्रमाण हैं कि बादशाहको प्रसन्न करनेके लिए भी लोग दीन इलाहीमें घुस पड़ते थे। धर्मोंके प्रति सहानुभूति ही इसका मुख्य लक्ष्य था। दीक्षाके पहले बादशाहके प्रति वफादारी आवश्यक थी। प्रति रविवारको दीक्षा लेनेवाला बादशाहके चरणोंमें नत होता था। दीक्षा लेनेके बाद उसकी गिनती चेलोंमें होती थी और वह 'अल्लाहो अकबर' अंकित शस्त पहननेका अधिकारी होता था। चेले बादशाहके सामने जमीनबोस होते थे और वह उन्हें दर्शनियाँ मंजिलसे दर्शन देता था। दीन इलाहीवाले मृतक-भोज नहीं करते थे, कमसे कम मांस खाते थे, अपने द्वारा मारे पशुका मांस नहीं खाते थे, कसाइयों मछुओं और बहेलियोंके साथ भोजन नहीं करते थे तथा गर्भिणी, वृद्धा और वंध्याका सहगमन उनके लिए वर्जित था। चेले दो प्रकारके होते थे, पूरा धर्म माननेवाले और केवल शस्तके अधिकारी।

दीन इलाहीका प्रभाव अकबरकालीन जन-जीवनपर कितना पड़ा, यह कहना कठिन है। उसमें इस्लामके सिद्धान्तोंका अधिकतर प्रतिपादन होनेसे शायद वह हिंदुओंके हृदयको अधिक न छू सका, पर इसमें संदेह नहीं कि तत्कालीन गोष्ठियों और सैलियोंमें उनकी झलक अवश्य दीख पड़ती है। बनारसीदासने अपने गुणोंके बारेमें जैसे क्षमा, संतोष, मिष्टभाषण, सहनशीलता, इत्यादिका उल्लेख किया है वे दीन इलाहीमें भी पाये जाते हैं; तथा अध्यात्म-चिंतनमें दोनोंका विश्वास था। पर यह पता नहीं चलता कि उनकी अध्यात्म सैलीमें दाखिल होनेके क्या नियम थे अथवा उस गोष्ठीमें गुरुशिष्यसम्बन्ध प्रचलित था या नहीं। शायद गुरुशिष्यपरम्परा जैन सैलियोंमें न रही हो, पर काशीमें टोडरमल्लके पुत्र गोबरधन, धरू अथवा गिरधारी द्वारा स्थापित एक ऐसी गोष्ठीका पता चलता है जिसके गुरु स्वयं गोबरधन थे। इतिहाससे पता चलता है कि १५८५ से १५८९ के बीच गोवरधन जौनपुरमें थे। जौनपुरमें रहते हुए उन्हें बनारस आनेके बहुत-से मौके पड़ते रहे होंगे और टोडरमलके नामसे जो मन्दिर या बावलियाँ बनारसमें बनीं उन्हें गोबरधनने ही बनवाया होगा। सन् १५८५ और १५८९ के बीच विश्वेश्वरकी पूजाके उपलक्ष्यमें शेषकृष्ण-द्वारा लिखित कंसवध नाटकका अभिनय हुआ और इस अभिनयमें गोवरधन स्वयं उपस्थित थे। अभिनयके आरम्भके निम्नलिखित श्लोकसे गोवरधनके बारेमें कुछ पता चलता है :—

> तस्यास्ति तंडनकुलामलमंडनस्य,
> श्रीतोडरक्षितिपतेस्तनयो नयज्ञः।
> नानाकलाकुलगृहं सविदग्धगोष्ठीम्,
> एकोऽधितिष्ठति गुरुर्गिरिधारि नामा।

इस श्लोकसे पता चलता है कि गुरु गिरिधारी राजा टोडरमलके पुत्र थे तथा नाना कलाओंसे भरी विदग्ध गोष्ठीके वे गुरु थे। इस श्लोकमें आए गिरिधारीसे कुछ विद्वानोंने वल्लभाचार्यके पौत्र गिरधारीका अर्थ लिया है और उन्हें गोवरधनका गुरु मान लिया है। पर गोवरधन और गिरधारी एक थे, इसमें संदेह नहीं। इस प्रसंगमें बनारसकी एक प्रसिद्ध लोकोक्ति 'सबके गुरु गोवरधनदास' की ओर बरबस ध्यान आकृष्ट होता है जिसका अर्थ होता है कि

गोवरधनदास सब धार्मिक कार्योंमें अग्रणी हैं। संभव है कि यह कहावत गोवरधनके लिए ही बनारसमें चली थी। गोवरधनकी विदग्ध गोष्ठीमें क्या क्या होता था इसका पता नहीं, शायद इसमें कला-चर्चाके साथ साथ आध्यात्मिक विचारोंकी भी चर्चा होती रही होगी, क्योंकि राजा टोडरमल और गोवरधन धार्मिक विचारके थे। यह भी संभव है कि अकबरकी देखादेखी गोवरधनने दीन इलाहीके ढँगपर बनारसमें कोई गोष्ठी चलाई हो। पर जब तक इस संबंधमें कुछ और सामग्री न मिले कोई ठीक मत निश्चय नहीं किया जा सकता।

पंडित नाथूरामजीने बनारसीदासजीके अर्धकथानकका उद्धार करके तथा अपनी बड़ी भूमिकामें उस ग्रंथमें आई हुई सामग्रीका वैज्ञानिक रूपसे अध्ययन करके मध्यकालीन इतिहास और संस्कृतिके विद्यार्थियोंकी अपूर्व सेवा की है। मुझे आशा है कि भविष्यमें अर्धकथानकका अनुवाद अंग्रेजी और दूसरी देशीय भाषाओंमें भी होगा।

प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई
८-११-५७ } —(डॉ०) मोतीचन्द

———

हिन्दीका प्रथम आत्म-चरित

सन् १६४१—

कोई तीन सौ वर्ष पहलेकी बात है। एक भावुक हिन्दी कविके मनमें नाना प्रकारके विचार उठ रहे थे। जीवनके अनेकों उतार चढ़ाव वे देख चुके थे। अनेक संकटोंमेंसे वे गुज़र चुके थे, कई बार बाल बाल बचे थे, कभी चोरों डाकुओंके हाथ जान-माल खोनेकी आशङ्का थी, तो कभी शूलीपर चढ़नेकी नौबत आनेवाली थी और कई बार भयंकर बीमारियोंसे वे मरणासन्न हो गये थे। गार्हस्थिक दुर्घटनाओंका शिकार उन्हें कई बार होना पड़ा था, एकके बाद एक उनकी दो पत्नियोंकी मृत्यु हो चुकी थी और उनके नौ बच्चोंमेंसे एक भी जीवित नहीं रहा था! अपने जीवनमें उन्होंने अनेकों रंग देखे थे—तरह तरहके खेल खेले थे—कभी वे आशिकीके रंगमें सराबोर रहे तो कभी धार्मिकताकी धुन उनपर सवार थी और एक बार तो आध्यात्मिक फिटके वशीभूत होकर उन्होंने वर्षोंके परिश्रमसे लिखा अपना नवरसका ग्रन्थ गोमतीके हवाले कर दिया था! तत्कालीन साहित्यिक जगत्‌में उन्हें पर्याप्त प्रतिष्ठा मिल चुकी थी और यदि किंवदन्तियोंपर विश्वास किया जाय तो उन्हें महाकवि तुलसीदासके सत्सङ्गका सौभाग्य ही प्राप्त नहीं हुआ था बल्कि उनसे यह सर्टीफिकेट भी मिला था कि आपकी कविता मुझे बहुत प्रिय लगी है। सुना है कि शाहजहाँ बादशाहके साथ शतरंज खेलनेका अवसर भी उन्हें प्रायः मिलता रहता था। संवत् १६९८ (सन् १६४१) में अपनी तृतीय पत्नीके साथ बैठे हुए और अपने चित्र-विचित्र जीवनपर दृष्टि डालते हुए यदि उन्हें किसी दिन आत्म-चरितका विचार सूझा हो तो उसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं।

नौ बालक हूए मुए, रहे नारि नर दोइ।
ज्यौं तरवर पतझार ह्वै, रहैं ठूंठसे होइ ॥ ६४३

अपने जीवनके पतझड़के दिनोंमें लिखी हुई इस छोटी सी पुस्तकसे यह आशा उन्होंने स्वप्नमें भी न की होगी कि वह कई सौ वर्ष तक हिन्दी जगत्‌में उनके यशःशरीरको जीवित रखनेमें समर्थ होगी।

कविवर बनारसीदासके आत्म-चरित 'अर्ध-कथानक' को आद्योपान्त पढ़नेके बाद हम इस परिणामपर पहुँचे हैं कि हिन्दी साहित्यके इतिहासमें इस ग्रन्थका एक विशेष स्थान तो होगा ही, साथ ही इसमें वह संजीवनी शक्ति विद्यमान् है जो इसे अभी कई सौ वर्ष और जीवित रखनेमें सर्वथा समर्थ होगी। सत्यप्रियता, स्पष्टवादिता, निरभिमानता और स्वाभाविकताका ऐसा जबरदस्त पुट इसमें विद्यमान् है, भाषा इस पुस्तककी इतनी सरल है और साथ ही साथ यह इतनी संक्षिप्त भी है, कि साहित्यकी चिरस्थायी सम्पत्तिमें इसकी गणना अवश्यमेव होगी। हिन्दीका तो यह सर्वप्रथम आत्म-चरित है ही, पर अन्य भारतीय भाषाओंमें इस प्रकारकी, और इतनी पुरानी पुस्तक मिलना आसान नहीं। और सबसे अधिक आश्चर्यकी बात यह है कि कविवर बनारसीदासका दृष्टिकोण आधुनिक आत्म-चरित-लेखकोंके दृष्टिकोणसे बिल्कुल मिलता जुलता है। अपने चारित्रिक दोषोंपर उन्होंने पर्दा नहीं डाला है, बल्कि उनका विवरण इस खूबीके साथ किया है मानों कोई वैज्ञानिक तटस्थ वृत्तिसे विश्लेषण कर रहा हो। आत्माकी ऐसी चीरफाड़ कोई अत्यन्त कुशल साहित्यिक सर्जन ही कर सकता था और यद्यपि कविवर बनारसीदासजी एक भावुक व्यक्ति थे—गोमतीमें अपने ग्रन्थको प्रवाहित कर देना और सम्राट् अकबरकी मृत्युका समाचार सुनकर मूर्च्छित हो जाना उनकी भावुकताके प्रमाण हैं—तथापि इस आत्म-चरितमें उन्होंने भावुकताको स्थान नहीं दिया। अपनी दो पत्नियों, दो लड़कियों और सात लड़कोंकी मृत्युका जिक्र करते हुए उन्होंने केवल यही कहा है :—

> तत्त्वदृष्टिं जो देखिए, सत्यारथकी भाँति।
> ज्यौं जाकौ परिगह घटै, त्यौं ताकौं उपसांति॥ ६४४

यह दोहा पढ़कर हमें प्रिन्स क्रोपाटकिनकी आदर्श लेखनशैलीकी याद आ गई। उनका आत्म-चरित उन्नीसवीं शताब्दीका सर्वोत्तम आत्म-चरित माना जाता है। उसमें उन्होंने अपने अत्यन्त प्रिय अग्रजकी मृत्युका जिक्र केवल एक वाक्यमें किया था :—

"A dark cloud hung upon our cottage for many months."

अर्थात् "कितने ही महीनोंतक हमारी कुटीपर दुःखकी घटा छाई रही।" यह बात ध्यान देने योग्य है कि ऐलेगज़ेण्डर क्रोपाटकिन ज्योतिर्विज्ञानके बड़े पण्डित थे, जारकी रूसी नौकरशाहीने निरपराध ही उन्हें साइबेरियाके लिए निर्वासित कर दिया था और वहाँसे लौटते समय उन्होंने आत्म-घात कर लिया था!

अपने चारित्रिक स्खलनोंका वर्णन कविवरने इतनी स्पष्टतासे किया है कि उन्हें पढ़कर अराजकवादी महिला ऐमा गौल्डमैनके आत्म-चरितकी याद आ जाती है। अँग्रेजीके एक आधुनिक आत्मचरित*में उसकी लेखिका ऐथिल मैनिनने अपने पुरुष-सम्बधोंका वर्णन निःसंकोच भावसे किया है पर उसे इस बातका क्या पता कि तीन सौ वर्ष पहले एक हिन्दी कविने इस आदर्शको उपस्थित कर दिया था। उनके लिए यह बड़ा आसान काम था कि वे भी "मो सम कौन अधम खल कामी" कहकर अपने दोषोंको धार्मिकताके पर्देमें छिपा देते। उन दिनों आत्मचरितोंके लिखनेकी रिवाज़ भी नहीं थी—आजकल तो विलायतमें चोर डाकू और वेश्याएँ भी आत्मचरित लिख लिख कर प्रकाशित करा रही हैं—और तत्कालीन सामाजिक अवस्थाको देखते हुए कविवर बनारसीदासजीने सचमुच बड़े दुःसाहसका काम किया था। अपनी इश्कबाज़ी और तज्जन्य आतशक (सिफलिस) का ऐसा खुल्लमखुल्ला वर्णन करनेमें आधुनिक लेखक भी हिचकिचाएँगे। मानों तीन सौ वर्ष पहले बनारसीदासजीने तत्कालीन समाजको चुनौती देते हुए कहा था, "जो कुछ मैं हूँ, आपके सामने मौजूद हूँ, न मुझे आपकी घृणाकी पर्वाह है और न आपकी श्रद्धाकी चिन्ता।" लोक-लज्जाकी भावनाको ठुकरानेका यह नैतिक बल सहस्रोंमें एकाध लेखकको ही प्राप्त हो सकता है।

कविवर बनारसीदासजी आत्मचरित लिखनेमें सफल हुए इसके कई कारण हैं, उनमें एक तो यह है कि उनके जीवनकी घटनाएँ इतनी वैचित्र्यपूर्ण हैं कि उनका यथाविधि वर्णन ही उनकी मनोरंजकताकी गारंटी बन सकता है। और दूसरा कारण यह है कि कविवरमें हास्यरसकी प्रवृत्ति अच्छी मात्रामें पाई जाती थी। अपना मज़ाक उड़ानेका कोई मौका वे नहीं छोड़ना चाहते। कई महीनों

---

* Confessions and impressions by Ethel Mannin.

तक आप एक कचौड़ीवालेसे दुबक्ता कचौड़ियाँ खाते रहे थे। फिर एक दिन एकान्तमें आपने उससे कहा—

तुम उधार कीनौ बहुत, आगे अब जिन देहु।
मेरे पास किछू नहीं, दाम कहांसौं लेहु॥ ३४१

पर कचौड़ीवाला भला आदमी निकला और उसने उत्तर दिया—

कहै कचौरीवाल नर, बीस रुपैया खाहु।
तुमसौं कोउ न कछु कहै, जहां भावै तहां जाहु॥ ३४२

आप निश्चिन्त होकर छै सात महीने तक दोनों वक्त भरपेट कचौड़ियाँ खाते रहे और फिर जब पैसे पास हुए तो चौदह रुपये देकर हिसाब भी साफ कर दिया। चूँकि हम भी आगरे जिलेके ही रहनेवाले हैं, इसलिए हमें इस बातपर गर्व होना स्वाभाविक है कि हमारे यहाँ ऐसे दूरदर्शी श्रद्धालु कचौड़ीवाले विद्यमान् थे जो साहित्यसेवियोंको छै सात महीने तक निर्भयतापूर्वक उधार दे सकते थे। कैसे परितापका विषय है कि कचौड़ीवालोंकी वह परम्परा अब विद्यमान् नहीं, नहीं तो आजकलके महँगीके दिनोंमें वह आगरेके साहित्यिकोंके लिए बड़ी लाभदायक सिद्ध होती।

कविवर बनारसीदासजी कई बार बेवकूफ बने थे और अपनी मूर्खताओंका उन्होंने बड़ा मनोहर वर्णन किया है। एक बार किसी धूर्त संन्यासीने आपको चकमा दिया कि अगर तुम अमुक मंत्रका जाप पूरे सालभर तक बिल्कुल गोपनीय ढँगसे पाखानेमें बैठकर करोगे तो वर्ष बीतने पर घरके दर्वाजेपर एक अशर्फी रोज़ मिला करेगी। आपने इस कल्पद्रुम मंत्रका जाप उस दुर्गन्धित वायुमंडलमें विधिवत् किया, पर स्वर्णमुद्रा तो क्या आपको कानी कौड़ी भी न मिली!

बनारसीदासजीका आत्मचरित पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि मानों हम कोई सिनेमा-फिल्म देख रहे हैं। कहींपर आप चोरोंके ग्राममें लुटनेसे बचनेके लिए तिलक लगाकर ब्राह्मण बनकर चोरोंके चौधरीको आशीर्वाद दे रहे हैं तो कहीं आप अपने साथी संगियोंकी चौकड़ीमें नंगे नाच रहे हैं या जूते-पैजारका खेल खेल रहे हैं।—

कुमती चारि मिले मन मेल। खेला पैजारहुका खेल॥
सिरकी पाग लैहिं सब छीन। एक एक्कौं मारहिं तीन॥ ६०१

एक बार घोर वर्षाके समय इटावेके निकट आपको एक उद्दण्ड पुरुषकी खाटके नीचे टाट बिछाकर अपने दो साथियोंके साथ लेटना पड़ा था। उस गँवार धूर्तने इनसे कहा था कि मुझे तो खाटके बिना चैन नहीं पड़ सकती और तुम इस फटे हुए टाटको मेरी खाटके नीचे बिछाकर उसपर शयन करो।

'एवमस्तु' बानारसि कहै। जैसी जाहि परै सो सहै।
जैसा कातै तैसा बुनै। जैसा बोवै तैसा लुनै॥ ३०६
पुरुष खाटपर सोया भले। तीनौ जनें खाटके तले।

एक बार आगरेको लौटते हुए कुर्रा नामक ग्राममें आप और आपके साथियोंपर झूठे सिक्के चलानेका भयंकर अपराध लगा दिया गया था और आपको तथा आपके अन्य अठारह साथी यात्रियोंको मृत्युदण्ड देनेके लिए शूली भी तैयार कर ली गई थी! उस संकटका ब्यौरा भी रोंगटे खड़े करनेवाले किसी नाटक जैसा है। उस वर्णनमें भी आपने अपनी हास्यप्रवृत्तिको नहीं छोड़ा।

सबसे बड़ी खूबी इस आत्म-चरितकी यह है वह तीन-सौ वर्ष पहलेके साधारण भारतीय जीवनका दृश्य ज्योंका त्यों उपस्थित कर देता है। क्या ही अच्छा हो यदि हमारे कुछ प्रतिभाशाली साहित्यिक इस दृष्टान्तका अनुकरण कर आत्म-चरित लिख डालें। यह कार्य उनके लिए और भावी जनताके लिए भी बड़ा मनोरंजक होगा। बकौल 'नवीन' जी—

"आत्मरूप दर्शनमें सुख है, मृदु आकर्षण-लीला है।
और विगत जीवन-संस्मृति भी, स्वात्मप्रदर्शनशीला है;
दर्पणमें निज बिम्ब देखकर यदि हम सब खिंच जाते हैं,
तो फिर संस्मृति तो स्वभावतः नर-हिय-हर्षणशीला है!"

स्वर्गीय कविवर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरने **चैतालि**में 'सामान्य लोक' शीर्षक एक कविता लिखी है जिसका सारांश यह है:—

"सन्ध्याके समय काँखमें लाठी दबाए और सिरपर बोझ लिये हुए कोई किसान नदीके किनारे किनारे घरको लौट रहा हो। अनेक शताब्दियोंके बाद यदि किसी प्रकार मंत्र-बलसे अतीतके मृत्यु-राज्यसे वापस बुलाकर इस किसानको मूर्तिमान दिखला दिया जाय, तो आश्चर्य-चकित होकर असीम जनता उसे चारों ओरसे घेर लेगी और उसकी प्रत्येक कहानीको उत्सुकतापूर्वक सुनेगी। उसके

सुख-दुःख, प्रेम-स्नेह, पास-पड़ौसी, घर-द्वार, गाय-बैल, खेत-खलिहान इत्यादिकी बातें सुनते-सुनते जनता अघाएगी नहीं। आज जिसके जीवनकी कथा हमें तुच्छतम दीख पड़ती है वह शत शताब्दियोंके बाद कवित्वकी तरह सुनाई पड़ेगी।"

सन्ध्या बेला लाठी काँखे बोझा बहि शिरे।
नदीतीरे पल्लीवासी घरे जाय फिरे॥
शत शताब्दी परे यदि कोनो मते।
मन्त्र बले, अतीतेर मृत्युराज्य ह'ते॥
एई चाषी देखा देय ह'ये मूर्तिमान।
एई लाठि काँखे ल'ये विस्मित नयान॥
चारि दिके धिरि ता'रे असीम जनता।
काड़ाकाड़ि करि लवे ता'र प्रति कथा॥
ता'र सुख दुःख यत ता'र प्रेम स्नेह।
ता'र पाड़ा प्रतिवेशी, ता'र निज गेह॥
ता'र क्षेत ता'र गरु ता'र चाख बास।
शुने शुने किछु तेइ मिटिवे न आश॥
आजि जाँर जीवनेर कथा तुच्छतम।
से दिन शुनावे ताहा कवित्वेर सम!

मान लीजिए यदि आज हमारी मातृभाषाके सौ दो सौ लेखक विस्तारपूर्वक अपने अनुभवोंको लिपिबद्ध कर दें तो सन् २२५७ ईस्वीमें वे उतने ही मनोरंजक और महत्त्वपूर्ण बन जावेंगे, जितने मनोरंजक कविवर बनारसीदासजीके अनुभव हमें आज प्रतीत हो रहे हैं। गदरको हुए अभी बहुत दिन नहीं हुए। हमारे देशमें ऐसे व्यक्ति मौजूद थे जिन्होंने सन् १८५७ का गदर देखा था। इस गदरका आँखों देखा विवरण एक महाराष्ट्रयात्री श्रीयुत विष्णुभटने किया था और सन् १९०७ में सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री चिन्तामण विनायक वैद्यने इसे लेखकके वंशजोंके यहाँ पड़ा हुआ पाया था। उन्होंने उसे प्रकाशित भी करा दिया। उसकी मूल प्रति पूनाके 'भारत-इतिहास-संशोधक मंडल' में सुरक्षित है। जब विष्णुभटको पूनामें यह खबर मिली कि श्रीमती बायजाबाई सिंधिया मथुरामें सर्वतोमुख यज्ञ करानेवाली हैं तो आपने मथुरा जानेका निश्चय

किया। पिताजीसे आज्ञा माँगी तो उन्होंने उत्तर दिया, "उधर अपने लोग बहुत कम हैं, मार्ग कठिन है, लोग भाँग और गाँजा पीनेवाले हैं और मथुराकी स्त्रियाँ मायावी होती हैं।"

स्त्रियोंके मायावी होनेकी बात पढ़कर हँसी आए विना नहीं रहती। दक्षिण-वालोंके लिए मथुराकी स्त्रियाँ मायावी होती हैं और इधर उत्तरवालोंके लिए बंगालकी स्त्रियाँ जादूगरनी होती हैं, जो आदमीको बैल बना देती हैं और बंगालियोंके लिए कामरूप (आसाम) की स्त्रियाँ कपटी और भयंकर होती हैं। बंगालमें पूरे ग्यारह वर्ष रहनेके बाद भी हम 'बछियाके ताऊ' नहीं बने, मनुष्य ही बने रहे, यही इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि ये बातें कोरी गप हैं। हाँ, तो विष्णुभटको मथुराकी मायावी स्त्रियोंसे सुरक्षित रखनेके लिए उनके चाचा भी साथ हो लिये थे और इन्हीं चाचा भतीजेका यात्रा-वृत्तान्त आज सौ वर्ष बाद एक ऐतिहासिक ग्रन्थ बन गया है!

क्या ही अच्छा होता यदि हिन्दीके धुरंधर विद्वान् आगे आनेवाली सन्तानके लिए अपनी अनुभूतियोंको सुरक्षित रखते।

यदि स्वर्गीय द्विवेदीजीने अपना जीवनचरित लिख दिया होता तो हमें दौलतपुरसे ३६ मील दूर रायबरेलीको आटा-दाल पीठपर लादे हुए पैदल जानेवाले उस तपस्वी बालकके और भी वृत्तान्त सुननेको मिलते, जो रोटी बनाना नहीं जानता था और जो इसलिए दालहीमें आटेकी टिकियाँ डालकर और पकाकर खा लिया करता था।

संसार दुःखमय है और उसमें निरन्तर दुर्घटनाएँ घटा ही करती हैं। यदि कोई मनुष्य हृदयवेदनाको चित्रित कर दे तो वह बहुत दिनोंतक जीवित रह सकती है। कोई बारह सौ वर्ष पहलेके पो चुई नामक किसी चीनी कविने अपनी तीन वर्षकी स्वर्गीय पुत्री स्वर्ण-घंटीके विषयमें एक कविता लिखी थी, वह अब भी जीवित है।

जब कविवर शङ्करजीने क्वाँर सुदी ३ सम्वत् १९८१ को अपनी डायरीमें निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखी थीं उस समयकी उनकी हार्दिक वेदनाका अनुमान करना भी कठिन है—

"महाकाल रुद्रदेवाय नमः

हाय आज क्वाँर सुदी ३ सम्वत १९८१ वि० बुधवारको दिनके ११ बजे पर प्यारा ज्येष्ठ पुत्र उमाशंकर मुझ बूढ़े बापसे पहले ही स्वर्गको चला गया। हाय बेटा, अब मेरी क्या दुर्गति होगी। प्यारा पुत्र पाँच माससे बीमार था। बहुतेरा इलाज किया कराया कुछ भी लाभ न हुआ। प्यारे पुत्रका क्रोध बढ़ता ही गया, बहुतेरा समझाया, कुछ फल न मिला। मरनेके दिन अच्छा भला बातें कर रहा है। यकायक साँस बढ़ने लगा। चि० हरिशंकर और रामलाल ऋषिने बोलते बोलते ही अचेत होनेपर ज़मीनपर ले लिया। केवल दो मिनट चुप रहा, दम निकल गया। हाय बेटा! उमाशंकर अब कहाँ!

आज उमाशंकर सुत प्यारा, हाय हुआ हम सबसे न्यारा।
हे शङ्कर कविराज सुख संकटद्वारा छिना।
निरख दिवाली आज, हाय उमाशङ्कर बिना॥

संसारमें न जाने कितने अभागे पिताओंपर यह वज्रपात होता है और पुत्र-विहीन कितनी दिवालियाँ उन्हें अपने जीवनमें देखनी पड़ती हैं।

जब स्वर्गीय पण्डित पद्मसिंहजी शर्माने महाकवि अकबरके छोटे लड़के हाशमकी बेवक्त मौतपर समवेदनाका पत्र भेजा था तो उसके जवाबमें अकबर साहबने लिखा था:—

"अगरचे हवादसे आलम (सांसारिक विपत्तियोंकी दुर्घटनाएँ) पेशे नज़र रहते हैं और नसीहत हासिल किया करता हूँ, लेकिन हाशम मेरा पूरा कायम-मुकाम (प्रतिनिधि, कवितासम्पत्तिका सच्चा उत्तराधिकारी) तय्यार हो रहा था और मेरे तमाम दोस्तों और कद्र अफज़ाओंसे मुहब्बत रखता था। उसकी जुदाईका नेचरल तौरपर बेहद कलक हुआ है..."

उस समय अकबरने एक कविता लिखी थी, जिसका एक पद्य यह है—

"आगोशसे सिधारा मुझसे यह कहनेवाला
'अब्बा, सुनाइए तो क्या आपने कहा है'।
अशआर हसरत-आगीं कहनेकी ताब किसको
अब हर नज़र है नौहा, हर साँस मरसिया है।"

केवल भुक्तभोगी ही अनुमान कर सकते हैं दुःखके उस स्रोतका, जहाँसे ये पंक्तियाँ निकली थीं —

नौ बालक हूए मुए, रहे नारि नर दोइ।
ज्यौं तरवर पतझार है, रहैं ठूंठसे होइ ॥

Inside out (अन्तःकरणका प्रकटीकरण) नामक पुस्तकके लेखकने संसारके ढाई सौ आत्मचरितोंका विश्लेषण करके उक्त पुस्तक लिखी थी और अन्तमें वे इस परिणामपर पहुँचे थे कि सर्वश्रेष्ठ आत्मचरितोंके लिए तीन गुण अत्यन्त आवश्यक हैं – (१) वे संक्षिप्त हों, (२) उनमें थोड़ेमें बहुत बात कही गई हो, (३) वे पक्षपातरहित हों।

अर्धकथानक इस कसौटीपर निस्सन्देह खरा उतरता है और यदि इसका अँग्रेजी अनुवाद कभी प्रकाशित हो तो हमें आश्चर्य न होगा।

कविवर बनारसीदासजी जानते थे कि आत्मचरित लिखते समय वे कैसा असंभव कार्य हाथमें ले रहे हैं। उन्होंने कहा भी था कि एक जीवकी चौबीस घंटेमें जितनी भिन्न भिन्न दशाएँ होती हैं उन्हें केवली या सर्वज्ञ ही जान सकता है और वह भी ठीक ठीक तौरपर कह नहीं सकता।—

एक जीवकी एक दिन दसा होइ जेतीक।
सो कहि न सकै केवली, जानै जद्यपि ठीक ॥ ६६०

इसी भावको मार्क ट्वेन नामक एक अमरीकन लेखकने इन शब्दोंमें प्रकट किया था:—

What a very little part of a person's life are his acts and his words! His real life is led in his head and is known to none but himself! All day long and every day, the mill of his brain is grinding and his thoughts not those other things are his history. His acts and words are merely the visible thin crust of his world, with its scattered snow summits and its vacant wastes of water—and they are so trifling a part of his bulk—a mere skin enveloping it. The most of him is hidden—it and its volcanic fires that toss and boil and never rest, night nor day. These are

his life and they are not written, and can't be written. Every day would make a whole book of eighty thousand words—three hundred and sixty five books a year. Biographies are but the clothes and buttons of the man. The biography of the man himself can't be written."

इसका सारांश यह है "मनुष्यके कार्य और उसके शब्द उसके वास्तविक जीवनके, जो लाखों करोड़ों भावनाओंद्वारा निर्मित होता है, अत्यल्प अंश हैं। अगर कोई मनुष्यकी असली जीवनी लिखनी शुरू करे तो एक दिनके वर्णनके लिए कमसे कम अस्सी हजार शब्द तो चाहिए और इस प्रकार साल भरमें तीन-सौ पैंसठ पोथे तय्यार हो जावेंगे! छपनेवाले जीवन-चरितोंको आदमीके कपड़े और बटन ही समझना चाहिए किसीका सच्चा जीवन-चरित लिखना तो सम्भव नहीं।"

फिर भी छसौ पचहत्तर दोहा और चौपाइयोंमें कविवर बनारसीदासजीने अपना चरित्र चित्रण करनेमें काफी सफलता प्राप्त की है और जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं उनके इस ग्रन्थमें अद्भुत संजीवनी-शक्ति विद्यमान् है। उनके साम्प्रदायिक ग्रन्थोंसे यह कहीं अधिक जीवित रहेगा।

यद्यपि हमारे प्राचीन ऋषि महर्षि 'आत्मानं विद्धि' (अपनेको पहचानो) का उपदेश सहस्रों वर्षोंसे देते आ रहे हैं पर यह सबसे अधिक कठिन कार्य है और इससे भी अधिक कठिन है अपना चरित्र-चित्रण। यदि लेखक अपने दोषोंको दबाके अपनी प्रशंसा करे तो उसपर अपना ढोल पीटनेका इल्ज़ाम लगाया जा सकता है और यदि वह खुल्लमखुल्ला अपने दोषोंका ही प्रदर्शन करने लगे तो छिद्रान्वेषी समालोचक यह कहते हैं कि लेखक बनता है और उसकी आत्म-निन्दा मानों पाठकोंके लिए निमन्त्रण है कि वे लेखककी प्रशंसा करें!

अपनेको तटस्थ रखकर अपने सत्कर्मों तथा दुष्कर्मोंपर दृष्टि डालना, उनको विवेककी तराजूपर बावन तोले पाव रत्ती तौलना, सचमुच एक महान् कलापूर्ण कार्य है। आत्म-चित्रण वास्तवमें 'तरवारकी धारपै धावनो' है, पर इस कठिन प्रयोगमें अनेक बड़े-से बड़े कलाकार भी फेल हो सकते हैं और छोटे-से छोटे लेखक और कवि अद्भुत सफलता प्राप्त कर सकते हैं

जो व्यक्ति अपनेको नितान्त साधारण समझते हैं वे भी यदि अपनी अनुभूतियोंको लिख सकें तो अनेक उपदेशप्रद और मनोरंजक ग्रन्थोंका निर्माण हो सकता है। इस अवसरपर हमें स्वर्गीय पं० प्रतापनारायणजी मिश्रका एक वाक्य याद आ रहा है, जो उन्होंने आत्मचरितकी भूमिकामें लिखा था। दुर्भाग्यवश वे पुस्तकको बिल्कुल अधूरा ही छोड़ गये। मिश्रजीने लिखा थाः—

" जिन पदार्थोंको साधारण दृष्टिसे लोग देखते हैं वे कभी कभी ऐसे आश्चर्यमय उपकारपूर्ण जँचते हैं कि बड़े बड़े बुद्धिमानोंकी बुद्धि चमत्कृत हो रहती है ! एक घासका तिनका हाथमें लीजिए और उसकी भूत एवं वर्त्तमान दशाका विचार कर चलिए तो जो जो बातें उस तुच्छ तिनकेपर बीती हैं, उनका ठीक ठीक वृत्तान्त तो आप जान ही नहीं सकते, पर तो भी इतना अवश्य सोच सकते हैं कि एक दिन उसकी हरीतिमा (सब्ज़ी) किसी मैदानकी शोभाका कारण रही होगी। कितने ही क्षुधित पशु उसके खा जानेको लालायित रहे होंगे, अथवा उसको देखके न जाने कौन डर गया होगा कि शीघ्र खोदो, नहीं तो वर्षा होने पर घर कमजोर कर देगा, सुखसे बैठना कठिन पड़गा। इसके अतिरिक्त न जाने कैसी मन्द प्रखर वायु, कैसी घनघोर वृष्टि, कैसे कोमल कठोर चरण-प्रहारका सामना करता करता आज इस दशाको पहुँचा है ? कल न जाने किसकी आँखोंमें खटके, न जाने किस ठौरके जल व पवनमें नाचे, न जाने किस अग्निमें जलके भस्म हो, इत्यादि। जब तुच्छ वस्तुओंका चरित्र ऐसे ऐसे भारी विचार उत्पन्न करता है, तो यह तो एक मनुष्यपर बीती हुई बातें हैं, सारग्राही लोग इन बातोंसे सैकड़ों भली बुरी बातें निकालके सैकड़ों लोगोंको चतुर बना सकते हैं।"

स्टीफन ज़्विग (विश्वविख्यात कलाकार) का अनुरोध था कि मामूली आदमियोंको भी अपने संस्मरण लिख डालने चाहिए; और किसीके लिए नहीं तो उनके घरवालों तथा बाल-बच्चोंके लिए ही वे मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद सिद्ध होंगे। उनका विश्वास था कि प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें कुछ भीतरी या बाहरी अनुभूतियाँ ऐसी होती हैं, जो लिपिबद्ध करने योग्य हैं।

१ ज़नवरी सन् १९५७ के टाइम्स आफ इण्डियामें यही बात श्रीयुत सी. एल. आर. शास्त्रीने अपने एक छोटे-से निबन्धमें लिखी थी। उनका कथन है—

"मैं तो यहाँतक कहूँगा कि हर एक आदमीको आत्मचरित लिखनेके लिए मजबूर करना चाहिए। अगर वह साहित्यिक ढङ्गके साथ न भी लिख सके तो भी कोई मुज़ायका नहीं। दर असल साहित्यिक कारीगरीकी इसमें जरूरत भी नहीं है। यदि कोई बेपढ़ा आदमी भी अपनी कष्ट-गाथाओं या आनन्द-भोगोंको बोलकर लिखा दे तो कोई बुरी चीज़ न बन पड़ेगी। बल्कि हमारा विश्वास है कि चतुराईसे भरे विवरणके शंकास्पद गुणके अभावमें उसकी अकृत्रिमता खासी मनोरंजक होगी। उसमें कमसे कम एक गुण तो अधिक मात्रामें होगा ही, यानी उसमें सत्यकी मात्रा अधिक होगी।"

चार आत्मचरित

अभी तक जितने आत्मचरित हमने पढ़े हैं उनमें चार आत्मचरित हमें खास तौरपर महत्त्वपूर्ण जँचे हैं—प्रिन्स क्रोपाटकिनका, महात्मा गाँधीका, गोर्कीका और स्टिफन ज्विगका। मैमोइर्स आव ए रैवोल्यूशनिष्ट, सत्यके प्रयोग, मेरा बचपन, मेरे विश्वविद्यालय तथा दी वर्ल्ड आफ यस्टरडे, इन चार ग्रन्थोंका विश्व-साहित्यमें प्रमुख स्थान है। वैसे कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ, श्रद्धेय बाबू राजेन्द्रप्रसाद तथा पं० जवाहरलाल नेहरूके आत्मचरित भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं। क्रोपाटकिनके आत्मचरितका सारांश बहुत वर्ष पहले 'क्रान्तिकारी राजकुमार' नामसे स्वर्गीय प्यारेमोहन चतुर्वेदीने प्रकाशित कराया था पर अब वह अप्राप्य है।

अब उसका अनुवाद फिरसे कराया जा रहा है। पत्रकारशिरोमणि स्वर्गीय एच. डब्ल्यू. नविनसनका आत्मचरित भी जो तीन जिल्दोंमें छपा था, संसारके सर्वोत्कृष्ट आत्मचरितोंमें स्थान पावेगा। ज्विगके आत्मचरितका भी अनुवाद शीघ्रातिशीघ्र होना चाहिए।

अपनी पुस्तकको ज्विगने इन शब्दोंके साथ समाप्त किया है—

"सूर्य पूर्ण और प्रबल रूपसे प्रकाशित था। मैं घर वापस जा रहा था कि मुझे अपनी छाया दीख पड़ी, उसी प्रकार जिस प्रकार कि वर्तमान युद्धके पीछे दूसरे युद्धकी छाया मैंने देखी थी। यह छाया इतने वर्षोंमें मेरे साथ ही रही है, मुझसे दूर बिल्कुल नहीं गई और दिन रात मेरे प्रत्येक विचारके ऊपर वह मँडराती रही है; बल्कि इस पुस्तकके कुछ पृष्ठोंपर भी उस छायाकी काली रेखा पाठकोंको दृष्टिगोचर होगी, पर आखिर छायाका जन्म भी तो प्रकाशसे ही होता

है और वास्तवमें उसी व्यक्तिकी जिन्दगी सच्ची मानी जानी चाहिए, जिसने उषा और अन्धकार, युद्ध और शान्ति, उतार और चढ़ाव सभीका अनुभव अपने जीवनमें किया हो।"

इस कसौटीपर भी कविवर बनारसीदासका जीवन बिल्कुल सजीव सिद्ध होता है।

भूमिका समाप्त करनेके बाद हमें दो ग्रन्थ पढ़नेके लिए मिलें, एक तो जर्मन विद्वान् जार्ज मिश (George Misch) द्वारा लिखित A history of Auto-biography in antiguity अर्थात् प्राचीनकालके आत्मचरितोंका इतिहास और दूसरे स्टीफन ज्विगकी महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'Adepts in Self-portraiture' यानी 'आत्मचित्रण कलामें कुशल'।

ये दोनों ग्रन्थ जर्मन भाषासे अनुवादित किये गये हैं। पहला ग्रन्थ दो जिल्दोंमें जर्मनीमें ५० वर्ष पहले छपा था और दूसरा सन् १९२५ में। इससे भी पूर्व सन् १७९० में जर्मन कवि तथा विचारक हर्डरने कितने ही विद्वानोंद्वारा विभिन्न भाषाओंके आत्मचरितात्मक वृत्तान्त संग्रह कराके उन्हें प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया था। हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दीमें भी इसी प्रकारका एक वृहद् ग्रन्थ लिखा जा सकता है। जब तक वह न लिखा जाय तब तक 'आप बीती और जगबीती' नामक एक निबन्ध जिसमें जीवनचरितों तथा आत्मचरितोंका परिचय तथा विश्लेषण हो, छपाया जा सकता है।

बहुत सम्भव है कि महाकवि तुलसीदासजीको, जो कविवर बनारसीदासजीके समकालीन थे, आत्म-चरित लिखनेमें उतनी सफलता न मिलती जितनी बनारसीदासजीको मिली। यदि किसी चित्र खिंचवानेवालेको तस्वीर देते समय विशेष रूपसे आत्म-चेतना हो जाय तो उसके चेहरेकी स्वाभाविकता नष्ट हो जायगी। उसी प्रकार आत्मचरित लेखकका अहंभाव अथवा 'पाठक क्या खयाल करेंगे' यह भावना उसकी सफलताके लिए विघातक हो सकती है।

आत्म-चित्रणमें दो ही प्रकारके व्यक्ति विशेष सफलता प्राप्त कर सकते हैं, या तो बच्चोंकी तरहके भोले भोले आदमी, जो अपनी सरल निरभिमानतासे यथार्थ बातें लिख सकते हैं अथवा कोई फक्कड़ जिसे लोक-लज्जासे कोई भय नहीं।

फक्कड़शिरोमणि कविवर बनारसीदासजीने तीन-सौ वर्ष पहले आत्म-चरित लिखकर हिन्दीक वर्तमान और भावी फक्कड़ोंको मानों न्यौता दे दिया है। यद्यपि उन्होंने विनम्रतापूर्वक अपनेको कीट पतंगोंकी श्रेणीमें रक्खा है ("—हमसे कीट पतंगकी बात चलावै कौन") तथापि इसमें सन्देह नहीं कि वे आत्म-चरित-लेखकोंमें शिरोमणि हैं।

दिल्ली,
१०-८-५७

—बनारसीदास चतुर्वेदी

रित
ापि
ीट
ित-

अर्ध-कथानककी भाषा

[डॉ० हीरालाल जैन, एम० ए०, एल० एल० बी०]

अर्ध-कथानकका जितना महत्त्व उसके साहित्यिक गुणों और ऐतिहासिक वृत्तान्तके कारण है उतना ही और संभवतः उससे भी अधिक उसकी भाषाके कारण है। सत्रहवीं शताब्दि और उससे पूर्वके हिन्दी साहित्यका भाषा और व्याकरणकी दृष्टिसे अभीतक पूर्णतः वर्गीकरण नहीं किया जा सका है और इसलिए किसी एक नवीन ग्रन्थके विषयमें यह कहना कठिन है कि हिन्दीकी सुज्ञात उपभाषाओंमेंसे उस ग्रन्थकी भाषा कौन-सी है।

बनारसीदासजीने अपने अर्ध-कथानककी भाषाको स्पष्ट रूपसे 'मध्य देशकी बोली' कहा है और प्राचीन संस्कृत-साहित्यमें मध्य देशकी चतुःसीमा इस प्रकार पाई जाती है—उत्तरमें हिमालय, दक्षिणमें विन्ध्याचल, पूर्वमें प्रयाग और पश्चिममें विनशन अर्थात् पंजाबके सरहिन्द जिलेका वह मरुस्थल जहाँ सरस्वती नदीका लोप हुआ है[1]। चीनी यात्री फाहियानने (स० ४५७) मताऊल (मथुरा) से दक्षिणके प्रदेशको मध्यदेश कहा है[2] और अलबेरूनीने (स० १०८७) कन्नौजके चारों ओरके प्रदेशको मध्यदेश माना है[3]। बनारसीदासजीका क्रीड़ा-क्षेत्र प्रायः आगरासे जौनपुर तक यू० पी० का प्रदेश रहा अतएव इसे ही उनके द्वारा सूचित मध्यदेश माना जा सकता है।

अर्ध-कथानकके व्याकरणकी रूपरेखा इस प्रकार है—

वर्ण—इसमें देवनागरीके सभी स्वर पाये जाते हैं। विसर्गकी हिन्दीमें आवश्यकता ही नहीं पड़ती। 'ऋ' कहीं कहीं सुरक्षित पाया जाता है जैसे

---

१ मनुस्मृति २, २१। २ फाहियान (दे० पु० मा० पृ० ३०)। ३ अलबेरूनीका भारत, भा० १, पृ० १९८।

मृषा (३७), नौकृत (२६४) और कहीं कहीं उसकी जगह अन्य स्वरादेश पाया जाता है जैसे दिष्टि (१२९) ।

व्यंजनोंमें 'श' के स्थानपर प्रायः सर्वत्र 'स' आदेश पाया जाता है, जैसे पास (पार्श्व), बंस (वंश), हुसियार (होशियार), कबीसुर (कवीश्वर), आवस्सिक (आवश्यक) (३४७), सुद्ध (शुद्ध) (१७७)। 'ष' अनेक जगह पाया जाता है, जैसे मृषा (३७), पुरुष, दिष्टि (१२९), हरषित (३५७), विषाद (३५८), दुष्ट (४८०), भेष (४८०) आदि । किन्तु कहीं कहीं उसके स्थानपर भी 'स' का आदेश देखा जाता है जैसे बरस (वर्ष) (१८१), बिसेस (विशेष) १७९ ।

संस्कृतके संयुक्त वर्णोंको स्वरभक्ति या वर्णलोपके द्वारा सरल बनानेकी प्रवृत्ति देखी जाती है, जैसे—जनम (जन्म), पदारथ (पदार्थ), पारस (पार्श्व), परिगह (परिग्रह), बितीत (व्यतीत) ।

संज्ञाओंके कर्त्तावाचक और कर्मवाचक रूपके लिए, कोई विकृति या प्रत्यय नहीं पाया जाता जैसे—

ग्यानी जानै तिसकी कथा (६), बसै नगर रोहतगपुर (८), मूलदास भी कीनौं काल (२०), मुगल गयौ थौ (२१), आयौ मुगल उतावलो (२२), घनमल काल कियौ तिस ठौर (१८) आदि ।

पर जहाँ सकर्मक क्रिया संस्कृतके भूतकालिक कृदन्त परसे बनी है वहाँ कर्त्ता कारकमें 'नै' भी पाया जाता है, जैसे खरगसैनकौं रायनैं दिए परगने च्यारि (५५) ।

करण कारकमें सौं या सूं प्रत्यय पाया जाता है । जैसे—सुखसौं बरस दोइ चलि गए (१८), एक पुत्रसौं सब किछु होइ (४३), लेना देना विधिसौं लिखै (४७), निज मातासौं मन्त्र करि (५२), दुहू मिलाइ दामसौं भरी (६८) । सम्प्रदान कारकमें कहीं 'सौं' और कहीं 'कौ' व 'कूं' प्रत्यय पाया जाता है । जैसे—मूलदाससौं बहुत कृपाल (१६), कहै मदन पुत्रीसौं रोइ (४३), पिता पुत्रकौं आई मीच (२०), खरगसैनकौं रायनैं दिए परगने च्यारि (५५), तब चटसाल पढ़नकूं गयौ (४६) ।

अपादान कारकमें 'सुं' 'सौं' प्रत्यय पाया जाता है। जैसे, 'तबसुं' करै उद्दमकी दौर, तिस दिनसौं बानारसी नित्त सराहै मित्त (४८४)।

सम्बन्ध कारकमें बहुवचनमें 'के', स्त्रीलिंगमें 'की' और एकवचनमें 'का' 'कौ' प्रत्यय पाये जाते हैं। जैसे—बनारसीके, जिनदासके, जेठूके, वृत्तिके, पासकी, तीसिसैकी, उद्दमकी, रामकी, वस्त्रका काम, मुगलकौ, हिमाऊंकौ, साहुकौ पत्र (४९५) आदि।

अधिकरण कारकके प्रत्यय 'मैं' और 'मांहि' पाये जाते हैं। जैसे— मनमैं, जगतमैं, रोहतगमैं, जौनपुरमैं, गंगमांहि, मनमांहि, चीठीमांहि आदि।

सर्वनामोंमें, तिन, (४१), ताकौ (४१), तिसकी (६), तिनके (१२), तिस (२१), जिन (३), जाकौ (१२), मैं (३८४), हम (४४२), मेरे (७), सो (३, ४३), यहु (१७, ३६), ए (२५), तू (४८३), तुमहिं (४२) आदि रूप दृष्टिगोचर होते हैं।

क्रियाके वर्तमानकालिक उत्तम पुरुषके रूप—

बंदौं (१), कहौं (५, ६, ११), माखौं (७)।

वर्तमान अन्य पुरुषके रूप—बनारसी चिंतै मनमांहि (४८७), बहुवचन—दोऊ साझी करहिं इलाज (४८७)।

मध्यम पुरुषके रूप—तू जानहि (४८३)।

भूतकालिक अन्य पुरुषके रूप—कीनौ, भयौ, भए, (४८७), आयौ, बसायौ, कही, दिए, दीनै, पढ़यौ, खरचे, आदि (४८७)।

सहायक क्रिया सहित—बखानी है, पानी है, जानी है, आदि।

भविष्यत् कालके रूप—होइगी (६), माँगहिगा (४८१), चलहिगा (४८१)।

आज्ञार्थक क्रियाके रूप—'उ' या 'हु' लगाकर बनाये गये हैं। जैसे, 'कथा सुनु' (३८) सोच न करु (४४), सुनहु।

पूर्वकालिक अव्यय सर्वत्र क्रियामें 'इ' लगाकर बनाये गये हैं—सुनि, धरि, मानि, जानि, बखानि, बोलि, निकसि, पढ़ि, रोइ, गाइ, पंहिराइ आदि।

२

अर्ध-कथानककी इन व्याकरणसंबंधी विशेषताओंको सम्मुख रखकर अब हम देखें कि उसकी भाषा ब्रजभाषा कही जाय, या अवधी या कुछ और।

ब्रजभाषाकी विशेषतायें ये हैं[1]—

१ संज्ञा तथा विशेषणोंमें 'ओ' या 'औ' अन्तवाले रूप, जैसे बड़ो, छोटो, कारो, पीरो, घोड़ो।

२ संज्ञाका विकृतरूप बहुवचन 'न' प्रत्ययके रूपान्तर लगाकर बनाना, जैसे, राजन, घोड़न, हाथिन, असवारन आदि।

३ परसर्गोंमें कर्म-सम्प्रदानमें 'कौ', करण–अपादानमें 'सों', 'तें', और संबंधमें 'कौ', 'को'।

४ सर्वनामोंमें उत्तम पुरुष मूलरूप एकवचन 'हौ' विकृतरूप 'यो' सम्प्रदान कारकके वैकल्पिक रूप 'मोहिं' आदि, संबंधके ओकारान्त 'मेरो', 'हमारो' आदि।

५ क्रियाके रूपोंमें 'है' लगाकर भविष्य निश्चयार्थ बनाना, जैसे, चलिहै; तथा सहायक क्रियाके भूत निश्चयार्थके हो, हतौ आदि रूप।

इन लक्षणोंको जब हम अर्ध-कथानकमें ढूँढ़ते हैं तो विशेषणोंमें 'औ' अन्तवाले रूप कहीं कहीं दृष्टिगोचर हो जाते हैं— जैसे —

> आयौ मुगल उतावलौ, सुनि मूलकौ काल।
> मुहर छाप घर खालसै, कीनौ लीनौ माल ॥ २२ ॥

तथा कारक-रचनाकी विशेषतायें भी बहुत कुछ मिलती हैं।

किन्तु शेष लक्षण नहीं मिलते, इससे अर्ध-कथानककी भाषाको पूर्णतः ब्रजभाषा नहीं कह सकते।

अवधीके विशेष लक्षण निम्न प्रकार हैं—

१ संज्ञामें प्रायः तीन रूप, ह्रस्व, दीर्घ तथा तृतीय, जैसे घोड़, घोड़वा, घोड़उना।

२ विकृतरूप बहुवचनका चिह्न 'न' ब्रजके समान जैसे 'घरन' किन्तु कर्ममें 'का' संबंधमें 'केर' अधिकरणमें 'मा'।

---

१ देखो, ब्रजभाषा व्याकरण, डा० धीरेन्द्र वर्माकृत, अलाहाबाद, १९३७, पृ० १५–१६।

३ सर्वनामके सम्बन्ध कारकके रूप 'मोर, तोर', हमार', 'तुमार'।

४ सहायक क्रियाके रूप अहौं, अही, अहे, अह्यो, अहै, अहीं, तथा बाट धातुके रूप बाटूँएउँ, बाटी, और रह धातुके रूप रहेउँ, रहे, आदि।

५ क्रियार्थक संज्ञाओंके 'ब' अन्तक रूप जैसे देखब। भविष्यकालके बोधक अधिकांश रूप भी 'ब' लगाकर बनते हैं। जैसे—देखबूं आदि।

इन लक्षणोंका तो अर्ध-कथानककी भाषामें प्रायः अभाव ही पाया जाता है। अतः उसको हम अवधी नहीं कह सकते।

यदि हम विशेष बोलियोंकी विशेषताएँ इस ग्रंथकी भाषामें ढूँढ़ें तो हमें उनका भी अभाव दृष्टिगोचर होता है। न यहाँ राजस्थानीकी मूर्द्धन्य ध्वनियोंका प्राधान्य है, 'न' के स्थानपर 'ण' भी नहीं है, न बुन्देलीका 'ड़' के स्थानपर 'र' और मध्य व्यंजन 'ह' का लोप पाया जाता है।

अर्ध-कथानकमें उर्दू-फारसीके शब्द काफी तादादमें आये हैं, और अनेक मुहावरे तो आधुनिक खड़ी बोलीके ही कहे जा सकते हैं। इसपरसे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बनारसीदासजीने अर्धकथानककी भाषामें ब्रजभाषाकी भूमिका लेकर उसपर मुगल-कालमें बढ़ते हुए प्रभाववाली खड़ी बोलीकी पुट दी है, और इसे ही उन्होंने 'मध्यदेशकी बोली' कहा है जिससे ज्ञात होता है कि यह मिश्रित भाषा उस समय मध्यदेशमें काफी प्रचलित हो चुकी थी। इस प्रकार अर्ध-कथानक भाषाकी दृष्टिसे खड़ी बोलीके आदिम कालका एक अच्छा उदाहरण है। — १ जून १९४३

(द्वितीय संस्करणकी विशेषता)

बड़े हर्षकी बात है कि अर्ध-कथानकके प्रथम संस्करणका साहित्यिक संसारमें खूब सत्कार हुआ। उसकी प्रतियाँ शीघ्र ही दुर्लभ हो गईं और लोग पुनः प्रकाशनकी माँग करने लगे। इसके फलस्वरूप अब विद्वान् सम्पादकने न केवल इस संस्करणद्वारा इस ग्रंथकी माँगको ही पूरा किया है, किन्तु इस महत्त्वपूर्ण प्राचीन ग्रंथकी जो कुछ उपलभ्य सामग्रीका प्रथम संस्करणमें उपयोग नहीं किया जा सका था उसका भी पूर्ण परिशीलन कर ग्रन्थको और भी परिशुद्ध

और परिपूर्ण बना दिया है। इसके लिए प्रेमीजीका पुनः अभिनन्दन करने योग्य है।

अर्ध-कथानकके प्रथम संस्करण परसे मैंने उस ग्रन्थकी भाषाकी जो रूपरेखा प्रस्तुत की थी वह इस संस्करणके लिए भी घटित होती है। केवल एक दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। वहाँ जो मैंने दोहा ११५ में 'पश्चिम' शब्दका उदाहरण देकर 'श' के निर्विकार प्रयोगके संबंधमें यह कहा था कि 'यह विचारणीय है कि यह कहाँ तक मूलका पाठ है और कहाँ तक लिपिकारकृत विकार' उस शंकाका इस संस्करणद्वारा निराकरण हो गया। नवीन पाठके अनुसार उस दोहेमें 'पश्चिम' रूप तो केवल 'ई' और 'स' इन दो प्रतियोंमें ही पाया गया है। शेष 'अ' 'ड' और 'ब' नामक आदर्श प्रतियोंमें उसके स्थानपर 'पच्छिम' पाठ पाया गया है और उसे ही अब विद्वान् सम्पादकने अपने मूल पाठमें ग्रहण किया है। यही रूप दोहा ३५ में भी आया है और वहाँ भी एक प्रति 'अ' के 'पश्चिम' रूपका पाठान्तर अंकित किया गया है। यद्यपि अब भी श्रीमाल, पार्श्व, श्रावक, शिव जैसे कुछ शब्दोंमें 'श' का प्रयोग देखा जाता है, तथापि उन शब्दोंके सिरीमाल, पास आदि जो रूपान्तर भी पाये जाते हैं उनसे प्रतीत होता है कि उक्त शब्दोंमें 'श' की स्थिति ग्रंथकी भाषाकी आधारभूत बोलीका अंग नहीं हैं। वह पश्चात्कालीन संस्कृतीकरणके प्रभावकी ही द्योतक है। यही बात इस भाषामें 'ष' की स्थितिके विषयमें भी कही जा सकती है। मृषा, दोष, पुरुष, दिष्टि, भूषन, सिष्य, आउषा, कुष्ठ, अष्ट, मृषा हरषित, मानुष, भाषा जैसे शब्दोंमें जो ष दिखाई देता है वह संस्कृतका ही प्रभाव है, बोलीका मूल अंग नहीं। यथार्थतः ग्रन्थकी भाषाकी आधारभूत बोलीमें केवल सकारका प्रयोग होता था ऐसा अनुमान करना अनुचित न होगा। यह प्रवृत्ति उक्त बोलीको शौरसेनी प्राकृतकी परम्परामें विकसित हुई प्रमाणित करती है।

करण कारकमें 'सौ' के साथ 'सूं' प्रत्ययके प्रयोगका भी जो निर्देश पूर्व संस्करणमें किया गया था वहाँ अब उस अपवादका निराकरण होता दिखाई देता है, क्योंकि दोहा ५२ और ६५ में क्रमशः 'मातासूं' और 'दामसूं' के स्थानपर अब उपलब्ध आदर्श प्रतियोंके आधारसे 'मातासौं' और 'दामसौं' पाठ स्वीकार किये गये हैं।

फारसीके जिन शब्दोंका इस रचनामें प्रयोग हुआ है उनमेंसे कुछ ग्रन्थ-कारकी बोलीमें ढलकर इस प्रकार आये हैं :—सराइ, परगने, सरहद, फारकती, खजाना, हुकुम, फुरमान, मुसकिल, पेसकसी, गरीब, आसिखबाज, सौदा, मुलक, सरियति, खबरि, तहकीक, बकसीस, चाबुक, रफीक, नखासे, इजार, रेजपरेजी, बुगचा, जहमति, वेहया, बकबाद, फरजंद, यार, तहकीक, मसक्कति, खरीद, मजूर, चाचा, हुसियार, खुसहाल, रोजनामैं, सिताब, नफर, गैरसाल, नजरि गुजारौ, कोतवाल, हाकिम, दीवान, अहमक, वादा, स्याबास, माफ, गुनाह, उमराउ, मुकाम, साहिजादे, सुखुन, पैजार, खोसरा, आदि। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इन शब्दोंका प्रयोग प्रायः वहीं विशेषरूपसे किया गया है जहाँ मुगल राज-काजसंबंधी चर्चाका प्रसंग आया है। इससे स्पष्ट होता है कि इन विदेशी शब्दोंका प्रयोग पहले मुगल अफसरोंके मुखसे हुआ और वह धीरे धीरे जन भाषामें उसकी अपनी उच्चारण-विधिके अनुसार उतरने लगा।

कविने रचनाके प्रारंभमें ही कहा है कि उनके पितामह मूलदास 'मध्यदेस'में स्थित रोहतगपुरके निवासी थे और वहीं उन्होंने हिंदुगी और पारसी पढ़ी थी तथा वे मुगलके मोदी होकर मालवा आये थे। इस प्रकार यह मध्यदेशकी भाषा उस समय 'हिन्दुगी' या हिन्दी कहलाने लगी थी, यह ध्यान देने योग्य है। स्वयं अपने भाषाज्ञानके संबंधमें बनारसीदासजीने कहा है —

पढ़ै संसकृत प्राकृत सुद्ध।
बिबिध-देसभाषा-प्रतिबुद्ध ॥ (६४८)

इससे प्रतीत होता है कि उस समय भी संस्कृत और प्राकृत प्राचीन भाषाओंके अतिरिक्त प्रचलित नाना देश-भाषाओंका ज्ञान प्राप्त करना सुशिक्षाका आवश्यक अंग समझा जाता था।

प्राकृत-जैन-विद्यापीठ
मुजफ्फरपुर, बिहार,
ता० ७-४-५७

हीरालाल जैन

भूमिका

अर्ध-कथानक

कविवर बनारसीदासजीने अपनी इस निजकथा या आत्म-कथामें अपने जीवनके ५५ वर्षोंका घटनाबहुल इतिहास लिखा है। मनुष्यकी उत्कृष्ट आयुमर्यादा ११० वर्षकी बतलाकर उसकी आधी कथा इसमें दी है, इसलिए उन्होंने इसका सार्थक नाम अर्ध-कथानक रखा है और अगहन सुदी पंचमी, सोमवार, संवत् १६९८ को यह समाप्त की गई है। इसके आगेकी कथा वे नहीं लिख सके। क्योंकि कुछ ही समय बाद १७०० के अन्तमें उनका शरीरान्त हो गया।

हिन्दी साहित्यमें यह अनोखी रचना है। इस देशकी अन्य भाषाओंमें भी इतनी पुरानी कोई आत्म-कथा नहीं है। अभी तक तो सर्वसाधारणका यही खयाल है कि यह चीज हमारे यहाँ विदेशोंसे आई है और वहींकी आत्म-कथाओंके अनुकरणपर यहाँ आत्मकथाएँ लिखनेका प्रारम्भ हुआ है। परन्तु अबसे तीनसौ वर्ष पहले यहाँके एक हिन्दी कविने भी आत्म-कथा लिखी थी, इस बातपर इसे देखे बिना कोई सहसा विश्वास नहीं कर सकता[१]। यद्यपि इस समय जिस ढंगकी आत्म-कथाएँ लिखी जाती हैं, उनमें और अर्ध-कथानकमें बहुत अन्तर है, फिर भी इसमें आत्म-कथाओंके प्रायः सभी गुण मौजूद हैं और भारतीय साहित्यमें यह गर्व करनेकी चीज है। इसमें कविने अपने गुणोंके साथ साथ दोषोंको भी बड़ी स्पष्टतासे प्रकट किया है और सर्वत्र ही सचाईसे काम लिया है। 'अर्ध-कथानक' गद्यमें नहीं, पद्यमें लिखा गया है और उसकी भाषाको कविने मध्य देसकी बोली कहा है—

१—कहते हैं कि बादशाह बाबरने फारसीमें जो आत्मचरित (बाबरनामा) लिखा है, वह एक अपूर्व ग्रन्थ है। उसमें बाबरका विस्तृत और मार्मिक निरीक्षण, उसकी खिलाड़ी और विनोदी वृत्ति, जीवनके विविध रोमहर्षक प्रसंग, उसकी रसिकता, मनुष्यपरीक्षा, आदतें आदिका मनोज्ञ वर्णन है।—देखिए, अक्टूबर १९४७ के नवभारत (मराठी) में प्रा० दत्तो वामन पोतदारका 'अर्ध-कथानक' नामक लेख।

मध्यदेसकी बोली बोलि,
गरभित बात कहौं हिय खोलि।

'बोली' का मतलब उस समयकी बोलचालकी भाषा है, साहित्यिक भाषा नहीं। बनारसीदास उच्च श्रेणीके कवि थे, उनकी अन्य रचनाएँ प्रायः साहित्यिक भाषामें ही हैं, परन्तु उन्होंने इस आत्म-कथाको बिना आडम्बरकी सीधी सादी भाषामें लिखा है जिसे सर्वसाधारण सुगमतासे समझ सकें। यद्यपि इस रचनामें भी उनकी स्वाभाविक कवित्वशक्तिका परिचय मिलता है परन्तु वह अनायास ही प्रकट हो गई है, उसके लिए प्रयत्न नहीं किया गया। इस रचनासे हमें इस बातका आभास मिलता है कि उस समय बोलचालकी भाषा किस ढंगकी थी और जिसे आजकल खड़ी बोली कहा जाता है उसका प्रारंभिक रूप क्या था।

डॉ० माताप्रसाद गुप्तने लिखा है कि "यद्यपि मध्य देशकी सीमाएँ बदलती रही हैं पर प्रायः सदैव ही खड़ी बोली और ब्रजभाषी प्रान्तोंको मध्यदेशके अन्तर्गत माना जाता रहा है, और प्रकट है कि अर्ध-कथाकी भाषामें ब्रजभाषाके साथ खड़ी बोलीका किंचित् सम्मिश्रण है, इसलिए लेखकका भाषाविषयक कथन सर्वथा संगत जान पड़ता है। यहीं तक नहीं, कदाचित् इसमें हमें उस जनभाषाका प्रयोग मिलता है, जो उस समय आगरेमें व्यवहृत होती थी। आगरा दिल्लीके साथ ही उस समय मुगल शासकोंकी राजधानी थी, इसलिए उस स्थानकी बोलीमें इस प्रकारका संमिश्रण स्वाभाविक था। उस समयकी साहित्यकी भाषाओंके नमूने भरे पड़े हैं किन्तु सामान्य व्यवहारकी भाषाओंके नमूने कम मिलेंगे।...केवल कविताकी दृष्टिसे भी अर्ध-कथाका स्थान ऊँचा है। साहित्यिक परम्पराओंसे मुक्त, प्रयासरहित शैलीमें घटनाओंके सजीव और यथातथ्य वर्णनका जहाँ तक सम्बन्ध है, इतनी सुन्दर रचना हमारे प्राचीन हिन्दी साहित्यमें कम मिलेगी[१]।"

पाठक इसे थोड़े ही परिश्रमसे पढ़कर समझ जायँगे, इसलिए इसका अर्थ अलगसे नहीं दिया गया परन्तु शब्दकोश, स्थान-परिचय, व्यक्तिपरिचय अदि परिशिष्टोंमें देकर इसे हर तरहसे सुगम कर दिया गया है, इससे पढ़नेमें आनन्द तो मिलेगा ही, साथ ही सोचने समझनेकी भी बहुत-सी सामग्री मिलेगी।

१—प्रयाग विश्वविद्यालय हिन्दी परिषत् द्वारा प्रकाशित 'अर्द्ध-कथा' की भूमिका पृ० १४-१५।

पूर्व पुरुष

बनारसीदास एक सम्पन्न और सम्मान्य कुलमें उत्पन्न हुए थे। उनके पितामह मूलदास हिन्दुगी और फारसीके ज्ञाता थे और सं० १६०८ में नरवर (ग्वालियर) के किसी मुगल उमरावके मोदी बनकर गये थे। उनके मातामह मदनसिंह चिनालिया जौनपुरके नामी जौहरी थे और पिता खरगसेनने कुछ समय तक बंगालके सुलतान सुलेमान पठानके राज्यमें चार परगनोंकी पोतदारी की थी। उसके बाद वे जवाहरातका व्यापार करने लगे और इलाहाबादमें कुछ समय तक शाहजादा दानियाल (दानिसाह) की सरकारमें जवाहरातका लेन-देन करते रहे थे। इसी तरह उनके रिश्तेदार और मित्र भी धनी-मानी थे।

उन्होंने अपनी जाति श्रीमाल और गोत बिहोलिया लिखा है और लोगोंसे सुनसुनाकर बतलाया है कि रोहतकके निकट बीहोली[2] गाँवमें राजवंशी राजपूत रहते थे, वे गुरुके उपदेशसे अधभूत कर्म छोड़कर जैनी हो गये और (नमोकार) मन्त्रकी माला पहिनकर उन्होंने श्रीमाल कुल और बीहोलिया गोत पाया।

१—अकबरके तीन बेटों—सलीम, मुराद और दानियाल—में यह तीसरा था। इसे सात हजारी मनसब दिया गया था। रहीम खानखानाका यह दामाद था। संवत् १६५६ के लगभग यह इलाहाबादमें था। बीजापुरके सुल्तानकी लड़कीके साथ भी १६६१ में इसकी शादी हुई थी।

२—इस गाँवके बारेमें मैंने रोहतकके वकील बाबू उग्रसेनजीसे पूछताछ की, तो उन्होंने लिखा कि "बीहोली गाँव अब करनाल जिलेमें पानीपतसे कुछ दूर जमुनाके किनारे है और रोहतकसे लगभग ३५ कोसके फासिलेपर होगा।" बाबू जयभगवानजी वकीलने बड़े परिश्रमसे खोज-बीन की और लिखा कि 'बीहोली पानीपत तहसीलका एक गाँव है, जो पानीपतसे उत्तरकी ओर १० मीलपर है। वह जाटोंकी बस्ती है। इस गाँवका पुराना इतिहास जाननेके लिए सन् १८८० के बन्दोबस्तके समय तैयार की गई 'कैफियत दही' देखी। उससे मालूम हुआ कि अबसे २० पीढ़ी पहले—सन् १४४० के लगभग दो जाटोंने उस समयके हाकिमसे इजाजत लेकर इस गाँवको फिरसे आबाद किया था। उस समय वह ऊजड़

अर्ध-कथानकसे मालूम होता है कि उस समय जयपुरसे लेकर आगरा, फतेहपुर, अलीगढ़, मेरठ, दिल्ली, इलाहाबाद, खैराबाद, (अवध), पटना, और बंगाल तक श्रीमाल, ओसवाल, अग्रवाल व्यापारी फैले हुए थे और उनकी काफी प्रतिष्ठा थी। नवाबों, सूबेदारों और हाकिमोंसे उनका विशेष सम्बन्ध रहता था। ऐसा जान पड़ता है कि वे अधिकांशमें शिक्षित भी होते थे, और नवाबों, हाकिमोंकी भाषा भी जानते थे। दादा मूलदास हिन्दुगी फारसी पढ़े थे, खरगसेन पोतदारीका काम कर सकते थे, बनारसीदास विविधदेशभाषा-प्रतिबुद्ध थे।[1]

सामाजिक स्थिति

डा० ताराचन्दने अर्ध-कथानककी आलोचना (विश्ववाणी, फरवरी १९४४) करते हुए लिखा है "बनारसीदास अकबर, जहाँगीर, और शाहजहाँके समकालीन थे। बादशाहोंके लिए उनके दिलमें भक्ति थी। अकबरकी मृत्युका समाचार सुनकर वे बेहोश होकर सीढ़ीपरसे गिर पड़े और लहूलुहान हो गये। जहाँगीर और शाहजहाँका आदरके साथ नाम लिया है। मुगल सूबेदारोंकी बाबत लोगोंमें पहलेसे शोहरत होती थी कि उनका बरतावा कैसा है। अगर कोई हाकिम कड़ा मशहूर होता था तो मालदार साहूकारोंमें खलबली मच जाती थी। लेकिन ऐसे हाकिम कम होते थे। हाकिमों और साहूकारोंमें अच्छे सम्बन्ध होते थे। बनारसीदास चीनें किलीचखाँको नाममाला श्रुतबोध वगैरह ग्रन्थ पढ़ाते थे।"

पड़ा हुआ खेड़ा था। ऐसी दशामें वर्तमान बीहोली गाँव अर्ध-कथानकमें बतलाया हुआ बीहोली नहीं हो सकता जो रोहतकके निकट था। संभव है, उनके समयका बीहोली गाँव अब रहा ही न हो या अब उसका और नाम हो।"

१-प्रा० पोतदार लिखते हैं, "तत्कालीन शिक्षा-प्रसारके विषयमें इससे यह निश्चित अनुमान किया जा सकता है कि सब नहीं तो कमसे कम व्यापारी वर्गके बहुत-से लोग हिन्दी और फारसी उस समय पढ़ते थे और लिखने पढ़नेमें निष्णात होते थे।"

२—इसके पिता नवाब कुलीचखाँने जौहरियोंपर बड़ा जुल्म किया था। यह इन्दूजान (तूरान देश) का रहनेवाला जानी कुरबानी जातिका तुर्क था।

"शासनके बारेमें जान पड़ता है कि अमन अमान काफी था। बनारसी-दासने पंजाबमें रोहतकसे लेकर बिहारमें पटना तक कई सफर किये। एक दफा रास्ता भूलकर चोरोंके गाँवमें खतरेमें पड़े, पर ब्राह्मण बनकर छूट गये। दूसरी दफा इनके साथियोंका एक जगह गाँववालोंसे झगड़ा हो गया। उनकी शिकायत-पर दीवानी और फौजी अफसरोंने तहकीकात की और इसका भी नतीजा यह हुआ कि मुकदमा आसानीसे झूठा साबित हुआ और इन्हें कोई तकलीफ नहीं उठानी पड़ी। मालूम होता है कि उस समय व्यापारी कीमती सामान लिए हुए इधरसे उधर तक आते जाते थे। हुंडी परचे खूब चलते थे।

"समाज खुशहाल मालूम होती है। भूखों और मंगते फकीरोंका कहीं जिक्र नहीं। लोग एक दूसरेकी मदद करते थे। बनारसीदासको आगरेके हलवाईने छह महिने तक मुफ्त (उधार) कचौरियाँ खिलाईं। पचपन सालोंमें एक दफा अकाल पड़ा। जहाँगीरके समयमें ताऊन फैला। इसके अलावा कोई बड़ी मुसीबत नहीं आई। राजनीतिकी ऐसी घटनाओं जैसी सलीमकी बगावतका जरूर यह असर होता था कि जौहरी लोग शहरसे इधर उधर भाग जाते थे। लोग जत्थे बनाकर यात्राओंको जाते। बनारसीदासने कहीं किसी तरहकी रोक-थामका जिक्र नहीं किया।

"स्त्रियोंकी बहुत कद्र नहीं थी। पुरुष-स्त्रीका प्रेम और बराबरीका नाता नहीं था। बनारसीदासकी स्त्रीका देहान्त होता है, एक ही नाई मरनेकी खबरके साथ दूसरी लड़कीकी सगाई लाता है। वे अपनी ब्याहताके होते हुए इधर उधर आशिकी करते फिरते हैं। लेकिन पत्नी अपना धर्म समझती है कि पतिकी सेवा करे और गाढ़े समयमें अपना सारा धन उसको सोंप दे।

"लोगोंमें धर्मकी बहुत चर्चा थी। जीवनका यही ध्येय था कि मनमें शान्ति, समता, स्नेह उजागर हो। इसीके साथ अन्धविश्वास और जादू टोना भी खूब चलता था।

"अर्ध-कथानकके पढ़नेसे हिन्दुस्तानके मध्यकालके इतिहासके समझनेमें मदद मिलती है और समाज और राजकी अच्छाई बुराईका पता लगता है।"

वहम और अन्धविश्वास

वहमों और अन्धविश्वासोंकी उस समय भी कमी नहीं थी, सर्वसाधारणके समान जैन समाज भी उससे मुक्त नहीं था और न दूसरोंसे किसी तरह अलग ही था। रोहतककी कोई सतीदेवी उन दिनों बहुत प्रसिद्ध थी। दूरदूरके लोग मानताके लिए जाते थे। बनारसीके पिता खरगसेन अपनी पत्नीसहित दो बार उसकी यात्राके लिए गये और एक बार तो रास्तेमें लुट भी गये, तो भी उनकी माताको सोलह आने विश्वास रहा कि बनारसीदासका जन्म उक्त सतीके ही प्रसादसे हुआ है। उधर बनारसमें पार्श्वनाथके यक्षने पुजारीको प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा था कि इस बालकका नाम पार्श्वजन्मस्थान (बनारसी) के नामपर रख देनेसे फिर इसके लिए कोई चिन्ता न रहेगी और यह चिरजीवी होगा और तदनुसार माता-पिताने इनका नाम बनारसीदास रख दिया।

अपनी पूर्वावस्थामें स्वयं बनारसीदास भी इस तरहके वहमोंके शिकार हुए थे। जैन होते हुए भी एक जोगीके कहनेसे एक साल तक सदाशिवके शंखकी पूजा करते रहे और संन्यासीके दिये हुए मन्त्रका जाप उन्होंने इस आशासे लगातार एक साल तक पाखानेमें बैठकर किया कि जाप पूरा होनेपर हररोज दरवाजेपर एक दीनार पड़ा हुआ मिला करेगा ! आगरेसे अपने दो मित्रोंके साथ पूजा करनेके लिए वे कोल (अलीगढ़) गये और प्रतिमाके आगे खड़े होकर बोले, ' हे नाथ हमको लक्ष्मी दो, यदि लक्ष्मी दोगे, तो हम फिर तुम्हारी जात्रा करेंगे।" अर्थात् जिनदेव भी प्रसन्न होकर लक्ष्मी देते थे !

विद्या-शिक्षा और प्रतिभा

बनारसीदास जब आठ बरसके हुए तब चटशालामें जाने लगे और पांडे गुरुसे विद्या सीखने लगे। इस विद्यामें अक्षरज्ञान और लेखा (गणित) मुख्य जान पड़ता है। एक वर्षमें ही व्युत्पन्न हो गये। उनके पिता खरगसेन भी इसी उम्रमें चटशालामें पढ़ने गये। उस समय शिक्षाकी क्या व्यवस्था थी, इसका तो ठीक पता नहीं, परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि प्रत्येक नगरमें चटशाला या छात्रशाला रहा करती थी और उसमें पाँडे गुरु जीवनोपयोगी लिखने पढ़ने और लेखे-जोखेकी शिक्षा दिया करते थे। व्यापारियोंके लड़के इस शिक्षणसे इतने व्युत्पन्न हो जाते थे कि अपना कारबार भली भाँति सँभाल लेते थे।

खरगसेन इस शिक्षासे सोने चाँदीकी परख करने लगे, बही-खाते विधिपूर्वक लिखने लगे और हाटमें बैठकर सराफी सीखने लगे। बनारसीदास भी इसी तरह व्युत्पन्न होकर नौ बरसकी अवस्थामें ही कमाई करनेमें लग गये। इसके आगे भी जो विशेष शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे उनके लिए भी प्रबन्ध था। बनारसी-दास जब १४ वर्षके हुए, तब उन्होंने पं देवदत्तके पास नाममाला, अनेकार्थ, ज्योतिष, कोक, और चार सौ श्लोक पढ़े। इसके बाद जब जौनपुरमें भानुचन्द्र यति आये, तब उनसे उपासरेमें पंचसंधि, स्फुट श्लोक, छन्दकोश, श्रुतबोध, स्नात्रविधि, प्रतिक्रमण आदि मुखाग्र किये।

इस तरह आजकलकी दृष्टिसे उन्होंने पढ़ा-लिखा तो कुछ अधिक नहीं परन्तु अपनी स्वाभाविक प्रतिभाके कारण आगे चलकर वे अच्छे विचारक और सुकवि हो गये। कवित्व शक्ति तो उनमें जन्मजात थी। तभी न १४ वर्षकी अवस्थामें एक हजार पद्योंके एक नवरसयुक्त काव्यकी रचना कर डाली।

इश्कबाजी

जिस तरह बनारसीदासमें कवित्वशक्तिका विकास समयसे बहुत पहले हो गया उसी तरह उनका यौवन भी जल्दी ही विकसित हुआ। पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें ही वे इश्कमें पड़ गये और उसमें इतने मशगूल हो गये कि न किसीकी परवा की और न लोक-लाजका कोई खयाल किया। अपनी ससुराल खैराबादमें जाकर वे जिस रोगसे आक्रान्त हुए उसके विवरणसे स्पष्ट मालूम होता है कि वह गर्मी या उपदंश था और उसीका यह परिणाम हुआ कि उनके एकके बाद एक नौ बच्चे हुए परन्तु उनमेंसे एक भी नहीं बचा, सब थोड़े थोड़े दिन ही रहकर कालके गालमें चले गये और दो स्त्रियाँ प्रसूति-कालमें ही मर गईं। बनारसीदासके एक साथी धरमदास थे जिनके विषयमें लिखा है कि वे कुपूत थे, कुसंगतिमें रहते थे, कुव्यसनी थे, धन बरबाद करते थे और नशा करते थे।

इससे मालूम होत है कि उस समय शहरोंके तरुण कितने व्यसनाधीन थे और उनके गुरुजनोंका उनपर कितना कम अंकुश था। जैन गुरुके पास धर्मशिक्षा लेते हुए भी वे व्यसनसे मुक्त न हो सके। चौदह वर्षकी अवस्थामें

उन्होंने कोकशास्त्र पढ़ा था, कहा नहीं जा सकता कि इसका उनके चरित्रपर क्या प्रभाव पड़ा होगा। नवरसरचनामें तो जरूर ही उसने सहायता दी होगी।

जनेऊकी कथा

एक बार बनारसीदास अपने मित्र और उसके ससुरके साथ पटना जा रहे थे कि एक चोरोंके गाँवमें जा पहुँचे। चोर ब्राह्मणोंको नहीं सताते थे और जनेऊ ब्राह्मणत्वका चिह्न है। इस लिए इन तीनोंने उस समय सूतसे जनेऊ बँटकर पहिन लिये, मस्तकपर तिलक लगा लिया और श्लोक पढ़कर उन्हें आशीर्वाद दिया। फल यह हुआ कि चोरोंके चौधरीने इन्हें ब्राह्मण समझकर आरामसे अपनी चौपालपर ठहराया और दूसरे दिन आदरपूर्वक विदा कर दिया। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि उस समय जैन श्रावक जनेऊ नहीं पहिनते थे[1] और ब्राह्मण चोरोंके लिए भी पूज्य थे।

साहूकारोंका वैभव

उस समय बहुत बड़े बड़े साहूकार और प्रभावशाली धनी थे। अर्ध-कथानकमें अनेक व्यापारियोंकी चर्चा आई है। उनमेंसे आगरेके नेमासाहुके पुत्र सबलसिंघ मोठियाका वर्णन विशेषरूपसे दिलचस्प है। उनके यहाँ बनारसीदासका साझेका हिसाब पड़ा था। साहूका पत्र जौनपुर पहुँचा कि तुम्हारे बिना हिसाब नहीं हो सकता, तुम आगरे आकर उसे साफ कर जाओ। इसपर वे रास्तेकी अनेक मुसीबतें झेलकर आगरे आये और हिसाबके लिए साहुजीके घर जाने आने लगे, पर वहाँ लेखा-कागज कौन पूछता था? देखा कि साहुजी वैभवमें मदमत्त हैं, कलावंतोंकी पंक्ति गा बजा रही है, मृदंग बज रहे हैं, शाहजादेकी तरह महफिल जमी हुई है, निरन्तर दान दिया जा रहा है, कवि और बन्दीजन कवित्त पढ़ रहे हैं, उस साहबीका वर्णन कौन कर सकता है? देखकर सब चकित हो जाते थे। बनारसीदास सोचते थे—हे भगवन्, यह लेखा किसके पास आ बना है। सेवा करते करते हाजिरी देते देते महीनों बीत गये। जब भी लेखेकी बात की जाती, साहुजी कहते, कल सवेरे हो जायगा। उनकी घड़ी एक

१—अ० क० ४१७-४२६।

महीनेकी, रात छह महीनेकी और दिन कितनेका होगा, सो राम ही जानते हैं ! जहाँ विलासी जीव विषयमग्न है, वहाँ सूर्यका उदय-अस्त कहाँ होता है !

इस तरह बहुत दिन बीत जानेपर जब सबलसिंहके बहनेऊ अंगनदास एक दिन रास्तेमें मिल गये, तब इन्होंने अपना यह दुख उनको सुनाया और उन्होंने उसी दिन साहुके यहाँ जाकर सब कागज मँगाकर हिसाब साफ कर दिया और फारखती लिखा दी। बनारसीदासजीने वैभवशाली आगरा नगरके उस समयके एक विलासी साहूकारका यह वर्णन आँखों देखा ही नहीं, स्वयं अनुभव किया हुआ लिखा है ! ऐसे ही एक बड़े भारी धनी हीरानन्द मुकीम थे, जो जहाँगीरके कृपापात्र थे, जिन्होंने सं० १६६१ में प्रयागसे सम्मेदशिखरके लिए बड़ा भारी संघ निकाला था और १६६७ में आगरेमें बादशाहको अपने घर बुलाकर लाखोंका नजराना दिया था।

धन्नाराय नामके एक धनी बंगालके पठान सुलतानके दीवान थे जिनके हाथके नीचे पाँच सौ श्रीमाल वैश्य पोतदारीका या खजानेकी वसूलीका काम करते थे। इन्होंने भी सम्मेदशिखरकी यात्राके लिए संघ निकाला था।

शासनमें धार्मिक पीड़न नहीं

अर्ध-कथानकमें हुमायूँसे लेकर शाहजहाँ तक मुगलों और कई पठान राज्योंकी चर्चा आई है, परन्तु उससे यह नहीं मालूम होता कि केवल धर्मके कारण दूसरे धर्मकी प्रजाको सताया जाता हो। जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, जहाँगीरने हीरानन्द मुकीमको और पठान सुल्तानने धन्नारायको यात्रासंघ निकालनेमें सहायता दी थी और इन सबके समयमें सैकड़ों जैन मन्दिरोंकी प्रतिष्ठाएँ हुई थीं जो उस समयके शिलालेखों और प्रतिमालेखोंसे स्पष्ट हैं। बनारसीदासने नाटक समयसारमें लिखा है कि शाहजहाँके समयमें इस ग्रन्थकी चैनसे रचना की, कोई ईति भीति नहीं व्यापी और यह उनका उपकार है[१]। इस तरह उस समयके और भी अनेक कवियोंने इन मुसलमान बादशाहोंके प्रति सद्भाव प्रकट किये हैं। किसी किसी नवाब और अधिकारीके द्वारा यदाकदा अन्याय होता था परन्तु

१— जाके राज सुचैन सौं, कीन्हों आगम सार।
ईति भीति ब्यापी नहीं, यह उनको उपगार॥

वह केवल धनके लिए होता था जैसे कि नवाब कुलीचखाँने और आगानूरने जौनपुरके जौहरियोंपर किया था[1] और नरवरमें खरगसेनके पिताका घर-बार जप्त कर लिया था। पर ऐसी घटनाएँ तो राज्योंमें अक्सर होती रहती हैं। बादशाह अकबरने श्वेताम्बराचार्य हीरविजयका सत्कार किया था और उनके शिष्य भानुचन्द्रको अपना 'सूर्यसहस्रनामाध्यापक' बनाया था, अर्थात् उस समयके शासक केवल भिन्नधर्मी होनेके कारण प्रजापर अत्याचार नहीं करते थे और हिन्दुओंको बड़े बड़े ओहदे भी देते थे।

अकबरकी मृत्युकी खबर सुनकर बनारसीदासको मूर्च्छा आ गई थी, यह उसके शासनकी लोकप्रियताका बड़ा भारी प्रमाण है।

गुण और दोष

अपनी आत्मकथाके ६४७ से ६५९ तकके १३ पद्योंमें बनारसीदासने अपने वर्तमान गुणों और दोषोंका एक तटस्थ व्यक्तिकी तरह बहुत ही स्पष्ट वर्णन किया है और यह उनके सच्चे अध्यातमी होनेका प्रमाण है। वे जैसे हैं वैसे ही अपनेको प्रकट करना चाहते हैं, कुछ भी छुपानेका प्रयत्न नहीं करते। यदि उन्हें ख्याति लाभ पूजाकी चाह होती, तो वे बहुत सहजमें पुज जाते और उस समयकी हजारों, लाखों, भेड़ोंको अपने बाड़ेमें घेर लेते। न उन्होंने स्वयं अपनी महत्ताके गीत गाये और न अपने गुणी मित्रोंसे गवानेका प्रयत्न किया। त्यागी व्रती बननेका भी कोई ढोंग नहीं किया। आगरेमें वे एक साधारण गृहस्थकी तरह अपनी पत्नीके साथ अन्त तक आनन्दसे रहे—'विद्यमान पुर आगरे सुखसौं रहै सजोष।'

गुणोंके वर्णनमें भी उन्होंने किसी तरहकी अतिशयोक्ति नहीं की है—भाषा, कविता और अध्यात्ममें उनकी जोड़का कोई दूसरा नहीं, क्षमावान् और सन्तोषी। कविता पढ़नेकी कलामें उत्तम, विविध देशभाषाओंके (गुजराती, पंजाबी, ब्रज, बिहारी) में प्रतिबुद्ध, शब्द और अर्थका मर्म समझनेवाले, दुनियाकी चिन्ता

१—जौनपुरके सूबेदार नवाब कुलीचखाँके प्रजापीड़नकी शिकायत जब बादशाहके पास पहुँची, तो उसे वापस बुला लिया गया और यदि वह रास्तेमें न मर जाता तो उसे कड़ा दण्ड मिलता।

न करनेवाले, मिष्टभाषी, सबपर स्नेह रखनेवाले, जैन धर्मपर दृढ विश्वास रखनेवाले, सहनशील, कुवचन न कहनेवाले, सुस्थिर चित्त, डावाँडोल नहीं, सबको हितकारी उपदेश देनेवाले, सुष्ट हृदय, जरा भी दुष्टता नहीं, पराई स्त्रीके त्यागी, और कोई कुव्यसन नहीं, और हृदयमें शुद्ध सम्यक्त्वकी टेक रखनेवाले।

दोष बतलाते हुए लिखा है—क्रोध, मान और माया ये तीन कषाएँ तो जल-रेखाके समान हैं, परन्तु लक्ष्मीका मोह (लोभ) अधिक है। घरसे जुदा नहीं होना चाहते। जप, तप संयमकी रीति नहीं, दान और पूजा-पाठमें कोई रुचि नहीं, थोड़े-से लाभमें बहुत हर्ष और थोड़ी-सी हानिमें बहुत चिन्ता। मुँहसे भद्दी बात निकालते लज्जित नहीं होते, शर्त लगाकर भाँडोंकी कला सीखते हैं, जो नहीं कहने योग्य है, उसकी कथा कहते हैं, एकान्त पाकर नाचने लगते हैं, नहीं देखी और नहीं सुनी हुई कथाएँ गढ़कर सभामें कहते हैं, हास्य-रसको पाकर मगन हो जाते है और झूठी बातें कहे बिना जी नहीं मानता, अकस्मात् ही बहुत डर जाते हैं।

ऊपर जो दोष और गुण कहे हैं, उनमेंसे कभी कोई और कभी कोई, जिसका उदय होता है, वह प्रकट हो जाता है। और उन गुण-दोषोंकी जो अगणित सूक्ष्म दशाएँ हैं, उनको तो भगवान् ही जानते हैं।

उत्तम, मध्यम और अधम मनुष्य

बनारसीदासने इन दोष-गुणोंके कथनको लेकर तीन प्रकारके मनुष्य बतलाये हैं—

१ उत्तम—जो दूसरोंके दोष छुपाकर उनके गुणोंको विशेष रूपसे कहते हैं और अपने गुणोंको छोड़कर दोष ही बतलाते हैं।

२ मध्यम—जो परायोंके दोष-गुण दोनों कहते हैं और अपने गुण-दोष भी बतलाते हैं।

३ अधम—जो सदा पराये दोष कहते हैं, उनके गुणोंको छुपा जाते हैं परन्तु अपने दोषोंको लोप करके गुणोंको ही कहते हैं।

इन तीन प्रकारके मनुष्योंमेंसे उन्होंने अपनेको मध्यम प्रकारका बतलाया है और बहुत ठीक बतलाया है—

जे भाखहिं-पर-दोष-गुन, अरु गुन-दोष सुकीउ।
कहहिं, सहज ते जगतमैं, हमसे मध्यम जीउ॥ ६६८

अन्तमें कहा है कि इस बनारसी-चरित्रको सुनकर दुष्ट जीव तो हँसेंगे, परन्तु जो मित्र हैं वे इसे कहेंगे और सुनेंगे।

बनारसीदासजीका मत

बनारसीदासजीका जन्म श्रीमाल जातिमें हुआ था और यह जाति श्वेताम्बर सम्प्रदायकी अनुगामिनी है। उनके अधिकांश संगी-साथी और रिश्तेदार भी श्वेताम्बर थे। उनके गुरु भानुचन्द्रजी खरतरगच्छके जती थे। स्नात्रविधि, सामायिक, पडिकोना (प्रतिक्रमण), अस्तोन (स्तवन) आदि श्वेताम्बर क्रियाकांडके पाठोंको उन्होंने पढ़ा था और पोसाल या उपासरेमें वे नित्य प्रति जाया करते थे। बनारसीविलासकी कुछ रचनाओंमें भी श्वेताम्बरत्वकी झलक है[२]।

आगरेके प्रसिद्ध चिन्तामणि पार्श्वनाथ और खैराबादके खैराबाद-मंडन अजितनाथके उन्होंने स्तवन बनाये थे—और ये बतलाते हैं कि वे श्वेताम्बर श्रावक थे।

जब वे अपनी ससुराल खराबादमें तीसरी बार (सं० १६८०) गये तब वहाँ उन्हें अरथमलजी ढोर नामके एक सज्जन मिले जो अध्यात्मकी

१—अर्ध-कथानक पद्य ५८६–८८ और ५९२–९३।

२—अ० क० के पद्य ५८३ में शान्ति-कुंथु-अरनाथका वर्णन श्वेताम्बर स० के अनुसार है। दि० स० के अनुसार अरनाथकी माताका नाम मित्रा और लांछन मत्स्य होना चाहिए। उन्होंने सोमप्रभकी सूक्तमुक्तावलीका पद्यानुवाद अपने मित्र कँवरपालके साथ मिलकर किया है, जो श्वेताम्बर ग्रन्थ है। बनारसीविलासके राग आसावरी (पृ० २३६) में प्रसन्नचन्द्र ऋषिका उल्लेख भी श्वे० स० के अनुसार है। दिगम्बर कथा-कोशोंमें या अन्य कथा-ग्रन्थोंमें प्रसन्नचन्द्रकी कथा नहीं है।

३—बनारसीविलास पृ० २४६। ४—ब० वि० पृ० १९३–९४। खरतर-गच्छके क्षान्तिरंग गणिने सं० १६२६ में खैराबाद-पार्श्वजिन-स्तुतिकी रचना की थी।

बातें जोरके साथ करते थे। उन्होंने समयसार-कलशोंकी पं० राजमल्लकृत बालबोध-टीका लिखकर दी और कहा कि—इसे पढ़िए, इससे सत्य क्या है, सो समझमें आ जायगा। तदनुसार पढ़ने लगे और उसके अर्थपर प्रतिदिन विचार करने लगे। पर उससे अध्यात्मकी असली गाँठ नहीं खुल सकी और वे बाह्य क्रियाओंको 'हेच' समझने लगे। 'करनी' या क्रिया — बाह्य आचार—में तो कोई रस रहा नहीं और आत्मस्वाद या आत्मानुभव हुआ नहीं, इस तरह वे न धरतीके रहे और न आसमानके[1]। उन्होंने जप-तप सामायिक प्रतिक्रमण आदि छोड़ दिये और हरी-त्याग आदिकी जो प्रतिज्ञाएँ की थीं वे भी तोड़ दीं। बिना आचारके बुद्धि बिगड़ गई। देवको चढ़ाया हुआ नैवेद्य तक खाने लगे। उन्हें अपने तीन साथियों—चन्द्रभान, उदयकरन और थानमल्लके साथ 'जूतंफाग' खेलनेमें, एक दूसरेकी सिरकी पगड़ी छीनने और धींगामस्ती करनेमें आनन्द आने लगा। चारों जनें यह खेल खेलते थे और फिर अध्यात्मकी बातें करते थे। चारों नंगे हो जाते थे और कोठरीमें घूमते हुए कहते थे—हम मुनिराज हो गये हैं, हमारे पास कोई परिग्रह नहीं रहा है। लोग समझाते थे, पर किसीकी बात नहीं सुनी जाती थी[2]। तब श्रावक और जती (श्वे० साधु) बनारसीदासको खोसराभती कहने लगे[3]। चूँकि वे पंडितरूपसे विख्यात थे इसलिए उन्हींकी निन्दा अधिक होती थी, दूसरोंकी नहीं। कुछ समयमें यह धूमधाम तो मिट गई पर कुछ और ही अवस्था हो गई। जिन-प्रतिमाकी मनमें निन्दा करने लगे और मुँहसे वह कहने लगे जो नहीं कहना चाहिए। गुरुके सम्मुख जाकर व्रत ले लेते थे और फिर आकर छोड़ देते थे। रात-दिनका विचार न करके पशुकी तरह खाते थे और एकान्त मिथ्यात्वमें मत्त रहते थे[4]।

१—करनीकौ रस मिटि गयौ, भयौ न आतमस्वाद।
भई बनारसिकी दसा, जथा ऊंटकौ पाद॥ ५९५

२—अर्ध-क० ५९५–६०६।

३—कहैं लोग श्रावक अरु जती। बानारसी खोसरामती॥ ६०८.

४—६११–१२।

बनारसीदासकी यह अवस्था सं० १६९२ तक रही और तब तक वे नियत-रस-पान करते रहे, अर्थात् केवल निश्चय नयको पकड़े हुए जीवन बिताते रहे।

इसके बाद सं० १६९२ के लगभग पांडे रूपचन्द नामके एक गुनी कहीं बाहरसे आगरे आये और तिहुना साहुने जो देहरा (मन्दिर) बनवाया था, उसमें आकर ठहरे। उनके पाण्डित्यकी प्रशंसा सुनकर सब अध्यातमी जाकर मिले और उनसे गोम्मटसार ग्रन्थ पढ़वाया। उसमें गुणस्थानोंके अनुसार ज्ञान और क्रिया (चारित्र) का विचार किया गया है। जो जीव जिस गुणस्थानमें होता है, उसीके अनुसार उसका चारित्र होता है। उन्होंने भीतरी निश्चय और बाहरी व्यवहारका भिन्न भिन्न विवरण दिया, सब बातोंको सब प्रकारसे समझा दिया और तब फिर अपने साथियोंके साथ बनारसीदासजीको भी कोई संशय नहीं रह गया। वे अब स्याद्वादपरिणतिमें परिणत होकर दूसरे ही हो गये।—"तब बनारसी औरै भयौ, स्यादवादपरनति परनयौ।"

यद्यपि पाण्डे रूपचन्दजी दिगम्बर सम्प्रदायके थे और गोम्मटसार भी उसी सम्प्रदायका ग्रन्थ है जिसके श्रवणसे वे निश्चय व्यवहारको ठीक ठीक समझे, फिर भी उनका और उनके साथी अध्यात्मियोंको दिगम्बर नहीं कहा जा सकता।

बनारसीदासजीने अर्ध-कथानकमें अपने सारे जीवनकी घटनाओंका ब्योरेवार इतिहास दिया है, पर उसमें उन्होंने कहीं भी अपने सम्प्रदायका उल्लेख नहीं किया और न कहीं यही लिखा है कि कभी अपना सम्प्रदाय बदला। उन्होंने आपको और अपने साथियोंको अध्यातमी[1] ही लिखा है, साथ ही जैनधर्मकी दृढ़ प्रतीति[2] और हृदयमें शुद्ध सम्यक्त्वकी टेक रखनेवाला कहा है[3]।

उस समय आगरेमें अध्यात्मियोंकी एक सैली या गोष्ठी थी जिसमें अध्यात्मकी चर्चा होती थी। इन अध्यात्मियोंकी प्रेरणासे ही उन्होंने नाटक समयसारको छन्दोबद्ध किया था। उसके अन्तमें लिखा है कि समयसार नाटकका मर्म समझनेवाले जिनधर्मी[4] पांडे राजमलजीने उसको बालबोध टीका बनाकर सुगम कर

१—बानारसी बिहोलिआ अध्यातमी रसाल।-६७१

२—जैन धरमकी दिढ परतीति। ३—हृदय सुद्ध समकितकी टेक।

४—पांडे राजमल्ल जिनधरमी, समैसार नाटकके मरमी।
तिन गिरंथकी टीका कीनी, बालाबोध सुगम कर दीनी॥ २३॥

दिया। इस तरह बोध-वचनिका सर्वत्र फैल गई, घर घर नाटककी बातका बखान होने लगा और समय पाकर अध्यात्मियोंकी सैली बन गई। आगरा नगरमें कारण पाकर अनेक ज्ञाता हो गये जिनमें पं० रूपचन्द, चतुर्भुज, भगवतीदास, कुँवरपाल और धर्मदास मुख्य थे। रात दिन परमार्थ या अध्यात्मकी चर्चा करनेके सिवाय इनके और कोई कथा नहीं थी[1]।

बनारसीबिलासका संग्रह करनेवाले संघी जगजीवनने भी आगरेकी अध्यात्म-सैलीका उल्लेख किया है[2]। पं० हीरानन्दने भी समवसरण विधानमें उस समयकी ग्यानमण्डलीका जिक्र किया है जिसमें पं० हेमराज, रामचन्द्र, मथुरादास, भगवतीदास और भवालदासके नाम हैं[3]।

पं० द्यानतरायने (वि० सं० १७५० के लगभग) आगरेकी मानसिंह जौहरीकी और दिल्लीकी सुखानन्दकी सैलीका उल्लेख किया है[4]। मुल्तानमें रची गई वर्धमान-वचनिकाके कर्त्ताने भी सुखानन्दकी सैलीकी चर्चा की है[5]।

१—इहि विधि बोध वचनिका फैली, समै पाइ अध्यातम सैली।
प्रगटी जगमाहीं जिनबानी, घर घर नाटक-कथा बखानी ॥ २४ ॥
नगर आगरेमांहि विख्याता, कारन पाइ भए बहु ग्याता।
पंच पुरुष अति-निपुन प्रबीने, निसिदिन ग्यानकथारस भीने ॥ २५ ॥
रूपचद पंडित प्रथम, दुतिय चतुर्भुज नाम।
तृतिय भगौतीदास नर, कौंरपाल सुखधाम ॥ २६ ॥
धरमदास ए पंच जन, मिलि बैठें इकठौर।
परमारथचरचा करैं, इनके कथा न और ॥ २७ ॥
इहि बिधि ग्यान प्रगट भयौ, नगर आगरेमांहि।
देसदेसमें बिस्तरयौ, मृषादेसमैं नांहि ॥ २८ ॥

२—समैजोग पाइ जगजीवन बिख्यात भयौ,
ग्यातन्निकी मंडलीमैं जिहिकौ बिकास है।—ब० वि० पृ०-२५२

३—देखो, परिशिष्ट, 'जगजीवन और भगौतीदास'।

४—आगरेमैं मानसिंह जौहरीकी सैली हुती,
दिल्लीमांहि अब सुखानंदजीकी सैली है। —धर्मविलास

५—अध्यातम सैली मन लाइ, सुखानन्द सुखदाइजी। —बर्धमान वचनिका

नारनोलनिवासी पं० खड्गसेनने अपने त्रिलोकदर्पण (वि० सं० १७१३) में लाभपुर या लाहौरके ज्ञाताओंका उल्लेख किया है[1] जिनमें पं० हीरानन्द, और संघवी जगजीवनके सिवाय रतनपाल, अनूपराय, दामोदरदास, माधवदास बिसनदास, हंसराज, प्रतापमल्ल, तिलोकचन्द, नारायणदास आदिके भी नाम दिये हैं—'ए सब ग्याता अति गुनवंत, जिनगुन सुनैं महा विकसंत।" और 'याहि लाभपुरनगरमैं, श्रावक परम सुजान। सब मिलकर चरचा करैं, जाको जो उनमान।' सो यह भी अध्यातम-सैली ही जान पड़ती है।

जयपुरमें भी सैलियाँ रही हैं, परन्तु उनका नाम पीछे तेरहपंथ सैली हो गया था। पं० जयचन्दजी छावड़ा (सं० १८६४) ने उसका उल्लेख किया है।[2]

ऐसा जान पड़ता है कि यह अध्यात्ममत और अध्यातमी बनारसी-दासजीके पहले भी थे। सं० १६५५ में जब बनारसीदासजी अपने पिताकी आज्ञासे फतेहपुर गये, तब जिन भगवतीदास ओसवालके घरपर ठहरे, उनके पिता बासूसाह अध्यातमी थे—'बासूसाह अध्यातमी जान।' और इसी तरह सं० १६८० में जब वे खैराबाद गये तब वहाँ अरथमल ढोर मिले जो अध्यात्मकी बातें जोर-शोरसे करते थे और उन्होंने समयसारकी राजमल्लकृत बालबोध-टीका इन्हें दी। शायद इस टीकाके प्रभावसे ही वे अध्यातमी हो गये[3]।

डा० वासुदेवशरण अग्रवालने लिखा है[4]—"बीकानेर-जैन लेख-संग्रहमें अध्यातमी सम्प्रदायका उल्लेख भी ध्यान देने योग्य है। वह आगरेके ज्ञानियोंकी मंडली थी जिसे 'सैली' कहते थे। अध्यातमी बनारसीदास इसीके प्रमुख सदस्य

१—महावीर-ग्रन्थमालाका प्रशस्तिसंग्रह पृ० २१६–१७

२—तामैं तेरहपंथ सुपंथ, सैली बड़ी गुनीगन ग्रंथ।

३ तब तहं मिले अरथमल ढोर, करैं अध्यातम बातें जोर।
तिन बनारसीसौं हित कियौ, समैसार नाटक लिखि दियौ ॥ ५९२

४—'मध्यकालीन नगरोंका सांस्कृतिक अध्ययन'-जैन-सन्देश, जून १९५७।

थे। ज्ञात होता है कि अकबरकी 'दीने इलाही' प्रवृत्ति इसी प्रकारकी आध्यात्मिक खोजका परिणाम थी। बनारसमें भी अध्यात्मियोंकी एक सैली या मंडली थी। किसी समय राजा टोडरमल्लके पुत्र गोवर्धनदास इसके मुखिया थे।"

सो बनारसीदासजी ऐसी ही अध्यातम सैलीके प्रमुख सदस्य थे और जैन थे,—श्वेताम्बर या दिगम्बर नहीं। वे परमतसहिष्णु और विचारोंमें उदार थे। बनारसीविलासमें संग्रहीत उनके कुछ दोहे देखिए—

तिलक तोष माला विरति, मति मुद्रा श्रुति छाप।
इन लच्छनसौं बैसनव, समुझै हरि-परताप॥ १
जौ हर घटमैं हरि लखै, हरि बाना हरि बोइ।
हर छिन हरि सुमरन करै, बिमल बैसनव सोइ॥ २
जो मन मूसै आपनो, साहिबके रुख होइ।
ग्यान मुसल्ला गहि टिकै, मुसल्मान है सोइ॥ ३
एक रूप हिन्दू तुरक, दूजी दसा न कोइ।
मनकी दुबिधा मानकर, भए एकसौं दोइ॥ ४

१—'दीने इलाही' बादशाह अकबरका प्रचलित किया हुआ नया धर्म था जिसमें मतसहिष्णुता और उदारताको प्रश्रय दिया गया था। "फतेहपूर सीकरीके इबादतखानेमें हर सातवें रोज भिन्न भिन्न धर्मोंके पण्डित इकट्ठे किये जाते थे। मुसल्मान मौलवी, हिन्दू पण्डित, ईसाई पादरी, बौद्ध भिक्षु और पारसी गुरु अपने अपने पक्षका समर्थन करते थे। बादशाहकी ओरसे अबुल फजल मन्त्रीका कार्य करता था। वह बहसके लिए सवाल सामने रखता था और मौका पाकर ऐसे शोशे छोड़ देता था कि भिन्न भिन्न धर्मोंके अनुयायी अपना पक्षसमर्थन छोड़कर परस्पर गाली गलौजपर उतर आते थे। अकबर मजहबी गुरुओंकी मूर्खताओंका तमाशा देखता था।...भिन्न भिन्न धर्मोंके वाद-विवादमेंसे उसने यह सार निकाला कि हरेक धर्ममें सचाईका अंश विद्यमान है, हर एक धर्ममें सचाईको रूढि ढोंग और कल्पनाओंके खोलमें ढँकनेका प्रयत्न किया है। आँखोंवाला आदमी उन ढँकनोंके अन्दर छुपी हुई सचाईको सब जगह देख सकता है, परन्तु नासमझ लोग सचाईको छोड़ रूढ़ि-ढोंग और कल्पनाके जालमें ही उलझ जाते हैं।...हिन्दूधर्म, जैनधर्म और ईसाइयतके धार्मिक विचारोंमेंसे उसने बहुत-सी कामकी बातें चुन लीं। वेदान्तके उपदेश उसे बहुत भाते थे।" —मुगल साम्राज्यका क्षय और उसके कारण, पृ० २४-२५।

दोऊ भूले भरममैं, करैं बचनकी टेक।
'राम राम' हिंदू कहैं, तुर्क 'सलामालेक' ॥ ५
इनके 'पुस्तक' बांचिए, वेहू पढ़ैं 'कितेब'।
एक वस्तुके नाम दो, जैसे 'सोभा' 'जेब' ॥ ६
तिनकौं दुबिधा, जे लखैं रंग बिरंगी चाम।
मेरे नैननि देखिए, घट घट अंतर राम ॥ ७
यहै गुपत यह है प्रगट, यह बाहर यह मांहि।
जब लगि यह कछु ह्वै रह्या, तब लगि यह कछु नाहिं ॥ ८
ब्रह्मग्यान आकासमैं, उड़ति, सुमति खग होइ।
जथासकति उद्यम करहि, पार न पावहिं कोई ॥ ९
जो महंत ह्वै ग्यान बिन, फिरै फुलाए गाल।
आप मत्त औरनि करैं, सो कलिमांहि कलाल ॥ १०

अन्य संतोंके समान ही उन्होंने लिखा है—

जो घरत्याग कहावै जोगी, घरवासीको कहै जो भोगी।
अंतरभाव न परखै जोई, गोरख बोलै मूरख सोई॥
पढ़ि ग्रंथहिं जो ग्यान बखानै, पवन साधि परमारथ मानै।
परम तत्तके होंहि न मरमी, कह गोरख सो महा अधरमी॥
बिन परचै जो बस्तु बिचारै, ध्यान अगनि बिन तन परजारै।
ग्यान मगन बिन रहे अबोला, कह गोरख सो बाला भोला॥

इससे उनके सम्प्रदायको श्वेताम्बर-दिगम्बर कहनेकी अपेक्षा अध्यातमी कहना ही ठीक है, जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है।

अध्यात्म-मतका विरोध

उनके इस मतका विरोध सबसे पहले श्वेताम्बर सम्प्रदायके साधुओंने किया। क्योंकि इस मतका प्रचार पहले श्वे० श्रावकोंमें ही हुआ था। आगे हम उनका और उनके विरोधका परिचय दे रहे हैं—

१—यशोविजयजी उपाध्याय—यशोविजयजीका संस्कृत, प्राकृत और गुजरातीमें विपुल साहित्य उपलब्ध है। बनारस और आगरामें अधिक समय

तक रहनेसे हिन्दीमें भी उन्होंने कुछ ग्रन्थ लिखे हैं। उनकी अध्यात्ममतपरीक्षा, अध्यात्ममतखण्डन और दिक्पट चौरासी बोल नामकी तीन रचनाएँ अध्यात्ममतके विरोधमें ही लिखी गई हैं। पहले ग्रन्थमें स्वोपज्ञ संस्कृतटीकासहित १८४ प्राकृत गाथाएँ हैं, दूसरा ग्रन्थ केवल १८ संस्कृत श्लोकोंका है और उसकी भी स्वोपज्ञ संस्कृतटीका है।

पहले ग्रन्थमें जैनसाधु उपकरण नहीं रखते, वस्त्र धारण नहीं करते, केवली आहार नहीं लेते, उन्हें नीहार नहीं होता, स्त्रियोंको मोक्ष नहीं, आदि दिगम्बर-मान्य सिद्धान्तोंका खंडन किया गया है। अध्यात्मके नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव ये चार भेद करके उन्होंने इस मतको 'नाम अध्यात्म' संज्ञा दी है और एक जगह कहा है कि जो उन्मार्गकी प्ररूपणा करके बाह्य क्रियाकांडका लोप करता है वह बोधि (दर्शन-ज्ञान-चरित्र) के बीजका नाश करता है[3]।

दूसरे ग्रन्थमें मुख्यतः केवलीके कवलाहारका प्रतिपादन है और अन्तमें लिखा है कि मिथ्यात्व मोहनीय कर्मके उदयके कारण जो विपरीत प्ररूपणा करते हैं, ऐसे दिगम्बरों और उनके अनुयायी आध्यात्मिकोंको दूरसे ही त्याग देना चाहिएँ। इस तरह साम्प्रतकालमें उत्पन्न आध्यात्मिक मतके नष्ट करनेमें दक्ष यह ग्रन्थ रचा गया[5]।

१—आत्मानन्द जैन सभा भावनगर द्वारा प्रकाशित।
२—जैनधर्मप्रसारक सभा भावनगर द्वारा प्रकाशित।

३—लुंपइ वज्झं किरियं जो खलु अज्झप्पभावकहणे णं।
सो हणइ बोहिबीजं, उम्मग्गपरूवणं काउं ॥ ४२

४—मिथ्यात्वमोहनीयकर्मोदयवशाद्विपरीतप्ररूपणाप्रवणा दिगम्बराः तन्मतानुयायिनस्त्वाध्यात्मिका दूरतः परिहरणीया इत्यस्माकं हितोपदेश इति ॥ १६

५—एवं साम्प्रतमुद्भवदाध्यात्मिकमतनिर्दलनदक्षम्।
रचितमिदं स्थलममलं विकचयतु सतां हृदयकमलम् ॥ १७

तीसरी 'दिक्पट चौरासी बोल' छन्दोबद्ध हिन्दी रचना है। इसमें सब मिलाकर १६१ पद्य हैं। यह पंडित हेमराजके 'सितपट चौरासी बोल' नामक पद्य-रचनाके उत्तरमें लिखा गया है। इसमें भी नाम अध्यातमी दिगम्बरोंके मतभेदोंका बड़ी ही कठोरभाषामें खंडन किया गया है[४]।

यद्यपि इन तीनों ही ग्रन्थोंमें बनारसीदासका उल्लेख नहीं है, सर्वत्र 'अध्यातमी' ही कहा गया है, तथापि लक्ष्य उनके वे ही हैं। वे जो 'साम्प्रतिक अध्यात्ममत' कहते हैं, सो भी यह बतलाता है कि बनारसीदासके सम्प्रदायसे ही उनका मतलब हैं और यह भी कि उससे पहले भी अध्यात्ममत था।

यशोविजयजी उपाध्यायके उक्त तीनों ही ग्रन्थोंमें उनका रचना-काल नहीं दिया गया है, परन्तु श्रीकान्तिविजयजी गणिने जो कि उनके समकालीन थे अपनी 'सुजसवेलि भास[६]' नामक पुस्तकमें लिखा है कि यशोविजयजीने सं० १६९९ में अहमदाबाद (राजनगर) में जब अष्टावधान किये, तब उनकी योग्यता देख कर एक धनी गृहस्थने उनके विद्याभ्यासके लिए धन देना स्वीकार किया और

१—देखो, यशोविजय उपाध्यायरचित गुर्जरसाहित्यसंग्रह प्रथमभाग, पृ० ५७२–९७ और श्रीभीमसी माणिकद्वारा प्रकाशित प्रकरणरत्नाकर भाग १, पृ० ५६६–७४।

२—हिन्दी होनेपर भी इसमें गुजरातीपन बहुत है। गुजराती शब्द भी बहुत हैं।

३—यह अभी प्रकाशित नहीं हुआ।

४—हेमराज पांडे किए, बोल चुरासी फेर।
या बिध हम भाषावचन, ताको मत किय जेर॥ १५९

५—'जस' वचन रुचिर गंभीर नय, दिक्पट-कपट-कुठार सम।
जिनवर्धमान सो बंदिए, विमलज्योति पूरन परम॥ १
भसमक ग्रह रज भसममय, तातैं बेसररूप।
उठे नाम अध्यातमी, भरमजाल अघकूप॥ ११

६—प्रकाशक, ज्योति कार्यालय, रतनपोल, अहमदाबाद।

वे बनारस गये। वहाँ उन्होंने तीन वर्ष तक विविध दर्शनोंका अभ्यास किया और फिर उसके बाद आगरे आकर एक न्यायाचार्यके पास सं० १७०३-४ से १७०७-८ तक कर्कश तर्कग्रन्थ पढ़े और उसके बाद अहमदाबादकी ओर विहार किया। जान पड़ता है, तभी १७०८ के लगभग उन्हें आगरेमें अध्यात्म-मतका परिचय हुआ होगा और तभी उक्त ग्रन्थ लिखे गये होंगे। पाण्डे हेमराजने 'सितपट चौरासी बोल' सं० १७०७ में लिखा है।

२–मेघविजयजी महोपाध्याय—यशोविजयजीके बाद मेघविजयजीने अध्यात्म मतके विरोधमें 'युक्तिप्रबोध'[1] नामका ग्रन्थ लिखा है जिसमें २५ प्राकृत गाथाएँ हैं और उनपर ४५०० श्लोक प्रमाण स्वोपज्ञ संस्कृतटीका है। मूल गाथाएँ और टीकाका कुछ अंश हम परिशिष्टमें दे रहे हैं। लिखा है कि आगरेमें 'आध्यात्मिक' कहलानेवाले 'वाराणसीय' मती लोगोंके द्वारा कुछ भव्य जनोंको विमोहित देखकर उनके भ्रमको दूर करनेके लिए यह लिखा गया।

ये वाराणसीय लोग श्वेताम्बरमतानुसार स्त्रीमोक्ष, केवलिकवलाहारादिपर श्रद्धा नहीं रखते और दिगम्बर मतके अनुसार पिच्छिका कमण्डलु आदिका भी अंगीकार नहीं करते, तब इनमें सम्यक्त्व कैसे माना जाय ?

आगरेमें बनारसीदास खरतरगच्छके श्रावक थे[3] और श्रीमालकुलमें उत्पन्न हुए थे। पहले उनमें धर्मरुचि थी। सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रोषध, तप, उपधानादि करते थे, जिनपूजन, प्रभावना, साधर्मीवात्सल्य, साधुवन्दना, भोजनदानमें आदरबुद्धि रखते थे, आवश्यकादि पढ़ते थे, और मुनि श्रावकोंके आचारको जानते थे। कालान्तरमें उन्हें पं० रूपचन्द, चतुर्भुज, भगवतीदास, कुमारपाल, और धर्मदास ये पाँच पुरुष मिले और शंका विचिकित्सासे कलुषित होनेसे तथा उनके संसर्गसे वे सब व्यवहार छोड़ बैठे। उन्हें श्वेताम्बर मतपर अश्रद्धा हो गई। कहने लगे कि यह परस्परविरुद्ध मत ठीक नहीं है, दिगम्बर मत ही सम्यक् है। वे लोगोंसे कहने लगे कि इस व्यवहार-जालमें फँसकर क्यों व्यर्थ ही अपनी विडम्बना कर रहे हो ? मोक्षके लिए तो केवल आत्मचिन्तनरूप

---

१ — ऋषभदेव-केसरीमल श्वेताम्बर संस्था, रतलाम द्वारा प्रकाशित।

निश्चय सम्यक्त्व ही उपयोगी है, उसीका आचरण करो, सर्वधर्मसार उपशमका आश्रय लो और इन लोकप्रत्यायिका क्रियाओंको छोड़ दो। अनेक आगम-युक्तियोंसे समझानेपर भी वे अपने पूर्वमतमें स्थिर नहीं हो सके बल्कि श्वेताम्बरमान्य दश आश्चर्यादिको भी अपनी बुद्धिसे दूषित कहने लगे।

प्रायः अध्यात्मशास्त्रोंमें ज्ञानकी ही प्रधानता है और दान-शील-तपादि क्रियाएँ गौण हैं, इसलिए निरन्तर अध्यात्मशास्त्रोंके श्रवणसे उन्हें दिगम्बरमतमें विश्वास हो गया। वे उसीको प्रमाण मानने लगे। प्राचीन दिगम्बर श्रावक अपने गुरु मुनियों (भट्टारकों) पर श्रद्धा रखते हैं, परन्तु इनकी उनपर भी अश्रद्धा हो गई। पिच्छिका-कमण्डलु आदि परिग्रह हैं, इसलिए मुनियोंको ये न रखने चाहिए। आदिपुराण आदि भी किंचित् प्रमाण हैं।

अपने मतकी वृद्धिके लिए उन्होंने भाषा कवितामें नाटक समयसार और बनारसीविलासकी रचना की।

विक्रम सं० १६८० में बनारसीदासका यह मत उत्पन्न हुआ। बनारसीदासके कालगत होनेपर कुँअरपालने इस मतको धारण किया और तब वह गुरुके समान माना जाने लगा[1]।

इस ग्रंथका अधिकांश उन सब बातोंके खंडनसे भरा हुआ है जो दि० श्वे० में एक-सी नहीं मिलतीं, परस्पर भिन्न हैं।

इस ग्रन्थमें भी रचना-काल नहीं दिया गया है, परन्तु जान पड़ता है कि यह यशोविजयजीके ग्रन्थोंके चालीस पचास वर्ष बादका है और संभवतः उन्हींकी अध्यात्ममतपरीक्षाके अनुकरणपर लिखा गया है।

मेघविजयजीने हेमचन्द्रके शब्दानुशासनकी चन्द्रप्रभा-टीका वि० सं० १७५७ में आगरेमें ही रहकर लिखी थी, अतएव लगभग उसी समय उन्हें अध्यात्ममतकी जानकारी हुई होगी और तभी युक्तिप्रबोध लिखा गया होगा।

इसमें पं० रूपचन्द आदि साथियोंके सम्बन्धकी बातें तो नाटक समयसार को देखकर लिखी गई हैं और शेष सब लोगोंसे सुनसुनाकर लिखी हैं जिनमेंसे

१— कुँवरपाल बनारसीदासके मित्र थे। वे उनकी मृत्युके बाद गुरु बन गये या गुरुके समान माने जाने लगे, इसका कोई प्रमाण नहीं। वे कोई महन्त नहीं थे, जो उनके उतराधिकारी कँवरपाल होते।

बहुत-सी गलत हैं। सं० १६८० में बनारसीमतकी उत्पत्ति बतलाना भी ठीक नहीं है। इस संवत्में तो उन्हें समयसारकी बालबोधटीका मिली थी जिससे आगे चलकर उनके विचारोंमें परिवर्तन हुआ। अध्यात्म मत या बनारसी मतका जो स्वरूप बतलाया है, वह भी ठीक नहीं जान पड़ता। कमसे कम जिस समय मेघविजयजीका ग्रन्थ लिखा गया, उस समय वाराणसीदास एकान्त निश्चयावलम्बी नहीं थे। उससे पहले १६८० से १६९२ तक अवश्य ही वैसे रहे होंगे। अर्ध-कथानकके अनुसार तो पांडे रूपचन्दजीके उपदेशसे १६९२ में ही बनारसीदासजी ठीक मार्गपर आ गये थे। पर 'अर्ध कथानक' शायद मेघविजयजीकी नजरसे गुजरा ही नहीं।

२-धर्मवर्द्धन महोपाध्याय—खरतरगच्छके महोपाध्याय धर्मवर्द्धनने भी अध्यात्म मतके विरोधमें 'अध्यातममतीयारो सवैयो' लिखा है जिसे श्री अगरचन्दजी नाहटाने अपने संग्रहमेंसे ढूँढ़ कर भेजनेकी कृपा की है। पहले सवैयामें कहा है कि अनादिकालके रूढ़ आगमोंको तो इन अध्यात्मियोंने उठा दिया और ये अबके बने हुए बालबोधोंको (भाषा-टीकाओंको) ठीक मानते हैं। जोगी और भक्तोंके पास तो ये दूरसे ही दौड़े जाते हैं, परन्तु जैन जती इन्हें देखे भी नहीं सुहाते। क्रिया दान आदि छोड़ दिये हैं, और इन्हें ऐसा पक्षपात हो गया है कि किसीका रत्तीभर भी

१—आगम अनादिके उथापि डारे आपै रूढ,
अबके बनाए बालबोध मानै संमती।
जोगी जिदे भक्तनिपै दूरहुंते दौरे जात,
देखत सुहात नांहि एक जैनके जती॥
ऐसो उदै क्रोध मान दूर किए क्रिया दान,
ऐसे पच्छपाती गुन काहूकौ न ल्यैं रती।
बावन ही अच्छरकूं पूरेसे पिछाने नांहि,
कैसेंकै पिछानै कहौ आतम अध्यातमी॥

(मुल्तानरे अध्यातमीये प्रश्न पूछायांरो उत्तर सवैया १ काव्य १ दूहो १, नवा करीने मूक्या दुरुस्त बात जाणीनै खुसी थया) अर्थात् मुल्तानके अध्यात्मियोंने प्रश्न पुछाये थे, उनका उत्तर।

गुण नहीं लेते। जो अध्यात्मी बावन अक्षरोंको ही अच्छी तरह नहीं पहिचानते, भला वे आत्माको कैसे पहिचानेंगे ?

आगेके सवैयामें मुल्तानके अध्यात्मियोंने जो प्रश्न पूछे थे उनका उत्तर दिया है कि तुमने जो प्रश्न लिखे हैं उनके भेदभाव समझ लिये। वे तुम्हारे लिए उलझे हुए नहीं हैं, तुम्हें अपने पक्षके कारण सूझे हैं। तुम परमात्मप्रकाश, द्रव्यसंग्रहादिको मानते हो, अन्य ग्रन्थोंको प्रमाण नहीं मानते, और अपने पक्षको खींचते हो। इसलिए अन्य आगमोंके उत्तर तुम्हारे चित्तपर नहीं चढ़ते, लिखकर कितने हेतु और युक्तियाँ दी जायँ ? दूरसे भ्रम हो जाता है, कोई सैली नहीं कहता। बात तो तब बन सकती है, जब प्रत्यक्ष ज्ञानदृष्टि हो[1]।

आगे एक संस्कृत[2] श्लोक (काव्य) है और एक दोहा[3]। श्लोकके अन्तिम दो चरण अशुद्ध हैं और दोहेका भी तीसरा चरण। पर कोई विशेष बात नहीं कही है।

१—तुम्ह जे लिखे हैं प्रश्न ताके भेद भाव बूझे,
तुमहीसौं नांहि गूझे सूझे हैं सुपच्छसौं।
मानो परमातमाप्रकास द्रव्यसंग्रहादि
और न प्रमाणो ग्रंथ ताणो आप पच्छसौं॥
तातैं और आगमके उत्तर न आवैं चित्त,
लिखिकैं बतावैं केते हेतु जुक्ति लच्छसौं।
दूर हु तैं भ्रम होइ सैली नांहि कहै कोइ,
बात तौ बनै जो ग्यानदृष्टि है प्रतच्छसौं॥

२—युष्माभिर्लिखिता विचित्ररचनाप्रश्नाः परीक्षार्थिभिः
केचिच्छास्त्रभवाः सुबोधविभवाः केचित्प्रहेलीमयाः।
ते वो नो मिलना हते नहि कृते भ्रातो हते वः क्षमा—
स्ते प्रत्युत्तरजाल मंगनमतो मीनोऽधुना नीयते॥

३—तजै नाहिं विवहारकूं, भजै नाहि पछपात।
वचूल (?) धरैं दुख ना हटै, सो भ्रम सूझ कहात॥

महोपाध्याय धर्मवर्द्धनके अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं और एक दो तो प्रकाशित भी हो चुके हैं। उनकी राजस्थानी रचनाएँ ही अधिक हैं। ग्रन्थरचनाकाल सं० १७१९ से १७७३ तक है। इसी समयके बीच उक्त सवैया लिखे गये होंगे। मुल्तानमें अध्यात्मी श्रावकोंका अच्छा समूह था जो कि पहले खरतर गच्छका अनुयायी था, अतएव स्वाभाविक है कि उन्होंने धर्मवर्धनजीसे प्रश्न पूछकर पत्र-द्वारा समाधान चाहा होगा। पर उन्होंने उत्तरमें कटाक्ष ही किये हैं कि तुम आगमोंकी परवाह नहीं करते, कुछ समझते बूझते नहीं, परमात्मप्रकाश, द्रव्य-संग्रह आदिको प्रमाण मानते हो[1]।

अध्यात्ममतके समालोचक ये तीनों ही ग्रन्थकार बनारसीदासजीके स्वर्गवासके बादके—अठारहवीं शताब्दिके पूर्वार्धके—हैं और तीनों श्वेताम्बर हैं।

ज्ञानसारजी

खरतरगच्छीय रत्नराजगणिके शिष्य ज्ञानसारजी १९ वीं शताब्दिके हैं। उनके अनेक ग्रन्थ—राजस्थानी और हिन्दीके – श्री अगरचन्दजी नाहटाके संग्रहमें हैं। उनमेंसे 'आत्मप्रबोध-छत्तीसी' में —जो वि० सं० १८६५ के लगभग रची गई है, अध्यात्ममत और नाटक समयसारको लक्ष्य करके कुछ कटाक्ष किये गये हैं। अथ अध्यात्ममत कथन—

> जो[2] जिय ग्यानरसै भरयौ, ताकै बंध नवीन।
> हौंहि नहीं, ऐसौ कहै, सौ दुबुद्धि मतिछीन ॥ ६
> सोऊँ कहि विवहारमैं, लीन भयौ ज्यौं जीव।

१—श्री अगरचन्द नाहटाके भेजे हुए पहले गुटकेमें भी जो कुँअरपालके हाथका लिखा हुआ है, परमात्मप्रकाश और द्रव्यसंग्रह भाषाटीका सहित लिखे हुए हैं। इससे भी मालूम होता है कि इन ग्रन्थोंका अध्यात्मियोंमें विशेष प्रचार था। उक्त गुटकेमें योगसार, नयचक्र आदि भी हैं।

२—यह नाटक समयसारके इस दोहेको लक्ष्य करके कहा है—

> ग्यानी ग्यानमगन रहै, रागादिक मल खोइ।
> चित उदास करनी करै, करमबंध नहिं होइ ॥ ३६ — निर्जराद्वार

३—'सोऊ' शब्दपर टिप्पण है—'समैसारमती कहै।'

तार्कों मुक्ति न होहिगी, सही दुबुद्धी जीव ॥ ७

आत्मप्रबोध-छत्तीसीके अन्तमें राजस्थानीमेंयह टिप्पण दिया है—

"हूं नाहिर बगीची उपाश्रय छोड़िनै आय बैठो, जद श्रावगी कालौ जातँ[2] ऋषभदासै मनै कह्युं, थे सिद्धांत वांचौ तौ दोय घड़ी हूं भी आवूं, जद मैं कह्यौ, हूं तौ उत्तराध्ययन सूत्र बांचूं छूं, तद तिणे कह्यूं समैसारजी सिद्धांत बांचौ। जद मैं कह्युं समैसार जिनमतनौ चोर छै तिवारे कह्युं—हें! समैसारमें चोरी छै तो मनैं दिखावौ। तिवारैं आस्रवसंवरद्वारैं 'आसवा ते परीसवा परीसवा ते आसवा' ए सिद्धांतनूं एक पक्ष ग्रहीनें जो चोरी हुती ते छत्तीसीमें कही, ते सुणी मगन थई गयौ। इति।" अर्थात् समयसार जिनमतका चोर है, उसमें जो सिद्धान्तकी एकपक्षी चोरी है, वह छत्तीसीमें बतला दी। सुनकर ऋषभदास काला मगन हो गया। इससे मालूम होता है कि ज्ञानसारजी अध्यात्ममत और नाटक समयसारको किस दृष्टिसे देखते थे।

ज्ञानसारजीकी[4] अनेक रचनाओंमें एक और छोटी-सी रचना भाव-छत्तीसी है। उसके अन्तिम दोहेका टिप्पण है—

"जैनगरे गोलछागोत्रे सुखलाल श्रावकै आजन्म जिनमत अरागियै शुद्धवृत्तें जिनदर्शन आदरयौ। पछी हूं किसनगढ़ आयौ, तिवारै समयसार जिनमत विरुद्ध वांचतौ सुण ए रचीनै मूकी। तेऊए बांचीनै वाचवूं मूकी दीधूं" अर्थात् जयपुरमें गोलेछा गोत्रके (ओसवाल) सुखलाल श्रावकने अरागी शुद्धवृत्तिसे जिनदर्शन ग्रहण किया। फिर मैं किशनगढ़ चला आया, जब मैंने सुना कि वह जिनमतविरुद्ध समयसार बाँचता है, तब यह भावछत्तीसी रचकर रख दी। उसने भी इसे पढ़कर समयसारका पढ़ना छोड़ दिया।

१—यह समयसारके इस दोहेको लक्ष्य करके है—

लीन भयौ विवहारमें, उकति न उपजै कोइ।
दीन भयौ प्रभुपद जपै, मुकति कहाँतैं होइ॥ २२—निर्जरा द्वार

२—ऋषभदास काला (खंडेलवाल, सरावगी)

३—नाहटाजी इसे 'ज्ञानसारपदावली' में छपा रहे हैं।

४—ज्ञानसारजीका राजस्थानी भाषामें एक 'कामोद्दीपन' नामका ग्रन्थ है, जो जयपुरके राजा माधवसिंहके पुत्र प्रतापसिंहजीकी प्रसन्नताके लिए लिखा गया है। 'माधवसिंहवर्णन' नामकी एक छोटी-सी रचना राजाकी प्रशंसामें भी है।

इस टिप्पणसे भी मालूम होता है कि उन्हें समयसारसे बहुत ही चिढ़ हो गई थी और वे यह बरदाश्त नहीं कर सकते थे कि कोई श्रावक उसे पढ़े। भावछत्तीसीके दोहोंमें भी नाटक समयसारकी उक्तियोंकी प्रतिध्वनि है।

आगे हम दिगम्बर सम्प्रदायके उन लेखकों और उनके ग्रन्थोंका परिचय देते हैं जिन्होंने अध्यात्म मतका विरोध किया है।

जिस तरह श्वेताम्बर विद्वानोंने अध्यात्म मतपर आक्रमण किये हैं उसी तरह दिगम्बरोंने भी। परन्तु दिगम्बरोंने उसे 'अध्यात्म मत' न कहकर 'तेरापंथ' कहा है।

तेरापंथका विरोध

१-पं० बखतरामजी—पं० बखतरामजी शाह चाटसूके रहनेवाले थे और जयपुरमें आकर रहने लगे थे[१]। उनके पिताका नाम पेमराज था। उनका बनाया हुआ 'मिथ्यात्व-खंडन नाटक[२]' है, जो पूस सुदी पंचमी रविवार सं० १८२१ को रचा गया[३] था। उसका सारांश यह है—

पहले एक दिगम्बर मत था, उसमेंसे श्वेताम्बर निकला, दोनोंमें भारी अकस (अनबन) हुई जिसे सभी जानते हैं। उसीमें बहस (तर्क) करके तेरह-पंथ चल पड़ा। उसकी उत्पत्तिका कारण बतलाते हुए लिखा है कि पहले यह मत आगरेमें सं० १६८३ में चलौ। वहाँ कितने ही श्रावकोंने किसी पंडितसे कितने ही अध्यात्म ग्रंथ सुनें और वे श्रावकोंकी क्रियाओंको छोड़कर मुनियोंके मार्गपर चलने लगे, फिर उसीके अनुसार यह कामांमें चल पड़ा।

१—ग्रंथ अनेक रहस्य लखि, जो कछु पायौ थाह।
बखतराम बरनन कियौ, पेमराज सुत साह ॥ १४०१ ॥
आदि चाटसू नगरके, बासी तिनकौं जानि।
हाल सवाई जयनगर, मांझि बसे हैं आनि ॥ १४०२ ॥

२—'नाटक' नाम भर है, नाटकपन इसमें कुछ नहीं है।

३—अठारहसौ बीस इक, सुभ संवत रविवार।
पोस मास सुदि पंचमी, रच्यौ ग्रन्थ यह सार ॥ १४०७ ॥

४—प्रथम चल्यौ मत आगरे, श्रावक मिले कितेक।
सोलहसौ तियासिए, गहि कितेक मिलि टेक ॥ २०

इन्होंने सनातनकी रीति छोड़कर पापकारी नई रीति पकड़ ली। पहले दो बातें छोड़ीं, एक जिनचरणोंमें केसर लगाना और दूसरे गुरुको नमन करना। आमेरके भट्टारक नरेन्द्रकीर्तिके समयमें यह पापधाम कुपन्थ चला। उस समय व्यापारके निमित्त कितने ही महाजन आगरे जाते थे और अध्यातमी बन आते थे। वे एक साथ मिलकर चुपचाप चर्चा किया करते थे।

जयपुरके निकट सांगानेर पुराना नगर है। वहाँ अमरचन्द नामके एक ब्रह्मचारी थे। उनके निकट अनेक श्रावक धर्मकथा सुना करते थे, जिनमें एक गोदीका व्येंकका अमरा भौंसा था। उसे धनका बड़ा घमंड था, सो उसने जिनवानीका अविनय किया। इसपर श्रावकोंने उसे मन्दिरमेंसे निकाल दियाँ। इससे क्रोधित होकर उसने प्रतिज्ञा की कि मैं नया पंथ चलाऊँगा। उसे १२ अध्यातमी मिल गये, जिन्हें लालच देकर उसने अपने मतमें मिला लिया। एक नया मन्दिर बनवा लिया और पूजा-पाठ भी रच लिये। सं० १७०३ में इस तरह यह अघजाल मत स्थापित किया[४]। राजाका एक मंत्री भी उसे मिल गया। उसने सहायता देकर और डरा धमकाकार इस पन्थको बढ़ाया।

बखतरामजीका दूसरा ग्रन्थ बुद्धिविलास है जो गुणकीर्ति मुनिकी आज्ञासे सं० १८२७ में लिखा गया है। इसमें भी तेरहपंथकी प्रायः वही बातें हैं जो मिथ्यात्व-खण्डनमें हैं। मिथ्यात्व-खण्डनमें गुरुनमस्कार और केसर लगाना इन दो बातोंको छोड़नेकी बात लिखी है, पर इसमें उनके सिवा लिखा है—

१—केसर जिनपद चरचिबो, गुरु नमिबो जग सार।
 प्रथम तजी यह दोइ विधि, मन मद ठानि असार॥ २३

२—भट्टारक आमेरके, नरेन्द्रकीरति नाम।
 यह कुपन्थ तिनकै समै, नयौ चल्यौ अघधाम॥ २५

३—तिनमैं अमरा भौंसा जाति, गोदीका यह व्योंक कहाति॥ ३०
 धनकौ गरब अधिक तिन धर्यौ, जिनवानीकौ अविनय कर्यौ॥
 तब बाकौं श्रावकनि विचारि, जिनमंदिरतैं दयौ निकारि।

४—सत्रह सौ तिहोत्तरे साल, मत थाप्यौ ऐसैं अघजाल॥ ३४

५—भोजन तनिक चढ़ात नहिं, सखरौ कहि त्यागंत।
 दीपककी ठौहर सबै, रंगिकै गिरी धरंत॥ २८

४

बुद्धिविलास[1] काफी बड़ा ग्रन्थ है, पर उसमें कोई सिलसिला नहीं है। जहाँ जिस विषयकी लहर आई है वहाँ वही लिख दिया है। आमेर और जयपुरका खूब विस्तारसे वर्णन किया है और वहाँके कछवाहे राजाओंकी वंशावली देकर उनके विषयमें अनेक कवियोंकी लिखी हुई प्रशंसाएँ भी उद्धृत की हैं। श्यामजी नामक ब्राह्मणके द्वारा, जो राजाका पुरोहित था, जैन मंदिरोंके नष्ट भ्रष्ट किये जानेका विवरण भी दिया है। एक जगह लिखा है जैसे बिल्ली और चूहोंमें बैरभाव है, वैसा ही (बीस पंथका) बैरी तेरहपंथ है! बीसपन्थमेंसे तेरह पन्थ उसी तरह प्रकट हुआ जैसे हिन्दुओंमेंसे यवनोंका कुपन्थ! हिन्दुओंकी क्रियाएँ जैसे यवन नहीं मानते उसी तरह तेरहपन्थियोंने भी क्रियाएँ मानना छोड़ दीं। तेरहपन्थ ऐसा कपटी है कि वह भगवान्से भी कपट करता है और नारियलकी रंगी हुई गिरीको दीप कहकर चढ़ाता है[2]!

३–पं० पन्नालालजी—बखतरामजीके बाद पं० पन्नालालजीका 'तेरहपंथ-खंडन' नामका ग्रन्थ है, जो पं० कस्तूरचन्दजी शास्त्रीकी सूचनाके अनुसार

न्हावन करत न विम्बकौ, इनि दै आदि अनेक।
भली तजीं खोटी गहीं, ते को कहै अतेक ॥ २९
तिनिकै गुरु नाहीं कहूँ, जती न पंडित कोइ।
वही प्रतिष्ठी आदिकी, प्रतिमा पूजत लोइ ॥ ३०
वे ही प्रतिमा ग्रंथ वै, तिनिमैं बचन फिराइ।
ठानि औरकी और ही, दीनौं पंथ चलाइ ॥ ३१

१—इस ग्रन्थकी हस्तलिखित प्रति मुझे स्व० तात्या नेमिनाथपांगलने सन् १९१० के लगभग बारसी (शोलापुर) के भंडारसे लेकर भेजी थी।

संवत अट्ठारह सतक, ऊपर सत्ताईस।
मास मागसिर पख सुकल, तिथि द्वादसी सरीस।

२ – जैसे बिल्ली ऊंदरा, बैरभावको संग। तैसैं बैरी प्रगट है तेरापन्थ निसंग ॥ बीसपन्थतैं निकलकर प्रगट्यौ तेरापन्थ। हिंदुनमंसे ज्यों कढ़्यौ यवनलोककौ पंथ ॥ हिन्दुलोककी ज्यों क्रिया, यवन न मानै लोक। तैसैं तेरापंथ भी किरिया छांड़ी थोक॥ कपटी तेरापन्थ है, जिनसौं कपट करंत। गिरी चहोड़ी दीप कहैं, खोटो मतकौ पंथ॥

'मिथ्यात्वखंडन' के आधारपर ही लिखा गया है और अपने मतकी पुष्टिके लिए उसके कुछ पद्योंको भी उद्धृत किया है। यह जयपुरी गद्यमें है। इसका प्रारंभ देखिए—

"दिगंबरम्नाय है सो शुद्धम्नाय है। या विषै भी तेरहपंथीको अशुद्ध अम्नाय है सो याकी उत्पत्ति तथा श्रद्धा ज्ञान आचरण कैसे हैं ताका समाधान—पूर्वरीतिकूं छांड़ि नई विपरीत आम्नाय चलाई तातैं अशुद्ध है। पूर्वरीति तेरह थीं तिनकौं उठा विपरीत चले, तातैं तेरापंथी भये, तेरह पूर्व किसी, ताका समाधान—

दस दिकपाल उथापि १, गुरूचरणां नहि लागै २।
केसरचरणां नहि धरै ३, पुष्पपूजा फुनि त्यागै ४॥
दीपक अर्चा छांड़ि ५, आसिका ६ माल न करही ७।
जिन न्हावण ना करै ८, रात्रिपूजा परिहरही ९॥
जिनसासनदेव्यां तजी १०, रांध्यौ अंन चढोड़ैं नहीं ११।
फल न चढ़ावैं हरित फुनि १२, बैठिर पूजा करैं नहीं १३॥
ये तेरै उरधारि पंथ तेरै उरथप्पे।
जिन शास्त्र सूत्र सिद्धांतमांहि ला वचन उथप्पे॥

अर्थात् उक्त तेरह बातोंको छोड़ देनेसे यह तेरहपंथ कहलायां।"

कामांकी चिट्ठी—इसके आगे पद्धडी छन्दमें कामांसे सांगानेरकी लिखी हुई एक चिट्ठी दी है। कामांसे लिखनेवाले हैं—हरिकिसन, चिन्तामणि, देवीलाल और जगन्नाथ और सांगानेरवालोंके नाम हैं मुकुंददास, दयाचन्द, महासिंह, छ. कहा, सुन्दर और बिहारीलाल। सांगानेरवालोंसे आग्रह किया गया है कि हमने इतनी बातें छोड़ दी हैं, सो आप भी इन्हें छोड़ देना—जिन चरणोंमें केसर लगाना, बैठकर पूजा करना, चैत्यालयमें भंडार रखना, प्रभुको जलौटपर रखकर कलश ढोलना, क्षेत्रपाल और नवग्रहोंकी पूजा करना, मन्दिरमें जुआ खेलना और पंखेसे हवा करना, प्रभुकी माला लेना, मन्दिरमें भोजकोंको आने देना, भोजकों-

---

१—मिथ्यात्व-खंडनसे तों ऐसा मालूम होता है कि बारह अध्यातमी मिले और तेरहवाँ अमरा भौंसा, इस तरह तेरह अध्यात्मियोंके कारण यह तेरहपंथ कहलाया। परंतु पन्नालालजी कहते हैं कि इन तेरह बातोंको छोड़ देनेसे तेरहपंथ हुआ।

द्वारा बाजे बजवाना, राँधा हुआ अनाज चढ़ाना, थालोड़ी करना, मन्दिरमें जीमन करना, रात्रिको पूजन करना, रथयात्रा निकालना, मन्दिरमें सोना, आदि। यह चिट्ठी फागुन सुदी १४ सं० १७४९ को लिखी गई बतलाई है—

आई सांगानेर, पत्री कामांतैं लिखी।
फागुन चौदसि हेर, सत्रहसै उनचास सुदि ॥ २६

४-चम्पारामजी – बखतराम और पन्नालालके सिवाय चम्पारामजी पांड़ेने अपने ग्रन्थ चर्चासागरमें जो सं० १९१० में रचा गया है तेरहपंथका खंडन किया है। पं० शिवाजीलालने भी इसी समयके आसपास तेरहपंथ-खंडन नामका ग्रन्थ लिखा है। और भी कुछ ग्रन्थोंके पढ़नेकी सिफारिश पं० पन्नालालजीने अपने तेरहपंथखंडनमें की है—वसुनन्दि श्रावकाचार वचनिका, चर्चासार, पूजाप्रकरण, श्रावकाचार वचनिका, दर्शनसार वचनिका, चर्चासमाधान, कल्पनाकंदन, श्रावकक्रिया, बोधिसार, सुबुद्धिप्रकाश, सारसंग्रह। उक्त ग्रन्थ मिले नहीं, परन्तु उनमें भी इनसे अधिक कुछ होगा, ऐसा नहीं जान पड़ता।

५-चन्दकवि—'कवित्त तेरापंथकौ' नामकी छोटी-सी रचना एक गुटकेमें लिखी हुई मिली है जिसके कर्त्ता कोई चन्द नामक कवि हैं। उसमें लिखा है कि जब सांगानेरमें नरेन्द्रकीर्ति भट्टारकका चातुर्मास था तब उनके व्याख्यानके समय अमरा (भौंसा) गोदीकाका पुत्र, जो शास्त्रसिद्धान्त पढ़ा हुआ था, बीचबीचमें बहुत बोलता था, तब उसे व्याख्यानमेंसे जूते मारकर निकाल दिया। इससे चिढ़कर उसने तेरह बातोंका उत्थापन करके तेरहपंथ चलाया। यह घटना कार्तिकी अमावास्या सं० १६७५ की है[1]।

१—संवत सोलासै पचोत्तरे, कार्तिकमास अमावस कारी।
कीर्ति नरेन्द्र भटारक सोभित, चातुर्मास सांगावति धारी॥
गोदीकारा उधरो अमरोसुत, सास्त्रसिधंत पढ़ाइयौ भारी।
बीच ही बीच बखानमैं बोल्त, मारि निकार दियौ दुख भारी॥ १
तदि तेरह बात उथापि धरी, इह आदि अनादिकौ पंथ निवारयौ।
हिंदुके मारे मलेच्छ ज्यौं रोवत, तैसै त्रयोदस रोज (?) पुकारयौ॥ २
पागरख्यां मारि जिनालयसै बिड़ारि दिए तातैं कुभाव धारि न मानै गुरु जतीकौं।
झूठो दंभ धरै फिरैं झूठ ही विवाद करैं, छांड़ै नांहि रीस जानहार कुगतीकौं।

मिथ्यात्वखंडन और तेरहपंथखंडनमें भी इस घटनाका उल्लेख है। इतना अन्तर है कि उनमें तेरहपंथकी उत्पत्तिका समय १७०३ दिया है जब कि चन्दकविने १६७५। यह अन्तर क्यों पड़ा? हमारी समझमें ये सब लेखक बहुत पीछे हुए हैं और उक्त घटना इन सबसे पहलेकी है, जो परम्परासे सुन-सुनाकर लिखी गई है। पर चन्दका लिखा हुआ समय सत्यके अधिक नजदीक मालूम होता है, क्योंकि जिस अमर (भौंसा) गोदीकाके पुत्रको मन्दिरमेंसे निकाल देनेकी बात लिखी है, उसका पूरा नाम जोधराज गोदीका है और उसके दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं एक सम्यक्त्व-कौमुदी कथा और दूसरा प्रवचनसार भाषा। दोनों ही ग्रन्थ पद्यबद्ध हैं। पहला १७२४ का लिखा हुआ है और दूसरा १७२६ का। दोनोंमें ही जोधराजको सांगानेरका निवासी और अमरका पुत्र बतलाया है। सम्यक्त्वकौमुदीमें लिखा है—

" अमरपूत जिनवर-भगत, जोधराज कवि नाम।
बासी सांगानेरकौ, करी कथा सुखधाम ॥
संवत् संतरहसौ चौबीस, फागुन बदि तेरस सुभ दीस।
सुकरवारको पूरन भई, इहै कथा समकित गुन ठई ॥

इति श्रीसम्यक्त्वकौमुदीकथायां साहजोधराजगोदीकाविरचितायां..."

प्रवचनसारमें कहा है—

" सत्रहसै छब्बीस सुभ, विक्रम साक प्रमान।
अरु भादौं सुदि पंचमी, पूरन ग्रंथ बखान ॥
सुनय धरम ही सुखकरन, सब भूपनि सिर भूप।
मानबंस जयसिंघसुत, रामसिंघ सुखरूप॥
ताके राज सुचैनसौं, कियौ ग्रंथ यह जोध।
सांगानेरि सुथानमैं, हिरदै धारि सुबोध॥

इति श्रीप्रवचनसारसिद्धान्ते जोधराजगोदीकाविरचिते..."

---

१ – चन्द कविने अमरा गोदीकाका पुत्र लिखा है, पुत्रका नाम नहीं दिया। पर बखतरामने अमरा भौंसा (पिता) को ही सभासे निकाल देनेकी बात लिखी है। 'भौंसा' खंडेलवालोंका एक गोत है।

२ – महावीरजी क्षेत्रकमेटी, जयपुरद्वारा प्रकाशित 'प्रशस्ति-संग्रह, पृष्ठ २६१-२६२।' ३—प्रशस्तिसंग्रह पृ० २३७–३८।

प्रवचनसारमें लिखा है कि पं० हेमराजजीने संस्कृतटीकाको देखकर तत्त्व-दीपिका नामकी अतिशय सुगम वचनिका लिखी और उसके आधारसे फिर मैंने 'किए कवित सुखधाम।'[1] इससे मालूम होता है कि जोधराज पं० हेमराजजीके ही समान अध्यातमी थे और इसलिए व्याख्यानमें तर्क-वितर्क करनेसे उनका अपमान किया गया होगा।

इससे मालूम होता है कि जोधराज गोदीकाके समयमें संवत् १७२० के आसपास ही यह घटना घटित हुई होगी। भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति बहुत करके आमेरकी गद्दीके ही भट्टारक होंगे। बखतरामका बतलाया हुआ समय १७७३ गलत जान पड़ता है।[3]

जोधराज गोदीकाके प्रवचनसारके अन्तमें एक सवैया दिया हुआ है, जो बहुत विचारणीय है—

कोई देवी खेतपाल बीजासनि मानत है,
केई सती पित्र सीतलासौं कहै मेरा है।
कोई कहै सावलौ, कबीरपद कोई गावै,
केई दादूपंथी होइ परै मोहघेरा है॥
कोई ख्वाजे पीर मानै, कोई पंथी नानकके,
केई कहैं महाबाहु महारुद्र चेरा है।
याही बारा पंथमैं भरमि रह्यौ सबै लोक,
कहै जोध अहो जिन **तेरापंथ** तेरा है॥

१— ता टीकाकौं देखिकै, हेमराज सुखधाम।
करी वचनिका अति सुगम, तत्वदीपिका नाम।
देखि वचनिका हरसियौ, जोधराज कवि नाम।

२—पं० हेमराजजीके 'चौरासी बोल' की एक हस्तलिखित प्रति जयपुरके भंडारमें है, जिसके अन्तमें लिखा है—"लिखतं स्वामी बेणीदास अवरंगाबाद माहि सं० १७२३ पोस सुदी पंचमी...या पोथी साह जोधराज...की छै मुकाम सांगानेर मध्ये।"

३—आमेरके भट्टारकोंकी पट्टावलीसे नरेन्द्रकीर्तिका ठीक समय मालूम हो सकता है।

अर्थात् सारे लोग सती, क्षेत्रपाल आदिके बारह पंथोंमें भरम रहे हैं, परन्तु जोधकवि कहता है कि हे जिनदेव, उक्त बारह पंथोंसे अलग 'तेरापंथ' तेरा है।

यद्यपि तेरहपंथकी यह व्युत्पत्ति भी उसी ढंगकी और कल्पनाप्रसूत है जिस तरह केसर चढ़ाना आदि तेरह बातोंके छोड़नेकी या बारह अध्यात्मियोंके साथ तेरहवें अमरा भौंसाके मिल जानेकी; परन्तु पूर्वोक्त सवैया बतलाता है कि सं० १७२६ में जोधराजके प्रवचनसारकी रचनाके समय अध्यातम-मत तेरा-पंथ कहलाने लगा था और यह अध्यात्म-मत वही था जिसे बखतराम आदिने आगरेसे चला बतलाया है।

अध्यात्ममत और तेरापंथ

अध्यात्ममत और तेरापंथ दोनों एक ही हैं। ऐसा जान पड़ता है कि अध्यात्ममत ही किसी कारण तेरापंथ कहलाने लगा है। श्वेताम्बर विद्वानोंने तो इसे अध्यात्ममत ही कहा है तेरापंथ नहीं, परन्तु दिगम्बरोंने तेरापंथ कहा है; साथ ही यह भी बतलाया है कि यह पहले आगरेमें चला, वहीं किसीसे अध्यात्म-ग्रन्थ सुनकर लोग अध्यातमी बन आए और तेरापंथी हो गये। तेरापंथ नामकी अनेक व्युत्पत्तियाँ बतलाई गई हैं, परन्तु समाधानयोग्य उनमें एक भी नहीं है।

यद्यपि प्रारंभमें इसके अनुयायी श्वेताम्बर सम्प्रदायके ही अधिक थे, परन्तु उनमें जो विचार-क्रान्ति हुई थी, वह जान पड़ता है राजमल्लजीकी समयसारकी बालबोधटीकाके कारण हुई थी और दूसरे अध्यात्म ग्रन्थ भी, जिनकी चर्चा उनकी ज्ञानगोष्ठियोंमें होती थी दिगम्बर सम्प्रदायके थे, इस लिए श्वेताम्बर विद्वानोंको इसे दिगम्बर ठहराने और विरोध करनेमें सुगमता हो गई। इस विरोधमें जो कुछ लिखा गया है, उसका अधिकांश उन्हीं मानताओंको लेकर है जिनमें दिगम्बर और श्वेताम्बरोंमें मतभेद है और अध्यात्मसे जिनका बहुत ही कम सम्बन्ध है। वास्तवमें देखा जाय तो अध्यात्म दोनोंका लगभग एकसा है। स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि विवादग्रस्त बातोंमें अध्यातमी पड़े ही नहीं। उन्होंने तो जैनधर्मके मूल अध्यात्मिक रूपको पकड़नेकी ही चेष्टा की जो उस समय यतियों और भट्टारकोंकी कृपासे बाहरी क्रियाकाण्ड और आडम्बरोंमें छुप गया था। उन्हें जैनधर्मकी दृढ़ प्रतीति थी, पर वे न

श्वेताम्बर थे और न दिगम्बर। म० मेघविजयजीने अपने युक्तिप्रबोधमें (१७ वीं गाथाकी टीकामें) कहा है कि "अध्यातमी या वाराणसीय कहते हैं कि हम न दिगम्बर हैं और न श्वेताम्बर, हम तो तत्त्वार्थी—तत्त्वकी खोज करनेवाले—हैं। इस महीमण्डलमें मुनि नहीं हैं। भट्टारक आदि जो मुनि कहलाते हैं वे गुरु नहीं हैं। अध्यात्म मत ही अनुसरणीय है, आगमिक पन्थ प्रमाण नहीं है, साधुओंके लिए वनवास ही ठीक है।"

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अध्यातमी न दिगम्बर थे और न श्वेताम्बर। वे अपनेको केवल जैन समझते थे और उनकी दृष्टिमें श्वेताम्बर यति मुनि और दिगम्बर भट्टारक दोनों एक-से थे, जैनत्वसे दूर थे और इसीलिए इन दोनों सम्प्रदायोंके धनी धोरियोंने अपने स्वच्छन्द शासनोंकी नींव हिलती देखी और उनकी रक्षाका प्रबन्ध किया।

श्वेताम्बरोंके समान दिगम्बर सम्प्रदायके विचारशील लोगोंने भी इस अध्यात्म मतको अपनाया और उनमें यह तेरापंथ नामसे प्रचलित हुआ। कामा, सांगानेर, जयपुर आदिमें यह पहले फैला और उसके बाद धीरे धीरे सर्वत्र फैल गया।

बनारसी-साहित्यका परिचय

१-नाममाला—बनारसीदासजीकी उपलब्ध रचनाओंमें यह सबसे पहली है जो आश्विन सुदी १० संवत् १६७० को समाप्त हुई थी। अपने परम विचक्षण मित्र नरोत्तमदास[1] खोबरा और थानमल खोबराके कहनेसे उनकी इसमें प्रवृत्ति हुई थी। धनंजयकी संस्कृत नाममालाके ढंगका यह एक छोटा-सा पद्यबद्ध शब्दकोश है और बहुत ही सुगम है।

अपनी आत्मकथामें उन्होंने लिखा है कि जब उनकी अवस्था चौदह वर्षकी थी तब पं० देवदत्तके पास उन्होंने नाममाला और अनेकार्थकोश पढ़ा था।

१—मित्र नरोत्तम थान, परम बिचच्छन धरमनिधि (धन)।
तासु बचन परवांन, कियौ निबंध विचार मन ॥ १७०
सोरहसै सत्तरि समै, असो मास सित पच्छ।
बिजै दसमि ससिबार तह, स्रवन नखत परतच्छ ॥ १७१
दिन दिन तेज प्रताप जय, सदा अखंडित आन।
पातसाह थिर नूरदी, जहांगीर सुल्तान ॥ १७२ — नाममाला

अवश्य ही इनमेंके नाममाला और अनेकार्थकोश धनंजयके ही होंगे। क्यों कि उसकी श्लोकसंख्या दो सौ बतलाई है, जो वास्तवमें धनंजय नाममालाकी श्लोकसंख्या है[1]। आगे संवत् १६७१ में जौनपुरके नवाब किलीच खाँके बड़े बेटेको उन्होंने नाममाला और श्रुतबोध पढ़ाया था। इससे भी मालूम होता है कि वे धनंजयनाममालासे अच्छी तरह परिचित थे। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि यह नाममाला[3] धनंजय नाममालाका अनुवाद है। हमने दोनोंको मिलान करके देखा तो मालूम हुआ कि इसमें न संस्कृत नाममाला तथा अनेकार्थ नाममालाका शब्दक्रम है, और न संस्कृतके सभी शब्द लिये हैं। बल्कि जैसा कि उन्होंने कहा है, इसमें शब्दसिन्धुका मन्थन करके और प्रचलित शब्दोंका अर्थ-विचार करके भाषा, प्राकृत और संस्कृत तीनोंके शब्द लिये हैं[4]।

२ नाटक समयसार—आचार्य कुन्दकुन्दके प्राकृत ग्रंथ समयसारपाहुड़-पर 'आत्मख्याति' नामकी विशद टीका है जिसके कर्त्ता अमृतचन्द्र हैं। इस टीकाके अन्तर्गत मूल गाथाओंका भाव विशद करनेके लिए, उन्होंने जगह जगह स्वरचित संस्कृत पद्य दिये हैं जो 'कलश' कहलाते हैं। उनकी संख्या २७७ हैं और वे 'समयसारकलशा' नामसे स्वतन्त्र ग्रन्थके रूपमें भी मिलते हैं।

१—पंडित देवदत्तके पास। किछु विद्या तन करी अभ्यास। १६८
पढ़ी नाममाला सै दोई। और अनेकारथ अवलोइ॥

२ – कबहुं नाममाला पढ़ै, छंदकोस स्रुतबोध।
करै कृपा नित एक-सी, कबहुं न होइ विरोध॥ ४५५ अ॰ क॰

३—यह 'नाममाला' वीर सेवामन्दिर दिल्लीसे प्रकाशित हो चुकी है।

४—सबदसिंधु मंथान करि, प्रगट सु अर्थ बिचारि।
भाषा करै बनारसी, निज गति मति अनुसारि॥ २
भाषा प्राकृत संसकृत, त्रिविध सुसबद समेत।
'जानि' 'बखानि' 'सुजान' 'तह,' ए पदपूरनहेत॥ ३

५—समयसार (कलश) के ९ अंक हैं और उनमें क्रमसे ४५, ५४, १३, १२, ८, ३०, १७, १३ और ८५, इस तरह सब मिलाकर २७७ संस्कृत पद्य हैं, जब कि बनारसीके नाटक समयसारमें ७२७ छद।

'वह मंदिर यह कलश कहावै'—समयसार मन्दिर है और यह उसका कलश है। आत्मख्यातिटीकामें समयसारको शान्तरसका नाटक कहा है और उसमें जीव अजीवके स्वांग दिखलाए हैं और इसीलिए बनारसीदासने इसका नाम 'नाटक समयसार' रखा है। कलशोंपर भट्टारक शुभचन्द्र (१६ वीं शताब्दि) की एक 'परमाध्यात्मतरंगिणी' नामकी संस्कृत टीका भी है। पाण्डे राजमल्लजीने कलशोंकी एक बालबोधिनी भाषाटीका भी लिखी थी, जो बनारसीदासजीको प्राप्त हुई थी।

उनके आगरानिवासी पाँच मित्रोंने कहा कि—

> नाटकसमैसार हितजीका, सुगमरूप राजमलटीका।
> कवितबद्ध रचना जो होई, भाषा ग्रंथ पढ़ै सब कोई॥ ३४

और तब बनारसीदासजीने इस ग्रन्थकी रचना की।

इसमें ३१० दोहा-सोरठा, २४५ इकसीसा कवित्त, ८६ चौपाई, ३७ तेईसा सवैया, २० छप्पय. १८ घनाक्षरी, ७ अडिल्ल और ४ कुंडलिया, इस तरह सब मिलाकर ७२७ पद्य हैं, जब कि मूल कलशा २७७ हैं[1]। क्योंकि इसमें मूल ग्रन्थके अभिप्रायोंको खूब स्वतन्त्रतासे एक तरहकी मौलिकता लाकर लिखा है, इसलिए स्वाभाविक है कि पद्यपरिमाण बढ़ जाय। इसके सिवाय अन्तके चौदहवें गुणस्थान अधिकारको स्वतन्त्र रूपसे लिखा है जिसमें ११३ पद्य हैं। फिर अन्तमें उपसंहाररूप ४० पद्य और हैं। प्रारम्भमें भी उत्थानिका रूप ५० पद्य हैं।

इस तरह कुन्दकुन्दके प्राकृत समयपाहुड़, अमृतचन्द्रके समयसारकलश और राजमल्लजीकी बालबोध भाषाटीकाके आधारसे इस छन्दोबद्ध नाटक-समयसारकी रचना हुई है और इस दृष्टिसे यह कोई स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं है फिर भी एक मौलिक ग्रन्थ जैसा मालूम होता है। कहीं भी क्लिष्टता, भावदीनता और परमुखापेक्षा नहीं दिखलाई देती।

अर्थात् बनारसीदासजीने समयसारके कलशोंका अनुवाद ही नहीं किया है, उसके मर्मको अपने ढंगसे इस तरह व्यक्त किया है कि वह बिल्कुल स्वतंत्र जैसा मालूम होता है और यह कार्य वही लेखक कर सकता है जिसने उसके मूलभावको अच्छी तरह हृदयंगम करके अपना बना लिया है। हम नीचे इस

तरहके कुछ कलश, राजमल्लजीकी बालबोधिनी टीका और समयसारके पद्य पाठकोंके सामने उपस्थित कर रहे हैं। बालबोधिनी टीकाकी भाषा कैसी थी, सो भी इससे मालूम हो जायगा और यह भी कि उसका कितना सहारा लिया गया है—

कलश—नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे ॥ १ ॥

बा० बो०—स्वभावाय नमः। भावशब्दै कहिजै पदार्थ, पदार्थ संज्ञा छै। सत्त्वस्वरूप कहु तिहितै यौ अर्थु ठहरायौ जु कोई सास्वतौ वस्तुरूप तीहै म्हांकौ नमस्कारु। सो वस्तुरूप किसौ छै चित्स्वभावाय चित् कहिजै चेतना सोई छै स्वभावाय कहतां स्वभावसर्वस्व जिहिकौ तिहिकौं म्हाकौ नमस्कारु। इहि विशेषण कहतां दोइ समाधान हौहि छै। एकु तौ भाव कहतां पदार्थ, ते पदार्थ केई चेतन छै केई अचेतन छै। तिहि माहै चेतनपदार्थ नमस्कारु करिवा जोग्य छै इसौ अर्थु उपजै छै। दूजौ समाधान इसौ जु यद्यपि वस्तुकौ गुण वस्तु ही माहै गर्भित छै। वस्तु गुण एक ही सत्व छै। तथापि भेदु उपजाइ कहिवा ही जोग्य छै। विशेषण कहिवा पाषै वस्तुकौ ज्ञानु उपजै नाही। पुनः किं विशिष्टाय भावाय, और किसौ छै भाउ, समयसाराय। यद्यपि समय शब्दका बहुत अर्थ छै तथापि एनै अवसर समय शब्दै सामान्यपनै जीवादि सकल पदार्थ जानिबा। तिहि माहै जु कोई सार छै, सार कहतां उपादेय छै जीव वस्तु तिहिकौ म्हाकौ नमस्कारु। इहि विशेषणकौ यौ भावार्थ सारपनौ जानि चेतन पदार्थ है नमस्कारु प्रमाण राख्यौ, असार पदार्थ जानि अचेतन पदार्थकौ नमस्कारु निषेध्यौ। आगै कोई वितर्क करिसी जु सब ही पदार्थ आपना आपना गुणपर्याय विराजमान छै, स्वाधीन छै, कोई किहीकै आधीन नही, जीव पदार्थकौ सारपनौ क्यौ घटै छै। तिहिकौ समाधान करिवाकहु दोइ विशेषण कह्या। पुनः किं विशिष्टाय भावाय, और किसौ छै भाउ, स्वानुभूत्या चकासते सर्वभावान्तरच्छिदे। एनै अवसर स्वानुभूति कहतां निराकुलत्व लक्षण शुद्धात्मपरिणामस्वरूप अतीन्द्रिय सुखु जानिबौ, तिहिरूप चकासते कहतां अवस्था छै तिहिकी इसौ छै। सर्वभावान्तरच्छिदे, सर्वभाव कहतां अतीत अनागत वर्तमान पर्यायसहित अनंत गुण विराजमान जावंत जीवादिपदार्थ तिहिकौ अंतर छेदी एक समय माहै जुगपत् प्रत्यक्षपनौ जाननशील जु कोई शुद्ध जीव वस्तु तिहिकौ म्हांकौ नमस्कारु। शुद्ध जीवकहु सारपनौ घटै छै। सार

कहतां हितकारी असार कहतां अहितकारी। सो हितकारी सुखु जानिज्यौ, अहितकारी दुखु जानिज्यौ। जातहि अजीवपदार्थ पुद्गलधर्माधर्माकाशकालकहु अरु संसारी जीवकहु सुखु नाही, ज्ञानु भी नाहीं, अरु तिहिकौ स्वरूप जानतां जाननहारा जीवकहु भी सुखु नाही, ज्ञानु भी नाहीं। तिहितै इनकौ सारपनौ घटै नही। शुद्धजीवकहु सुखु छै ज्ञानु भी छै। तिहिकै जानतां अनुभवतां जानन-हाराकौं सुखु छै ज्ञान भी छै। तिहितै शुद्ध जीवकौ सारपनौ घटै छै।

पद्यानुवाद—सोभित निज अनुभूतिजुत, चिदानंद भगवान।
सार पदारथ आतमा, सकल पदा रथ-जान॥

कलश— अनन्तधर्मणस्तत्त्वं पश्यन्ती प्रत्यगात्मनः।
अनेकान्तमयी मूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम्॥ २

बा० टी०—नित्यमेव प्रकाशतां—नित्य कहतां सदा त्रिकाल, प्रकाशतां कहतां प्रकाशकहुं, करहु, इतना कहतां नमस्कार कियौ। सो कौन, अनेकान्त-मयीमूर्ति। न एकांतः अनेकान्तः, अनेकान्त कहतां स्याद्वाद, तिहिमयी कहतां सोई छै, मूर्ति कहतां स्वरूप जिहिकौ, इसी छै सर्वज्ञकी वाणी कहतां दिव्यध्वनि। एनै अवसर आशंका उपजै छै। कोई जानिसे, अनेकान्त तो संशय छै, संशय मिथ्या छै। तिहि प्रति इसौ समाधान कीजै। अनेकान्त तो संशयको दूरीकरण-शील छै अरु वस्तुस्वरूपकहं साधनशील छै। तिहिको ब्यौरौ—जो कोई सत्तास्वरूप वस्तु छै, सो द्रव्य गुणात्मक छै, तिहि माहै जो सत्ता अभेदपने द्रव्यरूप कहिजै छै सोई सत्ता भेदपनेकरि गुणरूप कहिजै छै। इहि-कौ नाउ अनेकान्त कहिजै। वस्तुस्वरूप अनादिनिधन इसौ ही छै। काहूकौ सारौ नहीं। तिहितै अनेकान्त प्रमाण छै। आगे जिहि वाणीकहु नमस्कार कियौ सौ वाणी किसी छै प्रत्यगात्मनस्तत्त्वं पश्यंती—प्रत्यगात्मा कहतां सर्वज्ञ वीतराग, तिहिकौ ब्यौरौ, प्रत्यग भिन्न कहतां द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म तहि रहित छै आत्मा जीव द्रव्य जिहिकौ सो कहिजै प्रत्यगात्मा, तिहिकौ तत्त्व कहिजै स्वरूप, ताकहुं पश्यंती अनुभवनशील छै। भावार्थ—इस्यौ जो कोई वितर्क करिसै दिव्यध्वनि तौ पुद्गलात्मक छै अचेतन छै, अचेतननै नमस्कारु निषिद्ध छै। तीहे प्रति समाधान करिवाकै निमित्त यौ अर्थ कह्या, जो सर्वज्ञस्वरूप-अनुसारिणी छै। इसौ मानिवा पाषै भी बनै नहीं। ताकौ ब्यौरौ—वाणी जो

अचेतन छै। तिहि सुनतां जीवादि पदार्थको स्वरूपज्ञान ज्यौ उपजै छै त्यौ ही जानिज्यौ। वाणीको पूज्यपणौ भी छै। किं विशिष्टस्य प्रत्यगात्मनः, किसौ छै सर्वज्ञ वीतराग। अनन्तधर्म्मणः अनंत कहतां अति बहुत छै, धर्म्म कहतां गुण जिहिको इसौ छै, भावार्थ - इसौ जो कोई मिथ्यावादी कहै छै परमात्मा निर्गुण छै गुण विनाश हूवा परमात्मापणो होइ छै, सो इसौ मानिवौ झूठो छै। जिहितैं गुण विनश्यां द्रव्यको भी विनाश छै।

पद्या०—जोग धरै रहै जोगसौ भिन्न, अनंत गुनातम केवलग्यानी।
तासु हृदै द्रहसौं निकसी, सरिता सम ह्वै स्रुतसिन्धु समानी॥
यातैं अनंत नयातम लच्छन, सत्यसरूप सिधंत बखानी।
बुद्धि लखै न लखै दुरबुद्धि, सदा जगमांहि जगै जिनवानी॥ ३ जीवद्वार

कलश—क्वचिल्लसति मेचकं क्वचिदमेचकामेचकं
क्वचित्पुनरमेचकं सहजमेव तत्त्वं मम।
तथापि न विमोहयत्यमलमेधसां तन्मनः
परस्परसुसंहतप्रकटशक्तिचक्रं स्फुरत्॥ ९ साध्यसाधकद्वार

बा० टी०—भावार्थ इसौ—इहि शास्त्रको नाम नाटक समयसार छै। तिहितै यथा नाटकविषैं एक भाव अनेकरूप करि दिखाइजै छै तथा एक जीव द्रव्य अनेक भावकरि साधिजै छै। मम तत्त्वं सहजं, कहतां म्हारौ ज्ञानमात्र जीव वस्तु सहज ही इसौ छै, किसौ छै। क्वचित् मेचकं लसति–कहतां कर्मसंयोगथकी रागादिभावरूप परिणतिकै देखतां अशुद्ध इसौ आस्वाद आवै छै। पुनः कहतां एकांतपनै इसौ ही छै, यौं नहीं छै, इसौ फुनि छै। क्वचित् अमेचकं, कहतां एक वस्तुमात्र रूप देखतां शुद्ध छै एकांतपनै। इसौ फुनि न छै तो किसौ छै। क्वचितमेचकामेचकं—कहतां अशुद्धि परिणतिरूप, वस्तुमात्ररूप एक ही बारकै देखतां अशुद्ध फुनि छै शुद्ध फुनि। इसौ दोऊ विकल्प घटै छै इसौ क्यौ छै। तथापि कहतां तौ फुनि, अमलमेधसां तत् मनः न विमोहयति – अमलमेधसां कहतां सम्यग्दृष्टि जीवहकौं, तत् मनः कहतां तत्वज्ञानरूप छै जो बुद्धि, न विमोहयति, कहतां संशयरूप नहीं भ्रमै छै।

भावार्थ इसौ—जो जीव स्वरूप शुद्ध फुनि छै अशुद्ध फुनि छै शुद्ध अशुद्ध फुनि छ। इसौ कहतां अवधारिवाकौ भ्रमको ठौर छै तथापि जे स्याद्वादरूप वस्तु अवधारहि छै त्याहंको सुगम छै, भ्रम नाहीं उपजै छै। किसौ छै वस्तु-परस्परसुसंहृत्-प्रकटशक्तिचक्रं—परस्परं कहतां मांहोमाही एक सत्तारूप, सुसंहृत कहतां मिली छै इसी छै, प्रगट शक्ति कहतां स्वानुभवगोचर जो जीवकी अनेक शक्ति त्याहकौ, चक्रं कहतां समूह छै जीव वस्तु। और किसौ छै, स्फुरत कहतां सर्वकाल उद्योतमान छै।

पद्या०—करम अवस्थामैं असुद्धसौ बिलोकियत,

करमकलंकसौं रहित सुद्ध अंग है।
उभै नैप्रमान समकाल सुद्धासुद्ध रूप,
ऐसो परजाइधारी जीव नाना रंग है॥
एक ही समैमैं त्रिधारूप पै तथापि जाकी,
अखंडित चेतनासकति सरबंग है।
यहै स्यादवाद याकौ भेद स्यादवादी जानै,
मूरख न मानै जाकौ हियौ दृग भंग है॥ ४८ साध्यसाधकद्वार

आगे एक कलश दिया जा रहा है, जिसके अभिप्रायको बनारसीदासजीने कई पद्योंमें बिल्कुल स्वतन्त्र रूपसे विस्तारके साथ नई नई उपमाएँ आदि देकर स्पष्ट किया है—

कलश—आत्मानं परिशुद्धमीप्सुभिरतिव्याप्तिं प्रपद्यान्धकैः
कालोपाधिबलादशुद्धमधिकां तत्रापि मत्वा परैः।
चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य पृथुकैः शुद्धर्जुसूत्रे रतै-
रात्मा व्युज्झित एष हारवदहो निःसूत्रमुक्तेक्षुभिः॥ १६
—सर्वविशुद्धिद्वार

पद्यानुवाद—कहै अनातमकी कथा, चहै न आतमसुद्धि।
रहै अध्यातमसौ बिमुख, दुराराध्य दुरबुद्धि॥
दुरबुद्धी मिथ्यामती, दुरगति मिथ्याचाल।
गहि एकंत दुरबुद्धिसौं, मुकति न होइ त्रिकाल॥

कायासे बिचारै प्रीति मायाहीसौं हार जीति, लिये हठरीति जैसे हारिलकी लकरी।
चुंगलके जोर जैसे गोह गहि रहै भूमि, त्यौं ही पाय गाड़े पै न छांड़े टेक पकरी॥
मोहकी मरोरसौं भरमकौ न ठौर पावै, धावै चहु ओर ज्यौं बढ़ावै जाल मकरी।
ऐसैं दुरबुद्धि भूलि झूठके झरोखे झूलि, फूली फिरै ममता जंजीरनिसौं जकरी॥
बात सुनि चौंकि उठै बातहीसों भौंकि उठै, बातसौं नरम होइ बातहीसौं अकरी।
निंदा करै साधुकी प्रसंसा कर हिंसककी, साता मानै प्रभुता असाता मानै फकरी॥
मोष न सुहाइ दोष देखै तहां पैठि जाइ, कालसौं डराइ जैसे नाहरसौं बकरी।
ऐसैं दुरबुद्धि भूलि झूठके झूरोखे झूलि, फूली फिरै ममता जंजीरनिसौं जकरी॥

केई कहैं जीव छनभंगुर, केई कहैं करम करतार।
केई करमरहित नित जंपहिं, नय अनंत नाना परकार॥
जे एकांत गहैं ते मूरख, पंडित अनेकांत पख धार।
जैसे भिन्न भिन्न मुकतागन, गुनसौं गुहत कहावै हार॥
जथा सूतसंग्रह बिना, मुकतामाल न होइ।
तथा स्यादवादी बिना, मोख न साधै कोइ॥ ४० स० वि० द्वार

इन सब उदाहरणोंसे समझमें आजाता है कि नाटक समयसार भावानुवाद होकर भी अनेक अंशोंमें मौलिक है।

इस ग्रन्थका प्रचार श्वेताम्बर सम्प्रदायमें अधिक रहा है और अबसे कोई अस्सी वर्ष पहले (दिसम्बर सन् १८७६ में) इसे भीमसी माणिक नामके श्वेताम्बर प्रकाशकने ही गुजरातीटीकासहित[1] प्रकाशित किया था। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ भी अनेक श्वेताम्बर साधुओंकी लिखी हुई मिलती हैं।[2] दिगम्बर सम्प्र-

---

१—यह टीका मुनि रूपचन्दजीकी हिन्दी टीकाके आधारसे लिखी गई थी।

२—'विशाल भारत' मार्च १९४७ में मुनि कान्तिसागरजीका 'क० बनारसीदास और उनके ग्रन्थोंकी हस्तलिखित प्रतियाँ' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें जिन प्रतियोंका परिचय दिया है, वे प्रायः सभी श्वे० मुनियों या श्रावकों द्वारा लिखी गई हैं। नाटक समयसारकी एक प्रति उदयपुरमें चन्द्रगच्छीय शान्तिसूरिके विजयराज्यमें वस्तुपालगणि शिष्य सदारंग ऋषिने सं० १७१७ में

दायमें जहाँतक मुझे स्मरण है सबसे पहले स्व० बाबू सूरजभानजीने नाटक समयसार देवबन्दसे प्रकाशित किया था। उसके बाद फलटणसे स्व० नाना रामचन्द्र नागने और उसके बाद अनेक प्रकाशकोंने। भाषाटीका सहित भी दो स्थानोंसे प्रकाशित हो चुका है[१]।

३ **बनारसीविलास**—पूर्वोक्त दो ग्रन्थोंके सिवाय बनारसीदासजीकी जितनी भी छोटी मोटी रचनाएँ हैं वे सब इस ग्रन्थमें दीवान जगजीवनने संग्रह कर दी हैं और इस संग्रहका नाम बनारसीविलास रखा है। ये आगरेके ही रहनेवाले थे और बनारसीदासजीके अवसानके कुछ ही समय बाद चैत्र सुदी २ वि० सं० १७०१ को उन्होंने यह संग्रह किया था। जिन रचनाओंका उल्लेख बनारसीदासजीने अपनी आत्मकथा (अर्धकथानक) में किया है वे सभी इसमें हैं, बल्कि उनके सिवाय 'कर्मप्रकृतिविधान' नामकी अंतिम रचना भी है जो फागुन सुदी ७ सं० १७०० को समाप्त हुई थी, अर्थात् कर्मप्रकृतिविधानके केवल २५ दिन बाद ही बनारसीविलास संग्रहीत हो गया था। बहुत संभव है कि इसी बीच कविवरका देहान्त हो गया और उसके बाद ही उनकी स्मृति-रक्षाका यह आवश्यक कार्य पूरा किया गया।

बनारसीविलासमें जो रचनाएँ संग्रहीत हैं उनमेंसे ज्ञानबावनी (१६८६), जिनसहस्रनाम (१६९०), सूक्तमुक्तावली (१६९१) और कर्मप्रकृतिविधान (१७००) इन चार रचनाओंमें ही रचनाकाल दिया है, शेषमें नहीं। परन्तु अर्धकथानकसे नीचे लिखी रचनाओंके संबंधमें मालूम हो जाता है कि वे लगभग किस समय रची गई थीं।

लिखी है, जो बद्रीदास म्यूजियम कलकत्तामें है। दूसरी प्रतिको ऋषि जिनदत्तने सं० १८६९ में नजीबाबादमें लिखी। यह प्रति अब बंगाल रायल एशियाटिक सोसाइटी (नं० ६८४५) में सुरक्षित है। तीसरी प्रति भी उक्त सोसायटी (६७०१) में हैं जो साह मेघराजजीपठनार्थ लिखी गई थी। संवत् नही है। चौथी सटीक प्रति रूपचन्दके प्रशिष्य गजसारमुनिकी संवत् १८३९ की लिखी हुई है।

३—पं० बुद्धिलाल श्रावककी टीकासहित जैनग्रन्थरत्नाकर बम्बई द्वारा प्रकाशित और रूपचन्दकृत टीकासहित ब्र० नन्दलालजी द्वारा भिण्डसे प्रकाशित।

संवत् १६७० (अ० क० पद्य ३८६-८७ के अनुसार)

१—अजितनाथके छन्द

२—नाममाला[1]

संवत् १६८० (५९६-९७)

३—ग्यानपचीसी

४—ध्यानबत्तीसी

५—अध्यातमके गीत

६—शिवमन्दिर (कल्याणमंदिर)

सं० १६८०-९२ के बीच (६३५-२८)

७—सूक्तिमुक्तावली

८—अध्यातमबत्तीसी

९—पैड़ी (मोक्षपैड़ी)

१०—फाग धमाल (अध्यातम फाग)

११—(भवं) सिन्धुचतुर्दशी

१२—प्रास्ताविक फुटकर कविता

१३—शिवपचीसी

१४—सहसअठोतर नाम (सहस्रनाम)

१५—कर्मछत्तीसी

१६—झूलना (परमार्थ हिंड़ोलना)

१७—अन्तर रावन राम (राग सारंग)

१८—दोइ बिध आँखें (राग गौरी)

१९—दो वचनिका (परमार्थ वचनिका, उपादान निमित्तकी चिट्ठी)

२०—अष्टक गीत (शारदाष्टक)

२१—अवस्थाष्टक

२२—षट्दर्शनिष्टक

२३—गीत बहुत (अध्यातमपदपंक्तिके २१ पद)[2]

१—'नाममाला' बनारसीविलासमें संग्रह नहीं की गई है, अलग है।

२—जयपुरसे प्रकाशित बनारसीविलासमें ७ ही पद छपे हैं, शेष छूट गये हैं।

५

संवत् १६९३ (अ० क० ६३८)

२४ नाटकसमयसार

इनके सिवाय बनारसीविलासके प्रारंभकी जगजीवनकृत विषय-सूचनिकाके अनुसार नीचे लिखी रचनाएँ और हैं जिनमेंसे दोके सिवाय शेषका समय मालूम नहीं हो सका।

२५ बावनी सवैया (ज्ञान-बावनी) सं० १६८६
२६ वेदनिर्णय पंचासिका
२७ त्रेसठ शलाकापुरुष
२८ कर्मप्रकृतिविधान (सं० १७००)
२९ साधुबन्दना
३० षोड़श तिथि
३१ तेरह काठिया
३२ पंचपदविधान
३३ सुमतिदेवीशतक
३४ नवदुर्गाविधान
३५ नामनिर्णयविधान
३६ नवरत्न कवित्त
३७ पूजा (अष्टप्रकारी जिनपूजा)
३८ दशदान-विधान
३९ दश बोल
४० पहेली
४१ प्रश्नोत्तर दोहा (सुप्रश्न)
४२ प्रश्नोत्तरमाला
४३ शान्तिनाथ छन्द (शान्तिजिनस्तुति)
४४ नवसेनाविधान
४५ नाटक कवित्त (पाठान्तर कलशोंका अनुवाद)
४६ मिथ्यामति वाणी (मिथ्यामत)
४७ गोरखके वचन

४८ वैद्य आदि भेद

४९ निमित्त उपादानके दोहे

५० मल्हार (सोरठ राग)

अध्यात्मपदपंक्तिमें २१ पद हैं। उनमें भैरव, रामकली, बिलावल तो पद हैं, पर १७ वाँ 'आलाप' है जो दोहोंमें है। विषयसूचनिकामें भैरव आदि नाम तो हैं, पर 'आलाप' नहीं है। सो उसे पदपंक्तिसे अलग गिनना चाहिए। इन सब रचनाओंके नाम अर्ध-कथानकमें नहीं दिये, पर यदि हम नीचे लिखी पंक्तियोंके 'और' 'अनेक', और 'बहुत' के भीतर इन सबको समझ लें, तो इनका रचनाकाल १६८० से १६९२ तक मान लेना अनुचित न होगा —

> तब फिर **और** कबीसुरी, भई अध्यातममांहि । ४३६
> अरु इस बीच कबीसुरी, कीनी बहुरि **अनेक** । ६२५
> अष्टक गीत **बहुत** किए, कहौं कहांलौं सोइ ॥ ६२८

१ जिनसहस्रनाम — विष्णुसहस्रनाम, शिवसहस्रनाम आदिके समान जिनसेन, हेमचन्द्र, आशाधर आदिके बनाये हुए अनेक जिनसहस्रनाम हैं, पर वे सब संस्कृतमें हैं। इनका नित्य पाठ करनेकी पद्धति है। यदि यह भाषामें हो, तो पाठ करनेवालोंको ज्यादा लाभ हो, असंस्कृतज्ञ भी जिन-गुणोंका स्मरण सुगमतासे कर सकें, इस खयालसे यह रचा गया है। भाषामें यह शायद उनका सबसे पहला प्रयास है। इसमें भाषा, प्राकृत और संस्कृत तीनों प्रकारके शब्द हैं और कहा है कि एकार्थवाची शब्दोंकी द्विरुक्ति हो, तो दोष न समझना चाहिए। इसमें दश-शतक हैं और दोहा, चौपई, पद्धड़ी आदि सब मिलाकर १०३ छन्द हैं।

१—केवल पदमहिमा कहौं, करौं सिद्ध गुनगान ।
भाषा संस्कृत प्राकृत, त्रिविध शब्द परमान ॥ २
एकारथवाची सबद, अरु द्विरुक्ति जो होइ ।
नाम कथनके कवितमैं, दोष न लागै कोइ ॥ ३

२ सूक्त-मुक्तावली—यह इसी नामके संस्कृत ग्रन्थका जिसे 'सिन्दूर प्रकर' भी कहते हैं पद्यानुवाद है। मूल ग्रन्थके कर्त्ता सोमप्रभ हैं, जो श्वेताम्बर थे। बनारसीदासने अभिन्न मित्र कुँवरपालके साथ मिलकर इसे बनाया है[2]। इसके ४४ वें पद्य तकके २१ पद्योंमें तो 'बनारसीदास' नाम दिया है और उनके बाद ५९, ६४, ६७, ७८, ८० और ८२ नम्बरके ६ पद्योंमें कौंरा या कँवरपालका। यह एक तरहका सुभाषित है और सबके लिए उपयोगी है।

३ ज्ञान-बावनी—यह पीताम्बर नामक किसी सुकविकी रचना है और बनारसीविलासमें इसलिए संग्रह कर ली गई है कि इसमें बनारसीदासका गुण-कीर्तन किया गया है। यह स्वयं बनारसीकी रची हुई नहीं है।

४ वेदनिर्णयपंचासिका—इसमें चार अनुयोगोंको—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोगको चार वेद बतलाया है और उनके कर्त्ता ऋषभदेवको 'आदिब्रह्मा' कहकर जुगलधर्म और कुलकरों आदिका वर्णन दि० स० के अनुसार किया है। ५१ दोहा, चौपई, कवित्त आदि छन्द हैं।

५ शलाका पुरुषोंकी नामावली—दोहा, सोरठा, वस्तु छन्दोंमें शलाकापुरुषोंके नाम दिये हैं। 'प्रभु मल्लिनाथ त्रिभुवनतिलक' पदसे मालूम होता है कि रचयिता मल्लिनाथ तीर्थंकरको स्त्री नहीं मानते।

६ मार्गणाविधान—इसमें १४ मार्गणा और उनके ६२ भेदोंका चौपाई छन्दमें वर्णन है।

७ कर्मप्रकृतिविधान—१७५ पद्योंका एक स्वतन्त्र ग्रन्थ मालूम होता है। यह गोम्मटसार कर्मकाण्डके आधारसे लिखा गया है और इसमें आठों कर्मोंकी प्रकृतियोंका स्वरूप बहुत सुगम पद्धतिसे समझाया है। यह कविकी अन्तिम रचना संवत् १७०० के फागुन मासकी है।

१—ये अजितदेवके प्रशिष्य और विजयसेनके शिष्य थे। अजितदेवको 'जैन-बंस-सर-हंस दिगम्बर' विशेषण अनुवादकोंने अपनी तरफसे जोड़ दिया है।

२—कुँवरपाल बानारसी, मित्त जुगल इकचित्त।
तिन गिरंथ भाषा कियौ, बहुबिध छंद कवित्त॥

८ **शिवमन्दिर** (कल्याणमन्दिर)—यह कुमुदचन्द्रके संस्कृत स्तोत्रका भावानुवाद चौपई छन्दमें किया गया है, जो बहुत सुगम और सुन्दर है। इसका बहुत प्रचार है।

९ **साधुबन्दना**—२८ मूलगुणोंका २८ चौपई और ४ दोहोंमें वर्णन है जिससे स्पष्ट होता है कि कवि सवस्त्र भट्टारकों या यतियोंके प्रति श्रद्धालु नहीं हैं।

१० **मोक्षपैड़ी**—यह रचना खरताल लेकर गानेवाले साधुओंके ढंगकी है जिसमें कुछ पंजाबी विभक्तियोंका उपयोग हुआ है।—

इक्कसमै रुचिवंतनो गुरु अक्खै सुन मल्ल।
जो तुझ अंदर चेतना, वहै तुसाड़ी अल्ल ॥ १
ए जिनवचन सुहावने, सुन चतुर छयल्ला।
अक्खै रोचक सिक्खनै, गुरु दीनदयल्ला ॥
इस बुज्झै बुधि लहलहै, नहिं रहै मयल्ला।
इसदा भरम न जानई, सो दुपद बयल्ला ॥ २
यह सतगुरदी देसना, कर आस्रवदी वाड़ि।
लद्धी पैड़ी मोक्खदी, करम कपाट उघाड़ि ॥ २३

११ **करम-छत्तीसी**--३६ दोहोंमें जीव और अजीवका वर्णन बड़ी मार्मिकतासे किया गया है और बतलाया है कि अजीव पुद्गलकी पर्याय ही कर्म है और जीव उनसे जुदा है। इनके भेदको समझना चाहिए। पुद्गलके संसर्गसे जीवकी कैसी दशाएँ होती हैं—

पुदगलकी संगति करै, पुदगल ही सौं प्रीत।
पुदगलकौं आपा गनै, यहै भरमकी रीत ॥ १७
जे जे पुदगलकी दसा, ते निज मानै हंस।
याही भरम विभावसौं, बढ़ै करमकौ बंस ॥ १८
ज्या ज्यौं करम विपाकवस, ठानै भ्रमकी मौज।
त्यौं त्यौं निज संपति दुरै, जुरै परिग्रह फौज ॥ १९
ज्यौं वानर मदिरा पिए, बीछीडंकित गात।
भूत लगै कौतुक करै, त्यौं भ्रमकौ उतपात ॥ २०

भ्रम संसैकी-भूलसौं, लहै न सहज सुकीय।
करमरोग समुझै नहीं, यह संसारी जीय॥ २१

१२ ध्यान-बत्तीसी—इसमें पहले रूपस्थ, पदस्थ, पिंडस्थ और रूपातीतका और फिर आर्त्त रौद्र आदि कुध्यानों और शुक्ल ध्यानोंका वर्णन है। अन्तमें कहा है—

सुकल ध्यान ओषद लगै, मिटै करमकौ रोग।
कोइला छांडै कालिमा, होत अगनि-संजोग॥ ३३

इसके प्रारम्भमें गुरु भानुचन्द्रका स्मरण किया है।

१३ अध्यातम-बत्तीसी- ३२ दोहोंमें चेतन जीव और अचेतन पुद्गलका भेद समझाया है—

चेतन पुद्गल यौं मिले, ज्यौं तिलमैं खलि तेल।
प्रगट एकसे देखिए, यह अनादिकौ खेल॥ ४
ज्यौं सुबास फल-फूलमैं, दही-दूधमैं घीव।
पावक काठ-पखानमैं, त्यौं सरीरमैं जीव॥ ७
भववासी जानै नहीं, देव धरम गुरु भेद।
परयौ मोहके फंदमै, करै मोखकौ खेद॥ २०
देव धरम गुरु हैं निकट, मूढ़ न जानै ठौर।
बंधी दिष्टि मिथ्यातसौं, लखै औरकी और॥ २२
भेखधारिकौं गुरु कहै, पुन्नवंतकौं देव।
धरम कहै कुलरीतकौं, यह कुकर्मकी टेव॥ २३

१४ ज्ञान-पचीसी—अपने मित्र उदयकरणके और अपने हितके लिए २५ दोहोंमें ज्ञानगर्भ उपदेश दिया गया है—

सुर-नर-तिर्यग जोनिमैं, नरक निगोद भमंत।
महामोहकी नींदसौं, सोए काल अनंत॥ १
जैसैं ज्वरके जोरसौं, भोजनकी रुचि जाइ।
तैसैं कुकरमके उदै, धर्मवचन न सुहाइ॥ २

लगै भूख जुरके गए, रुचिसौं लेइ अहार।
असुभ गए सुभके जगे, जानै धर्मविचार ॥ ३
जैसैं पवन झकोरतैं, जलमैं उठै तरंग।
त्यौं मनसा चंचल भई, परिग्रहके परसंग ॥ ४
जहाँ पवन नहिं संचरै, तहां न जलकल्लोल।
त्यौं सब परिगह त्यागलौं, मन-सर होइ अडोल ॥ ५

१५ **शिवपच्चीसी**—इसमें जीवको शिवस्वरूप बतलाया है और शिव या महादेवको निश्चयनयसे शंकर, शंभु, त्रिपुरारि, मृत्युंजय आदि नामोंको सार्थक कहा है—

शिवसरूप भगवान अवाची, शिवमहिमा अनुभवमति सांची।
शिवमहिमा जाके घर भासी, सो शिवरूप हुआ अविनासी ॥ ३
जीव और शिव और न होई, सोई जीव वस्तु शिव सोई।
जीव नाम कहिए व्योहारी, शिवसरूप निहचै गुणधारी ॥ ४

१६ **भवसिन्धु-चतुर्दशी**—१४ दोहोंमें संसार-समुद्रको पारकर शिवद्वीपमें पहुँचनेपर जोर दिया है—

जैसैं काहू पुरुषकौं, पार पहुंचबे काज।
मारगमांहि समुद्र तहां, कारणरूप जहाज ॥ १
तैसैं सम्यकवंतको, और न कछू इलाज।
भवसमुद्रके तरनकौं, मन जहाजसौं काज ॥ २
मन जहाज घटमैं प्रगट, भवसमुद्र घटमांहि।
मूरख मरम न जानहीं, बाहर खोजन जांहि ॥ ३

१७ **अध्यातम फाग**—इसमें १८ दोहे हैं और उनके पहले तीसरे चरणके अन्तमें 'हो' और चौथे चरणके बाद 'भला अध्यातम बिन क्यों पाइए' यह टेक डाली है—

विषम विरस पूरौ भयौ हो, आयौ सहज वसंत।
प्रगटी सुरुचि सुगंधिता हो, मनमधुकर मयमंत ॥
भला अध्यातम बिन क्यों पाइए ॥ २

१८ **सोलह तिथि**—इसमें पड़िवा (प्रतिपदा), दूज, तीज आदिसे लेकर पूनो तककी तिथियोंका अर्थ परमार्थ दृष्टिसे बतलाया है—

परिवा प्रथम कला घट जागी, परम प्रतीत रीत रस पागी ।
प्रतिपद परम प्रीत उपजावै, वहै प्रतिपदा नाम कहावै ॥ १
आठैं आठ महामद भंजै, अष्टसिद्धिरतिसौं नहिं रंजै ।
अष्ट करममल मूल बहावै, अष्टगुणातम सिद्ध कहावै ॥ ८

१९ **तेरह काठिया**—इसके प्रारंभमें कहा है—

जे बटपारे बाटमैं, करैं उपद्रव जोर ।
तिन्हें देस गुजरातमैं, कहैं काठिया चोर ।
त्यौं ए तेरह काठिया, करै धरमकी हान,
तातैं कछु इनकी कथा, कहौं बिसेस बखान ॥

फिर जुआ, आलस, शोक, भय, कुकथा, कौतुक, क्रोध, कृपणता, अज्ञान, भ्रम, निद्रा, मद और मोहको चोर बतलाकर कहा है—

एही तेरह करम ठग, लेहिं रतनत्रय छीन ।
यातैं संसारी दशा, कहिए तेरह तीन ।

२० **अध्यातम गीत**—यह गीत राग गौरीमें है। इसकी टेक है, "मेरे मनका प्यारा जो मिलै, मेरा सहज सनेही जो मिलै।" सुमतिरूप सीता आतम रामसे कहती है —

मैं बिरहिन पियके आधीन, यौं तलफौं ज्यौं जलबिन मीन ॥ मेरा० ३
बाहर देखूं तो पिय दूर, घट देखूं घटमैं भरपूर ॥ मेरा० ४
मैं जग ढूंढ़ फिरी सब ठौर, पियके पटतर रूप न और ॥ ११
पिय जगनायक पिय जगसार, पियकी महिमा अगम अपार ॥ १२

२१ **पंचपदविधान**—दो दोहों और १० चौपई छन्दोंमें अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधुका साधारण वर्णन है।

२२ **सुमतिदेवीके अष्टोत्तरशत नाम**—पाँच रोड़क और एक घत्तामें सुमतिदेवीके १०८ नाम दिये हैं—सुमति, सुबुद्धि, सुधी, सुबोधनिधिसुता, शेमुषी, स्याद्वादिनी, आदि।

२३ शारदाष्टक—आठ भुजंगप्रयात छन्दोंमें सत्यार्थ शारदाकी विविध नाम देकर स्तुति की है—

> जिनादेशजाता जिनेंद्रा विख्याता, विशुद्धा प्रबुद्धा नमों लोकमाता।
> दुराचार दुर्नैहरा शंकरानी, नमों देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ २

२४ नवदुर्गाविधान – शीतला, चंडी, कामाख्या, जोगमाया आदि नौ दुर्गाओंको सुमतिदेवीके रूपमें नौ कवित्तोंमें घटाया है —

> यहै परमेश्वरी परम रिद्धिसिद्धि साधै, यहै जोगमाया व्यवहार ढार ढरनी।
> यहै पदमावती पदम ज्यौं अलेप रहै, यहै शुद्ध सकति मिथ्यातकी कतरनी।
> यहै जिनमहिमा बखानी जिनशासनमैं, यहै अखंडित शिवमहिमा अमरनी।
> यहै रसभोगिनी वियोगमैं वियोगिनी है, यहै देवी सुमति अनेक भांति बरनी ॥९

२५ नामनिर्णयविधान—इसके ११ पद्योंमें नामकी अस्थिरता और भ्रमको बड़े अच्छे ढंगसे व्यक्त किया है—

> जगतमें एक एक जनके अनेक नाम, एक एक नाम देखिए अनेक जनमैं।
> या जनम और वा जनम और आगैं और, फिरता रहै पै याकी थिरता न तनमैं॥
> कोई कलपना कर जोई नाम धरै जाकौ, सोई जीव सोई नाम मानै तिहू पनमैं।
> ऐसो बिरतंत लखि संतसौं सुगुरु कहैं, तेरो नाम भ्रम तू विचार देखि मनमैं ॥ ७

२६ नवरत्न कवित्त—नौ छप्पय छन्दोंमें नौ सुभाषित हैं और उन्हें अमर, घटकर्पर, बेताल, वररुचि, शंकु, वराहमिहिर, कालिदासके समान नौ रत्न बतलाया है। एक सुभाषित यह है—

> ग्यानवंत हठ गहै, निधन परिवार बढ़ावै।
> बिधवा करै गुमान, धनी सेवक ह्वै धावै॥
> वृद्ध न समुझै धरम, नारि भरता अवमानै।
> पंडित क्रियाविहीन, राह दुरबुद्धि प्रमानै॥
> कुलवंत पुरुष कुलविधि तजै, बंधु न मानै बंधुहित।
> संन्यास धारि धन संग्रहै, ये जगमैं मूरख विदित ॥ ११

२७ अष्टप्रकारी जिनपूजा—जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल और अर्घरूप आठ प्रकारकी पूजा किस फलकी आशासे की जाती है, सो दस दोहोंमें बतलाया है—

मलिन वस्तु उज्जल करै, यह सुभाव जलमांहि।
जलसौं जिनपद पूजतैं, कृतकलंक मिटि जांहि ॥ २

२८ दस दान विधान—गो, सुवर्ण, दासी, भवन, गज, तुरंग, कुलकलत्र, तिल, भूमि, और रथ इन चीजोंके लोकप्रचलित दानोंका आध्यात्मिक अर्थ समझाया है। गजदान यथा—

अष्ट महामद धुरके साथी, ए कुकर्म कुदशाके हाथी।
इनकौ त्याग करै जो कोई, गजदातार कहावै सोई ॥ ७

सवत्स गोदान यथा—

गो कहिए इंद्रिय अभिधाना, बछरा उमंग भोग पयपाना।
जो इसके रसमांहि न राचा, सो सबच्छ गोदानी सांचा ॥ ३

२९ दस बोल—दस दोहोंमें जिन, जिनपद, धर्म, जिनधर्म, जिनागम, वचन, जिनवचन, मत और जिनमतका स्वरूप कहा है। मतके विषयमें यथा—

थापै निजमतकी क्रिया, निंदै परमतरीत।
कुलाचारसौं बंधि रहै, यह मतकी परतीत ॥ १०

३० पहेली—यह कहरा नामाकी चालमें कुमति सुमति नामक दो ब्रजनारियोंके बीच उपस्थित की गई पहेली है जिनका पति अवाची है—

कुमति सुमति दोऊ ब्रजवनिता, दोउकौ कंत अवाची।
वह अजान पति मरम न जानै, यह भरतासौं राची ॥ १
यह सुबुद्धि आपा परिपूरन, आपा-पर पहिचानै।
लखि लालनकी चाल चपलता, सौत साल उर आनै ॥ २
करै बिलास हास कौतूहल, अगनित संग सहेली।
काहू समै पाइ सखियनसौं, कहै पुनीत पहेली ॥ ३

३१ प्रश्नोत्तर दोहा—इसमें पाँच प्रश्न और पाँच ही उनके उत्तर दिये हैं। यथा—

प्रश्न – कौन वस्तु बपुमांहि है, कहाँ आवै कहाँ जाइ।
ग्यानप्रकार कहा लखै, कौन ठौर ठहराइ ॥
उत्तर – चिदानंद बपुमांहि है, भ्रममैं आवै जाइ।
ग्यान प्रगट आपा लखै, आपमांहि ठहराइ ॥

३२ प्रश्नोत्तरमाला—उद्धव-हरि-संवादके रूपमें २१ पद्योंमें है। पहलेके ९ दोहोंमें समता, दम, तितिक्षा, धीरज आदिके २४ प्रश्न हैं और फिर अन्तकी १० चौपाइयोंमें उनके उत्तर हैं। यथा—

समता-ग्यान-सुधारस पीजै, दम इंद्रिनकौ निग्रह कीजै।
संकटसहन तितिच्छा बीरज, रसना मदन जीतबौ धीरज ॥

अन्तमें कहा है—

इति प्रश्नोत्तरमालिका, उद्धव-हरिसंवाद।
भाषा कहत बनारसी, भानु सुगुरुपरसाद ॥ २१

३३ अवस्थाष्टक—इसके आठ दोहोंमें कहा है कि निश्चयनयसे चेतन-लक्षण जीव सब एक जैसे हैं, पर व्यवहार नयसे मूढ़, विचक्षण और परम ये तीन भेद हैं। मूढ एक प्रकार, विचक्षण तीन प्रकार और परमातमा जंगम और अविचल दो प्रकार, इस तरह छह प्रकारके जीव हैं। फिर सबका स्वरूप बतलाया है। अन्तमें कहा है—

जिहि पदमैं सब पद मगन, ज्यौं जलमैं जलबुंद।
सो अविचल परमातमा, निराकार निरदुंद ॥ ८

३४ षट्दर्शनाष्टक—इसमें शैव, बौद्ध, वेदान्त, न्याय, मीमांसक, और जैनमतका स्वरूप एक एक दोहेमें दिया है। जैनमत यथा—

देव तीर्थंकर गुरु जती, आगम केवलि-बैन।
धरम अनन्तनयातमक, जो जानै सो जैन ॥ ७

३५ चातुर्वर्ण—पाँच दोहोंमें ब्राह्मणादि चार वर्णोंका वास्तविक अर्थ बतलाया है। ब्राह्मण यथा—

जो निहचै मारग गहै, रहै ब्रह्मगुनलीन।
ब्रह्मदृष्टि सुख अनुभवै, सो ब्राह्मण परबीन ॥

३६ अजितनाथके छन्द—यह कविकी संभवतः सबसे पहली रचना है। यह उन्होंने अपनी ससुराल खैराबादमें लिखी थी। इसमें अजितनाथको

' खैराबादमंडन ' विशेषण दिया है। खैराबादके श्वेताम्बर मन्दिरकी यह मुख्य मुख्य प्रतिमा होगी। इसके प्रारम्भमें उन्होंने सुगुरु भानुचन्द्रका स्मरण भी किया है जो खरतरगच्छके थे।

३७ शांतिनाथस्तुति—कविकी यह प्रारंभकी रचना जान पड़ती हैं। पहली दो ढालोंमें ' नरोत्तमकौ प्रभु ' कहकर अपने मित्र नरोत्तम खोबराको स्तुतिमें शामिल किया है।

सकल सुरेस नरेस अरु, किन्नरेस नागेस।
तिनि गन वंदित चरन जुग, बन्दूं सांति जिनेस॥ आदि।

३८ नवसेना विधान—इसमें पत्ति, सेना, सेनामुख, अनीकिनी, वाहिनी, चमू, वरूथिनी, दंड और अक्षोहिणी सेनाके इन नौ भेदोंकी शास्त्रोक्त गणना बतलाई है कि किसमें कितने घोड़े, रथ, हाथी, सुभट और पायक रहते हैं।

३९ नाटकसमयसारके कवित्त—इसमें पहला ८६ वें संस्कृतकलशका दूसरा १०४ वें कलशका अनुवाद है, तीसरा चौथा पद्य किन कलशोंका अनुवाद है, पता नहीं।

४० मिथ्यामत वाणी—तीन कवित्तोंमें कहा है कि नारायणको परनारी-रत बतलाना, ब्रह्माको निज कन्यासे ब्याह करनेवाला, द्रौपदीको पंचभरतारी कहना यह सब मिथ्या है।

४१ फुटकर कविता—इसमें १० इकतीसा कवित्त, ३ सवैया, ३ छप्पय १ वस्तुछन्द और ५ दोहे हैं। अर्धकथानकका २९ वाँ कवित्त छत्तीस पौनका और ६२ वाँ सवैया ' पुण्यसंजोग जुरैं रथपायक ' आदि शामिल कर लिया गया है। ११ वें छप्पय छन्दमें हींग, मोम, लाख, मधु, मादक द्रव्य, नील आदिका व्यापार न करनेको कहा है। १२ वे कवित्तमें मोती, मूँगा, गोमेदक आदि रत्नोंके नाम हैं। १४ वें छप्पयमें चौदह विद्याओंके नाम हैं। १६ वें वस्तु छन्दमें कर्मकी एक सौ अड़तालीस प्रकृतियोंके नाम हैं।

१—बाबू कामताप्रसादजी जैनके संग्रहमें एक गुटका है जिसमें ' खैराबाद-पार्श्व-जिनस्तुति ' नामकी एक रचना है जिसे खरतरगच्छके पं० क्षान्तिरंगगणिने वि० सं० १६२६ में रचा था। इससे भी अनुमान होता है कि खैराबादमें कोई श्वेताम्बर मन्दिर था।

४२ गोरखनाथके वचन — इसकी प्रत्येक चौपाईके अन्तमें 'कह गोरख' 'गोरख बोलै' कहकर सन्तों जैसी अटपटी बातें कहीं हैं। देखिए—

जो भग देख भामिनी मानै, लिंग देख जो पुरुष प्रमानै।
जो बिन चिन्ह नपुंसक जोवा, कह गोरख तीनों घर खोवा ॥ १
जो घर त्याग कहावै जोगी, घरवासीको कहै जो भोगी।
अंतर भाव न परखै जोई, गोरख बोलै मूरख सोई ॥ २
माया जोर कहै मैं ठाकर, माया गए कहावै चाकर।
माया त्याग होइ जो दानी, कह गोरख तीनों अग्यानी ॥ ४
कोमल पिंड कहावै चेला। कठिन पिंड सो ठेलापेला।
जूना पिंड कहावै बूढ़ा, कह गोरख ये तीनों मूढ़ा ॥ ५
सुन रे बाचा चुनियां मुनियां, उलट वेधसौं उलटी दुनियां।
सतगुरु कहैं सहजका धंधा, वादविवाद करै सो अंधा ॥ ७

४३ वैद्य लक्षणादि कविता —इसमें ४१ पद्य हैं। पहले वैद्य, ज्योतिषी, वैष्णव, मुसलमान, गहव्वर, आदिके लक्षण कहे हैं। मुसलमानके लक्षणमें कहा है—

जो मन मूसै आपनौ, साहिबके रुख होइ।
ग्यान मुसल्ला गह टिकै, मुसलमान है सोइ ॥
एकरूप हिन्दू तुरुक, दूजी दसा न कोइ।
मनकी दुबिधा मानकर, भए एकसौं दोइ ॥
दोऊ भूले भरममैं, करैं बचनकी टेक।
राम राम हिंदू कहैं, तुर्क सलामालेक ॥
इनके पुस्तक बांचिए, वेहू पढ़ैं कितेब।
एक बस्तुके नाम दो, जैसैं शोभा जेब ॥
तनकौं दुबिधा, जे लखैं, रंग बिरंगी चाम।
मेरे नैननि देखिए, घट घट अंतरराम ॥
यहै गुपत यह है प्रगट, यह बाहर यह मांहि।
जब लगि यह कछु है रह्या, तब लगि यह कछु नांहि ॥ ११

आगे २० दोहोंमें अध्यात्मभावके सुन्दर सुभाषित हैं।

४४ **परमार्थ वचनिका**—यह लगभग ९ पृष्ठोंका गद्यलेख है। इससे बनारसीदासजीकी, गद्यरचनाशैलीका पता लगता है। यह पं० राजमल्लजीकी समयसारकी बालबोधिनी गद्यटीकाके लगभग पचास वर्ष बादकी रचना है। बालबोधिनीके गद्यके नमूनें हमने अन्यत्र दिये हैं। भाषाशास्त्रियोंके अध्ययनमें ये दोनों सहायक होंगे। देखिए—

"मिथ्यादृष्टी जीव अपनौ स्वरूप नहीं जानतौ तातैं पर-स्वरूपविषै मगन होइ करि कार्य मानतु है, ता कार्य करतौ छतौ अशुद्ध व्यवहारी कहिए। सम्यग्दृष्टि अपनौ स्वरूप परोक्ष प्रमानकरि अनुभवतु है। परसत्ता परस्वरूपसौं अपनौ कार्य नहीं मानतौ संतौ जोगद्वारकरि अपने स्वरूपकौ ध्यान विचाररूप क्रिया करतु है ता कार्य करतौ मिश्रव्यवहारी कहिए। केवलज्ञानी यथाख्यात चारित्रके बलकरि शुद्धात्मस्वरूपको रमनशील है तातैं शुद्ध व्यवहारी कहिए, जोगारूढ अवस्था विद्यमान है तातैं व्यवहारी नाम कहिए। शुद्ध व्यवहारकी सरहद्द त्रयोदशम गुणस्थानकसौं लेइ करि चतुर्दशम गुणस्थानकपर्यंत जाननी। असिद्धत्वपरिणमनत्वात् व्यवहारः।"

"इन बातनकौ ब्यौरो कहांतांई लिखिए, कहां तांई कहिए। वचनातीत इन्द्रियातीत ज्ञानातीत, तातैं यह विचार बहुत कहा लिखहिं। जो ग्याता होइगो सो थोरो ही लिख्यौ बहुत करि समुझैगो, जो अग्यानी होइगो सो यह चिट्ठी सुनैगो सही परन्तु समुझैगो नहीं। यह वचनिका यथाका यथा सुमति प्रवांन केवली वचनानुसारी है। जो याहि सुनैगो समुझैगो सरदहैगो ताहि कल्याणकारी है भाग्यप्रमाण"।

जान पड़ता है यह वचनिका चिट्ठीके रूपमें लिखकर कहींको भेजी गई थी।

४५ **उपादान निमित्तकी चिट्ठी**—यह भी गद्यमें लिखी हुई है और छपे हुए ६–७ पृष्ठोंकी है। कुछ अंश देखिए—

"प्रथम ही कोऊ पूछत है कि निमित्त कहा उपादान कहा, ताकौ ब्यौरौ-निमित्त तो संयोगरूप कारण, उपादान वस्तुकी सहजशक्ति, ताकौ ब्योरौ—एक द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान, एक पर्यायाथिक निमित्त उपादान, ताकौ ब्यौरो—द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान एक पर्यायार्थिक निमित्त उपादान, ताकौ ब्योरो

द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान गुनभेदकल्पना । पर्यायार्थिक निमित्त उपादान परजोगकल्पना । ”

४५—**निमित्त उपादानके दोहे**—निमित्त और उपादानका पुराना विवाद है। सात दोहोंमें दोनोंको स्पष्ट किया गया है—

गुरु उपदेस निमित्त बिन, उपादान बलहीन।
ज्यौं नर दूजे पांव बिन, चलवेकौं आधीन ॥ १
हौं जानै था एक ही, उपादानसौं काज।
थकै सहाई पौन बिन, पानी मांहि जहाज ॥ २

४६ **अध्यात्मपदपंक्ति**—इसमें भैरव, रामकली, बिलावल, आसावरी, धनाश्री, सारंग, गौरी, काफी आदि रागोंमें २१ पद या भजन हैं जो बहुत मार्मिक और सुन्दर हैं। नमूनेका एक पद देखिए—

हम बैठे अपनी मौनसौं।
दिन दसके महमान जगतजन, बोलि बिगारैं कौनसौं ॥ हम बै० १
गए बिलाय भरमके बादर, परमारथपथ पौनसौं।
अब अंतरगति भई हमारी, परचै राधारौनसौं ॥ हम० २
प्रगटी सुधापानकी महिमा, मन नहिं लागै बौनसौं।
छिन न सुहाइ और रस फीके, रुचि साहिबके लौनसौं ॥ हम० ३
रहे अघाइ पाइ सुखसंपति, को निकसै निज भौनसौं।
सहज भाव सदगुरुकी संगति, सुरझै आवागौनसौं। हम० ॥ ४

इसके आगे पदका नंबर ५ देकर ८ दोहे और हैं, जो जिनमुद्रा या जिन-प्रतिमाके ही सम्बन्धके हैं। जान पड़ता है, पूर्वोक्त दो दोहे और ये आठ दोहे एक ही पदके हैं। दो दोहोंके बाद “ इहि विधि देव अदेवकी मुद्रा लख लीजे। ” यह टेक दी है और सबको ‘ रागविलावल ’ बतलाया है।

दसवें पदको ‘ राग बरवा.’ लिखा है। यह बनारसीदासजीने अपने मित्र थानमल्ल और नरोत्तमके लिए रचा है—

१—बनारसीविलासकी इस समय कोई हस्तलिखित पुरानी प्रति नहीं मिली। ये नमूने छपी हुई प्रतिपरसे दिये गये हैं।

उधवा गाइ सुनाएहु चेतन चेत।
कहत बनारसि थान नरोत्तम हेत ॥ २६

प्रारंभ इस प्रकार किया है—

संवरौं सारदसामिनि औ गुरु ' भान '।
कछु बलमा परमारथ करौं बखान ॥ बालम० ४
काय नगरिया भीतर चेतन भूप।
करम लेप लिपटाएल, जोतिसरूप ॥ बालम०

२१ वें पद ' राग काफी ' में आगरेके ' चिन्तामन स्वामी ' की मूर्तिकी स्तुति है—

चिंतामन स्वामी सांचा साहब मेरा।
शोक हरै तिहु लोकको, उठि लीजतु नाम सवेरा ॥ चि०
बिंब बिराजत आगरे, थिर थान थयो शुभ बेरा।
ध्यान धरै बिनती करै, बानारसि बंदा तेरा ॥ चि०

४७-४८ परमारथ हिंडोलना और **राग मलार** तथा **सोरठ**—वास्तवमें ये भी दोनों पद ही हैं, परन्तु पदपंक्तिमें शामिल नहीं किये गये, अलग रखे गये हैं। अन्य पदोंके ही समान ये हैं।

इस तरह बनारसीबिलासकी समस्त रचनाओंका संक्षिप्त परिचय दिया गया। पाठक देखेंगे कि इसमें कविको ठीक ठीक समझनेके लिए काफी

१—अबसे ५२ वर्ष पहले सन् १९०५ में मैंने इसे सम्पादित करके और विस्तृत भूमिका लिखकर जैनग्रन्थरत्नाकरद्वारा प्रकाशित किया था। यद्यपि परिश्रम बहुत किया था, परन्तु साधनोंकी कमीसे, एक ही हस्तलिखित प्रतिका आधार मिलनेसे और पुरानी भाषाका ठीक ज्ञान न होनेसे वह बहुत ही त्रुटिपूर्ण रहा। उसके पचास वर्ष बाद सन् १९५५ में जब यह जयपुरसे प्रकाशित हुआ, तो देखा कि मेरे उस पहले संस्करणको ही प्रेसमें देकर छपा लिया गया है, दूसरी प्रतियोंके सुलभ होनेपर भी उनका उपयोग नहीं किया गया और उसमें पहलेसे भी अधिक अशुद्धियाँ और त्रुटियाँ भर गई हैं। इससे बड़ा दुःख हुआ। अब भी इसका एक प्रामाणिक संस्करण शीघ्र ही प्रकाशित होनेकी आवश्यकता है।

सामग्री है। सूक्ष्म अध्ययनसे उनके क्रमविकासका, कवित्वशक्तिके विकासका और दार्शनिक साम्प्रदायिक विकासका भी पता लगता है।

४ अर्धकथानक

चौथा ग्रन्थ यह 'अर्ध कथानक' है जो एक तरहसे उनका आत्मचरित और उनके समयके उत्तरभारतकी सामाजिक अवस्था और राजा प्रजाके सम्बन्धोंपर प्रकाश डालता है। आश्चर्य यह है कि भारतीय साहित्यकी इस अद्वितीय आत्म-कथाका प्रचार बहुत ही कम हुआ है। पिछले दो तीनसौ वर्षोंके जैन ग्रन्थकारों-तकको भी इसका पता नहीं रहा है, ग्रन्थ-भण्डारोंमें भी इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ बहुत कम देखी गई हैं। इसका कारण साम्प्रदायिक कट्टरता और विचार-संकीर्णता ही जान पड़ता है।

१—सन् १९९५ में बनारसीविलासकी विस्तृत भूमिकामें 'अर्ध कथानक' का प्रायःपूरा अनुवाद दे दिया था परन्तु मूल पाठ उसमें नहीं था। वह कोई ३८ वर्षके बाद सन् १९४३ में प्रकाशित हो सका। लगभग उसी समय प्रयागके सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ० माताप्रसाद गुप्तने उसे 'अर्द्धकथा' नामसे प्रकाशित किया और उसकी खोजपूर्ण भूमिका लिखी। 'अर्द्धकथा' केवल एक ही प्रतिके आधारसे सम्पादित हुई थी, इस लिए उसमें पाठकी अशुद्धियाँ बहुत रह गई हैं और बहुतसे पाठ भी छूटे गये हैं। ३९२ नं० का 'मोती हार लियौ हुतो' आदि दोहा नहीं है, ५५९ से ५६६ नम्बरके ८ पद्य बिल्कुल गायब हैं, ६२२, ६२३ और ६६५ नम्बरके पद्य भी छूटे हैं और आगे ६७१ नं० का 'नग आगरेमें बसै' आदि दोहा नहीं है। इस तरह सब मिलाकर १३ पद्य कम हैं और समस्त पद्योंकी संख्या ६६२ है। इसपर डॉ० सा० लिखते हैं कि "यद्यपि रचनाके अन्तमें उसकी छन्दसंख्या ६७५ कही गई है पर वह वास्त-वमें है ६६२ ही। और कहींपर ज्ञात नहीं होता कि पंक्तियाँ छूटी हुई हैं, क्यों कि कथाकी धारा अवाध रूपसे प्रवाहित होती है। ऐसी दशामें दो बातें संभव ज्ञात होती है, या तो कोई समस्त प्रसंग—एक या अधिक—ग्रन्थ-निर्माणके बाद कभी स्वतः लेखक या किसी अन्य व्यक्तिद्वारा इस प्रकार निकाल दिया गया कि वस्तु विकासमें कोई व्यवधान उपस्थित न हुआ, अथवा कविने जो छन्दसंख्या लिखी उसमें उससे कोई गणनाकी भूल हो गई। पाठ प्रमाद

५ नवरसरचना

यह पोथी सं० १६५७ में लिखी गई थी जब कि कविकी अवस्था चौदह वर्षकी थी।

"पोथी एक बनाई नई, मित हजार दोहा चौपई।
तामैं नवरसरचना लिखी, पै बिसेस बरनन आसिखी।
ऐसे कुकवि बनारसी भए। मिथ्या ग्रंथ बनाए नए ॥१७९"

अर्थात् इस पोथीमें इश्क (प्रेम=मुहब्बत) का विशेष वर्णन था। विरक्ति हो जानेपर सं० १६६२ में जब इसे गोमती नदीमें बहा दिया गया, तब लिखा है कि—

मैं तो कलपित वचन अनेक।
कहे झूठ सब साचु न एक॥ २६६

एक झूठ बोलनेवालेको नरकदुःख भोगना पड़ता है, पर मैंने तो इसमें अनेक कल्पित वचन लिखे हैं जो सब ही झूठ हैं, तब मेरी बात कैसी बनेगी?

उक्त लेखके सम्बन्धमें असंभव नहीं कहा जा सकता।" इसपर हमारा निवेदन है कि स्वयं कवि गणनाकी ऐसी भूल नहीं कर सकते। उन्होंने अपने दूसरे ग्रन्थ नाटक समयसारमें भी छन्दोंकी संख्या ७२७ दी है और वह उतनी ही है। ग्रन्थकी प्रतिलिपि करनेवालेने ही १३ छन्द छोड़ दिये हैं। रही वस्तु-विकासमें कोई व्यवधान उपस्थित न होनेकी बात, सो बारीकीसे विचार करनेसे व्यवधान साफ नज़रमें आ जाते हैं। ३९१ वें छन्दमें कहा है कि बहुत उपाय करने पर भी मन्दा कपड़ा जब नहीं बिका, तब कवि एकाएक ऐसा विचार कैसे कर सकता है कि जवाहरातका व्यापार अच्छा है। छूटे हुए ३९२-९३ छन्दमें कहा है कि मोतीहार जो ४२ रुपयोंमें खरीदा था, वह ७० में बिका और उसमें पौन-दूने हो गये, इस लिए जवाहरातका धंदा अच्छा। इसी तरह ५५८ वें छन्दके बाद एकाएक तीसरे दिन अंगनदासका सबलसिहके पास जाना भी बतलाता है कि बीचमें बहुत कुछ रह गया है। ६२१ के बाद सं० ९१ और ९२ संवत्की बात कहनेवाले दो छन्द छूटे हुए हैं, जिनका छूटना पकड़में आ सकता है, इसी तरह ६७० वें छन्दके बाद 'ताके मन आई यह बात' में 'ताके' का सम्बन्ध तभी बैठ सकता है जब बीचमें ६७१ वाँ छन्द हो।

इससे ऐसा मालूम होता है कि यह कोई मुक्तक काव्य होगा और उसमें कल्पनाके सहारे खड़े किये गए किसी प्रेमी-युगल (आशिक-माशूक) की नवरसयुक्त कथा लिखी होगी, जो एक हजार दोहा-चौपइयोंमें पूरी हुई थी। कल्पितको ही वे झूठ कहते जान पड़ते हैं। जिस चीजको उन्होंने रहने ही नहीं दिया, कहीं जिसका अस्तित्व ही नहीं है, उसके विषयमें अधिक और क्या बतलाया जा सकता है ?

'बनारसी'के नामकी कई अन्य रचनाएँ

इधर बनारसीके नामवाली कई रचनाएँ प्रकाशमें आई हैं जिनके विषयमें कहा जाता है कि वे इन्हीं बनारसीदासकी रची हुई हैं। यहाँ उनकी जाँच कर लेना आवश्यक मालूम होता है।

१—**मोहविवेकजुद्ध**[1]—यह दोहा और चौपाई छन्दोंमें हैं और सब मिलाकर इसमें ११० पद्य हैं। पहले इसके प्रारंभके तीन दोहोंपर विचार कीजिए—

> बपुमें बरणि बनारसी, विवेक मोहकी सैन।
> ताहि सुनत स्रोता सबै, मनमैं मानहिं चैन॥ १
> पूरब भए सुकवि मल्ल, लालदास गोपाल।
> मोह-विवेक किए सु तिन्ह, बाणी बचन रसाल॥ २
> तिनि तीनहु ग्रंथनि, महा सुलप सुलप सधि देख।
> सारभूत संछेप अब, साधि लेत हौं सेष॥ ३

अर्थात् मुझसे पहले सुकवि मल्ल, लालदास और गोपालने मोहविवेक (जुद्ध) बनाये हैं, उनको देखकर सारभूत संक्षेपमें इसे रचता हूँ।

१—पं० कस्तूरचन्दजी काशलीवालने लिखा है कि जयपुरके बड़े मन्दिरके शास्त्रमंडारमें इसकी पाँच प्रतियाँ हैं, तीन गुटकोंमें और दो स्वतंत्र। वीरवाणीके वर्ष ६ के अंक २३-२४ में श्रीअगरचन्दजी नाहटाने इसे पूरा प्रकाशित कर दिया है। वीर-पुस्तक-भंडार, मनिहारोंका रास्ता, जयपुरने इसे पुस्तकाकार भी निकाला है। मेरे पास भी इसकी एक अधूरी कापी (७७ पद्य) है, जो स्व० गुरूजी (पन्नालालजी बाकलीवाल)ने जयपुरसे ही नकल करके भेजी थी।

इन तींनमेंसे पहले सुकवि मल्ल हैं, जिनका 'प्रबोधचन्द्रोदय नाटक' जयपुरके किसी दिगम्बर भंडारमें है; जिसे देखकर श्री अगरचन्दजी नाहटाने उसका परिचय भेजनेकी कृपा की है। प्रतिमें प्रबोधचन्द्रोदयके साथ उसका दूसरा नाम 'मोह-विवेक' भी दिया है। मल्ल कविका प्रसिद्ध नाम मथुरादास और पिताप्रदत्त नाम देवीदास था। वे अन्तर्वेदके निवासी थे[1]। ग्रन्थमें सब मिलाकर ४६७ चौपाइयाँ हैं। यह कृष्णमिश्र यतिके संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदयके आधारसे लिखा गया है[2]। २५ पत्रोंका ग्रन्थ है। इसका रचनाकाल नाहटाजी संवत् १६०३ बतलाते हैं[3]।

संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय[4] नाटककी रचना बुन्देलखंडके चन्देलराजा कीर्तिवर्माके समय हुई थी और कहा जाता है कि वि० सं० ११२२ में यह उक्त राजाके समक्ष खेला भी गया था। इसके तीसरे अंकमें क्षपणक (जैनमुनि) नामक पात्रको बहुत ही निन्द्य और घृणित रूपमें चित्रित किया है। वह देखनेमें राक्षस जैसा है और श्रावकोंको उपदेश देता है कि तुम दूरसे चरण-वन्दना करो और यदि वह तुम्हारी स्त्रियोंके साथ अतिप्रसंग करे, तो तुम्हें ईर्ष्या न करनी चाहिए। फिर एक कापालिनी उससे चिपट जाती है जिसके आलिंगनको वह मोक्षसुख समझता है और फिर महा-भैरवके धर्ममें दीक्षित होकर कापालिनीकी जूठी शराब पीकर नाचता है[5]।

१—मथुरादास नाम बिस्तारयौ, देवीदास पिताको धारयौ।
अन्तर्वेद देसमैं रहै, तीजे नाम मल्ह कवि कहै॥ ८

२—कृष्णभट्ट करता है जहाँ, गंगासागर भेटे तहाँ।

३ - सोरहसै संवत जब लागा, तामहिं बरस एक अर्ध (?) भागा। अर्थात्
कातिक कृष्णपक्ष द्वादसी. ता दिन कथा जु मनमैं बसी॥

इसमें 'बदर्श' पाठ कुछ समझमें नहीं आया, और तब यह संवत् १६०३ कैसे हो गया?

४—निर्णयसागर प्रेस, बम्बईद्वारा प्रकाशित।

५—वादिचन्द्रसूरिने (जैन) ने शायद इन्हीं आक्षेपोंका बदला चुकानेके लिए 'ज्ञानसूर्योदय नाटक' संस्कृतमें लिखा है। मैंने इसका हिन्दी अनुवाद करके सन् १९१० के लगभग जैनग्रन्थरत्नाकर द्वारा प्रकाशित किया था।

दूसरे कवि हैं लालदास। ना० प्र० सभाकी खोज रिपोर्ट (१९०१) के अनुसार आगरेमें लालदास नामक कविने वि० सं० १७३४ में 'अवधविलास' नामका एक ग्रन्थ लिखा था। मोह-विवेक-जुद्ध भी इन्हींका लिखा हुआ होगा, जिसकी प्रति श्रीनाहटाजीके ग्रन्थसंग्रहमें है। उन्होंने इसका आद्यन्त्य अंश भेजा है—

आदि—सकल साधु गुरांके पग परौं, रामचरन हिरदैपर धरौं।
गुरु परमानंदकौं सिर नाऊं, निरमल बुद्धि दैहि गुन गाऊं॥

अन्त—लालदास परसादतैं, सफल भए सब काज।
विष्णुभक्ति आनंद बढ़्यौ, अति विवेककौ राज॥
तब लग जोगी जगतगुरु, जब लग रहै उदास।
सब जोगी आस्था..., जय गुरु जोगीदास॥

यह प्रति सं० १७६७ की लिखी हुई है, पर इसमें रचनाकाल नहीं दिया है। नाहटाजी लिखते हैं कि आगरानिवासी लालदासके 'इतिहास भाषा' का निर्माणकाल सं० १६४३ है; सो वे ही लालदास मोहविवेकजुद्धके कर्त्ता होंगे।

उनका समय कोई भी हो, पर वे किसी वैष्णव सम्प्रदायके हैं।

तीसरे कवि हैं गोपाल। गोपालदास व्रजवासी नामक कविकी दो रचनाओंका उल्लेख सभाकी खोज-रिपोर्ट (सन् १९०२) में किया गया है, एक 'मोह-विवेक' और दूसरी 'परिचय स्वामी दादूजी'। रागसागरोद्भवमें भी इनके पद मिलते हैं। उन्होंने 'मोह-विवेक' की रचना सं० १७०० में की थी। ये सन्त दादू दयालके अनुयायी थे[1]।

इस परिचयसे हम समझ सकते हैं कि ये तीनों ही कवि अजैन हैं और अद्वैतवादी, दादूपंथी, कृष्णभक्तिपंथी आदि हैं और जिस प्रबोधचन्द्रोदयको इन्होंने अपना आधार मानकर मोहविवेकजुद्ध लिखे हैं, वह जैनधर्मको बहुत ही घृणितरूपमें चित्रित करनेवाला है। तब क्या बनारसीदासजीको अपना 'मोह-

---

१—नाहटाजी लिखते हैं कि दादूपन्थी 'जन गोपाल' का समय खोज-विवरणमें १६५७ के लगभग बतलाया है और उनके रचे हुए 'मोह-विवेक' का उल्लेख 'दादू सम्प्रदायका संक्षिप्त इतिहास' के पृ० ७६ पर किया है। पर 'जन गोपाल' और 'गोपाल' दो पृथक् भी हो सकते हैं।

विवेकजुद्ध' लिखनेके लिए इनसे अच्छा आधार और नहीं मिल सकता था ! अवश्य ही मोहविवेक-जुद्धके कर्ता ये बनारसीदास कोई दूसरे ही हैं और उक्त कवियोंकी ही किसी परम्पराके हैं।

इसके विरुद्ध दो बातें कही जाती हैं, एक तो यह कि मोहविवेकजुद्धकी प्रतियाँ अनेक जैनभंडारोंमें पाई गई हैं और बीकानेरके खरतरगच्छीय बड़े भंडारके एक गुटकेमें बनारसीविलासके साथ यह भी लिखा हुआ है और दूसरी बात यह कि उसमें दो दोहे इस प्रकार हैं—

श्री **जिनभक्ति** सुदृढ जहां, सदैव मुनिवरसंग।
कहै क्रोध तहां मैं नहीं, लग्यौ सु आतमरंग॥ ५८
अबिभचारिणी जिनभगति, आतम अंग सहाय।
कहै काम ऐसी जहां, मेरी तहां न बसाय॥ ३२

इसके सिवाय अन्तमें 'बरनन करत बनारसी, समकित नाम सुभाय' पद पड़ा हुआ है।

परन्तु एक तो जब जैनभंडारोंमें सैकड़ों अजैन ग्रन्थ संग्रह किये गये हैं तब उनमें इसका भी संग्रह आश्चर्यजनक नहीं और दूसरे उक्त दोहोंके पाठोंमें हमें बहुत सन्देह है। प्रतिलिपि करनेवाले 'हरिभगति' की जगह 'जिनभगति' पाठ आसानीसे बना सकते हैं। जिनभक्तिको 'अव्यभिचारिणी' विशेषण किसी जैन रचनामें अब तक नहीं देखा गया। वह हरिभक्ति रामभक्तिके लिए ही प्रयुक्त होता है।

इसके सिवाय मोह, विवेक, काम, क्रोध आदि शब्दोंको देखकर ही तो इसपर जैनधर्मकी छाप नहीं लग सकती। ये शब्द तो प्रायः सभी धर्मों और सम्प्रदायोंमें समानरूपसे व्यवहृत हैं। इसका कर्त्ता जैन होता तो कहीं न कहीं क्रोध मान आदिको 'कषाय' कहता, विवेकको 'सम्यग्ज्ञान' कहता, पर इसमें कहीं भी किसी जैन पारिभाषिक शब्दका उपयोग नहीं किया गया है।

इसमें जो पौराणिक उदाहरण आये हैं वे भी विचारणीय हैं। काम कहता है—

महादेव मोहिनी नचायौ, घरमैं ही ब्रह्मा भरमायौ।
सुरपति ताकी गुरुकी नारी, और काम को सकै संहारी॥

सिंगी रिषिसे बनमहिं मारे, मोतैं कौन कौन नहि हारे।
मायामोह तजैं घरवास, मोतैं भागि जांहि बनवास।
कंद-मूल जे भछन कराहीं, तिनिहूकौं मैं छांड़ौं नाहीं ॥
इक जागत इक सोवत मारूं, जोगी जती तपी संघारूं ॥

महादेव और मोहिनी, इन्द्र और गुरुपत्नी अहल्या. ब्रह्मा और उनकी कन्या, शृंगी ऋषि और वन आदिकी कथाएँ जैन ग्रन्थोंमें इस रूपमें कहीं नहीं आतीं, कन्दमूल भक्षण करनेवाले जोगी जती तापस तो निश्चयसे यह बतलाते हैं कि इनका कर्त्ता जैन नहीं है।

लोभ कहता है—

देवी देवा लोभ कराहीं, बलिके बाँधे भूतल जाहीं।
मुए पितर माँगैं जु सराधा, माँगहि पिंड भूत आराधा ॥ ६६
सती अऊत जु पूजा मांगैं, जीवत क्यों छूटैं मो आगैं ॥
जोगी रिद्धिकाज सिध साधैं, संन्यासी सब ही आराधैं ॥ ६७
पंडित चारौं वेद बखानैं, जगु समझावै आपु न जानैं।
संत्य ब्रह्म झूठी सब माया, बाहुड़ि मन पूजामहि आया ॥ ६९

उक्त पंक्तियोंपर भी विचार करना चाहिए।

कविवर बनारसीदासजीकी रचनाओंके साथ इसकी कोई तुलना नहीं हो सकती। न तो इसकी भाषा ही ठीक है और न छन्द ही। इसे उनकी प्रारम्भिक रचना मानना भी उनके साथ अन्याय करना है।

२ नये पद—बनारसीविलासके प्रथम संस्करणमें मैंने तीन नये पदसंग्रह करके प्रकाशित किये थे और जयपुरके नये संस्करणमें उनके सम्पादकोंने दो और नये पद दिये हैं। परन्तु विचार करनेसे उक्त पाँचों ही पद किसी दूसरे 'बनारसी' के मालूम होते हैं और आश्चर्य नहीं जो वे मोहविवेकजुद्धके कर्त्ताके ही हों।

३ मांझा और **पद**—वीरवाणीके वर्ष ८, अंक १० में पं० कस्तूरचन्दजी कासलीवालने दीवान बधीचन्दजीके शास्त्रभण्डारके गुटकोंमें मिली हुई इस नामकी

१—ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।

दो कविताएँ प्रकाशित की हैं। 'मांझा' में १३ पद्य हैं। भाषा बड़ी ही ऊटपटांग और पंजाबीमिश्रित है। इसकी चौथी पंक्तिकी लम्बाई देखकर सन्देह होता है कि इसमें 'दास बनारसी' जबर्दस्ती ऊपरसे डाला गया है। पंक्ति यह है—'कहत दास बनारसी अलप सुख कारनै तैं नरभवबाजी हारी।' जब कि अन्य पंक्तियाँ इतनी लम्बी नहीं है। छठी पंक्ति है—"मानुषजनम अमोलक हीरा, हार गँवायौ खासा।' इसी वजनकी अन्य भी पंक्तियाँ हैं। 'पद' में कहा है—'जगत्‌मैं ऐसी रीति चली। चलतेस्यों गाड़ो कहै, सो ऐसी बात भली।' आदि। यह बहुत अशुद्ध छपा है और किसी सन्तका ही मालूम होता है। कबीरके 'चल्ती-सौं गाड़ी कहैं, नगद मालकौं खोया' का अनुकरण जान पड़ता है।

अप्राप्त रचनाएँ

डा० माताप्रसादजी गुप्तने अर्द्ध-कथाकी भूमिकामें कुछ रचनाओंके प्राप्त न होनेका संकेत किया है। वे लिखते हैं कि "नाममाला, बारह व्रतके कवित्त, अतीत व्यवहार कथन तथा 'आँखैं दोइ बिधि' के पाठ प्राप्त नहीं हैं।" (इनके उल्लेख अर्ध-कथानकमें हैं।) परन्तु इसमें उन्हें कुछ भ्रम हुआ है। इनमेंसे 'नाममाला' तो प्राप्त है और प्रकाशित हो चुकी है। 'बारह व्रतके कवित्त' का जो उल्लेख है, वह इस प्रकार है—

> नगर आगरे पहुंचे आइ, सब निज निज घर बैठे जाइ।
> बानारसी गयौ पौसाल, सुनी जती स्रावककी चाल॥ ५८६
> बारह ब्रतके किए कवित्त, अंगीकार किए धरि चित्त।
> चौदह नेम संभालै नित्त, लागे दोष करै प्राछित्त॥ ५८७

अर्थात् जात्रासे लौटकर सब लोग आगरे आ गये। बनारसीदास पौसाल या उपासरेमें गये और वहाँ यतियों और श्रावकोंका आचार धर्म सुना, उसमें बारह व्रतोंके (किसीके) बनाये हुए कवित्त सुने और उन्हें चित्त लगाकर अंगीकार किया। फिर चौदह नियमोंको पालने लगे। यदि उनमें कहीं कोई दोष लगता था तो उसका प्रायश्चित्त करते थे। अर्थात् हमारी समझमें उन्होने बारह व्रतोंके कोई कवित्त स्वयं नहीं बनाये, किसीके बनाये हुए सुने और उन व्रतोंको धारण किया। आगेकी 'चौदह नेम' आदि पंक्तिका सम्बन्ध भी इससे ठीक बैठ जाता है।

इसी तरह 'अतीतव्यवहारकथन' नामकी भी कोई अलग रचना नहीं है। अर्द्धकथाकी वह पंक्ति इस प्रकार है—

कीनैं अध्यातमके गीत, बहुत कथन विवहार अतीत।
सिवमंदिर इत्यादिक और, कवित अनेक किए तिस ठौर॥ ५९७

अर्थात् ग्यान पचीसी, ध्यान बत्तीसी आदिके बाद अध्यातमके गीत बनाये, जिनमें अधिकांश कथन व्यवहारसे अतीत हैं, अर्थात् निश्चय दृष्टिसे है।

हमारी समझमें बनारसीविलासकी 'अध्यात्मपदपंक्ति' ही अध्यातमके गीत हैं और उन गीतोंमें अधिकांश कथन व्यवहारसे अतीत अर्थात् निश्चय नयसे है।

आगे कहा है—

बरनी आंखैं दोइ बिधि, करी बचनिका दोइ।
अष्टक गीत बहुत किए, कहौं कहांलौं सोइ॥ ६२८

यहाँ 'आंखैं दोइ बिधि' नामकी रचनाका जो संकेत है वह उक्त अध्यात्म-पदपंक्तिके १८ वें और १९ वें पद (राग गौरी) के लिए है और इस नामकी कोई अन्य रचना नहीं है। १८ वें की कुछ पंक्तियाँ ये हैं—

भादू भाई, समुझ सबद यह मेरा
जो तू देखै इन आंखिनसौं, तामैं कछू न तेरा॥ १
ए आंखैं भ्रमहीसौं उपजीं, भ्रमहीके रस पागी।
जहं जहं भ्रम तहं तहं इनकौ श्रम, तू इनहीकौ रागी॥ २
खुले पलक ए कछु इक देखैं, मुंदे पलक नहि सोऊ।
कबहू जांहि हौंहि फिर कबहूं, भ्रामक आंखैं दोऊ॥ ६

और १९ वें की कुछ पंक्तियाँ ये हैं—

भौंदू भाई, ते हिरदेकी आंखैं।
जे करखैं अपनी सुख संपति, भ्रमकी संपति नाखैं॥ १
जे आंखैं अंम्रत रस बरखैं, परखैं केवलिबानी।
जिन आंखिन बिलोकि परमारथ, हौंहि कृतारथ प्रानी॥ ८

अर्थात् अर्ध-कथानकमें जो 'आंखैं दोइ बिधि' के रचनेका उल्लेख है वह इन्हीं दो पदोंके उद्देश्यसे है।

इसी अध्यात्मपदपंक्तिका १० वाँ गीत 'राग वरवा' या बरवा छंद है, जिसका उल्लेख अर्द्ध-कथामें न होनेसे डा० गुप्तने यह कल्पना की है कि "यह असंभव नहीं कि 'बारह' 'बारद' या 'वरवा' का ही विकृत पाठ हो।" अर्थात् 'बारह व्रतके किए कवित्त' से मतलब 'बरवा छंद' ही हो।

हमारा विश्वास है कि बनारसीविलासका जो संग्रह दीवान जगजीवनने किया है उसमें बनारसीदासजीकी सभी रचनाएँ आगई हैं और यह संग्रह उनकी मृत्युके २५ दिन बाद ही कर लिया गया था। जगजीवन बनारसीदासजीकी अध्यातम-सैलीके ही एक प्रतिष्ठित सभ्य थे और आगरेमें ही रहते थे। मृत्युके कुछ ही समय पहले सं० १७०० की 'कर्मप्रकृतिविधान' रचना भी उन्होंने इसमें शामिल कर ली है जिसका उल्लेख अर्धकथानकमें भी नहीं है। क्योंकि अर्ध-कथानक उससे पहले ही सं० १६९८ में लिखा जा चुका था और उसमें कविवरने अपनी सारी रचनाओंके समयक्रमसे कि वे कब कब रची गईं नाम दे दिये हैं और वे सभी बनारसीविलासमें संग्रह हो गई हैं।

अर्ध-कथानककी तिथियाँ

डा० माताप्रासादजी गुप्तने अर्ध-कथानकमें आई हुई चार तिथियोंकी जाच की है कि वे शुद्ध हैं या नहीं—

१ खरगसेनकी जन्मतिथि – श्रावण सुदी ५, रविवार, वि० सं० १६०८।

२ बनारसीदासकी जन्मतिथि—माघसुदी ११, रविवार, सं० १६४३, तृतीय चरण रोहिणी तथा वृषके चन्द्रमा।

३ नरोत्तमदासके साझेकी समाप्ति—वैशाख सुदी ७, सोमवार, सं० १६७३।

४ अर्घ-कथानककी रचनातिथि —अगहन सुदी ५, सोमवार, सं० १६९८।

वे लिखते हैं कि गतवर्ष-प्रणालीपर गणना करनेसे प्रथमके लिए दिन बुधवार, दूसरेके लिए मंगलवार, तीसरेके लिए शनिवार और चौथेके लिए पुनः शनिवार

१—"एकादसी बार रविनंद, नखत रोहिनी वृषकौ चंद।"

यह पाठ सब प्रतियोंमें है, केवल ब प्रतिमें 'एकादसी रविवार सुनन्द' पाठ है और शायद इसी प्रतिके आधारसे डा० सा० द्वारा सम्पादित 'अर्द्ध-कथा' का पाठ छपा है। रविनन्द=सूर्यपुत्रका अर्थ शनिवार होता है, रविवार नहीं। ब प्रतिकेके पाठका 'सुनन्द' निरर्थक भी पड़ता है।

आते हैं। वर्तमान वर्षप्रणालीपर करनेसे प्रथमके लिए शुक्रवार, दूसरेके लिए बृहस्पतिवार तीसरेके लिए सोमवार और चौथेके लिए रविवार आते हैं। अर्थात् गतवर्षप्रणालीपर कोई तिथि शुद्ध नहीं उतरती और वर्तमान वर्ष-प्रणालीपर केवल तीसरी शुद्ध उतरती है। दूसरी तिथिका शेष विस्तार भी ठीक नहीं उतरता। दोनों प्रणालियोंपर नक्षत्र मृगशिरा आता है।

इसी तरह सूक्तमुक्तावली, ज्ञानबावनी और कर्मप्रकृतिकी तिथियाँ भी जाँच करनेपर ठीक नहीं उतरीं। इसपर डा० सा० लिखते हैं "अर्द्ध-कथाकी ही भाँति शेष कृतियोंका सम्पादन प्रायः एकाध प्रतिके ही आधारपर किया गया है और कदाचित् उनके लिपिकारोंने भी प्रतिलिपियाँ यथेष्ट सावधानीके साथ नहीं की हैं।" परन्तु हमने पाँच प्रतिलिपियोंके आधारसे अर्द्ध-कथानकके पाठ ठीक किये हैं, और उनमें केवल एक ही स्थल ऐसा है जिसमें रविकी जगह शनि होना चाहिए, परन्तु शनिसे भी गणना ठीक नहीं उतरती।

हमारी गणित-ज्योतिषमें कोई गति नहीं है, इसलिए हम इस जाँचकी कोई जाँच नहीं कर सकते; परन्तु यह माननेको भी जी नहीं चाहता कि कविने अपनी रचनाओंमें जो तिथि, नक्षत्र, वार, दिये हैं वे भी ठीक नहीं दिये होंगे जब कि वे स्वयं भी ज्योतिष पढ़े थे। हम आशा करते हैं कि इस विषयके जानकार परिश्रम करके इसपर विशेष प्रकाश डालनेकी कृपा करेंगे।

किंवदन्तियाँ

बनारसीविलासके प्रारम्भमें (सन् १९०५) मैंने बनारसीदासजीका विस्तृतजीवन-चरित लिखा था और उसके अन्तमें कुछ भक्तों और भावुक जनोंसे सुन-सुनाकर उनके सम्बन्धकी नीचे लिखी सात किंवदन्तियाँ या जनश्रुतियाँ संग्रह कर दी थीं—

१ शाहजहाँके साथ शतरंज खेलना और उनके बुलानेपर एक दिन, मस्तक न झुकाना पड़े इस खयालसे, छोटे दरवाजेसे पैर आगे करके उनकी बैठकमें पहुँचना।

२ जहाँगीरको सलाम करनेके लिए कहनेपर 'ग्यानी पातशाह ताको मेरी तसलीम है' आदि कवित्त पढ़कर सुनाना।

३ एक सिपाहीसे तमाचे खाकर भी उसकी सिफारिश करके बादशाहसे तनख्वाह बढ़वा देना।

४ बाबा शीतलदास नामक संन्यासीको बारबार नाम पूछकर चिढ़ाना और और उन्हें ज्वालाप्रसाद कहना।

५ दो दिगम्बर मुनियोंको बारबार उँगली दिखाकर अशान्त करना और इस तरह उनकी परीक्षा करना।

६ गोस्वामी तुलसीदासका अपने शिष्योंके साथ आगरे आना, कविवरसे मिलकर अपना रामचरितमानस (रामायण) भेट करना और इसके बाद बनारसीदासका 'विराजै रामायण घटमाहिं' आदि पद रचकर सुनाना।

७ देहावसानके समय कण्ठ अवरुद्ध हो जानेपर कविवरका 'चले बनारसी-दास फेर नहिं आवना' आदि लिखकर लोगोंके इस भ्रमको निवारण करना कि उनका मन मायामें अटक रहा है।

इस तरहकी अनेक किंवदन्तियाँ थोड़ेसे हेरफेरके साथ अन्य सन्त महात्मा-ओंके सम्बन्धमें भी लिखीं और सुनी गई हैं परन्तु चूँकि बनारसीदासजीने अपनी अत्मकथामें इनका कोई उल्लेख तो क्या संकेत भी नहीं किया है। उल्लेख न करनेका कोई कारण भी नहीं मालूम होता, इसलिए इनके सच होनेमें बहुत सन्देह है। पहले खयाल था कि आत्मकथा लिखनेके बाद वे बहुत समय तक जीवित रहे होंगे और इसलिए ये घटनाएँ उसके बाद घटित हुई होंगी। परन्तु अब तो यह निश्चय हो चुका है कि वे उसके बाद लगभग दो वर्ष ही जिये हैं और इस थोड़ेसे समयमें इन सातों घटनाओंको मान लेनेमें संकोच होता है।

यदि गोस्वामी तुलसीदाससे साक्षात् होनेकी बात सच होती तो उसका उल्लेख अर्धकथानकमें अवश्य होता। क्योंकि तुलसीदासका देहोत्सर्ग वि० सं० १६८० में हुआ था और अर्धकथानक १६९८ में लिखा गया है। इसी तरह जहाँगीरकी मृत्यु भी १६८४ में हो चुकी थी। 'ग्यानी पातशाह' वाला कवित्त नाटकसमयसार (चतुर्दश गुणस्थानाधिकार पद्य ११५) में है और यह ग्रन्थ १६९३ में पूर्ण हुआ था।

कुछ समय पहले जयपुरके स्व० पं० हरिनारायण शर्मा बी० ए० ने सन्त सुन्दरदासजीकी तमाम रचनाओंका 'सुन्दर-ग्रन्थावली' नामक बहुत ही सुसम्पादित संग्रह दो जिल्दोंमें प्रकाशित किया था। उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिकामें एक जगह लिखा है कि "प्रसिद्ध जैनकवि बनारसीदासजीके साथ सुन्दरदासजीकी मैत्री थी। सुन्दरदासजी जब आगरे गये तब बनारसीदासजी सुन्दरदासजीकी योग्यता,

कविता और यौगिक चमत्कारोंसे मुग्ध हो गये थे ! तब ही उतनी श्लाघा मुक्त-कंठसे उन्होंने की थी। परन्तु वैसे ही त्यागी और मेधावी बनारसीदासजी भी तो थे। उनके गुणोंसे सुन्दरदासजी प्रभावित हो गये, तब ही वैसी अच्छी प्रशंसा उन्होंने भी की थी।... . नाटकसमयसारमें जो 'कीच सौ कनक जाके' पद्य है, उसे बनारसीदासजीने सुन्दरदासजीको भेजा था और सुन्दरदासजीने उसके उत्तरमें दो छन्द भेजे थे 'धूल जैसो धन जाके' और 'कामहीन क्रोध जाके' तथा

---

१ – कीचसौ कनक जाकै नीचसौ नरेसपद,
मीचसी मिताई गरुवाई जाकै गारसी।
जहरसी जोगजाति कहरसी करामाति,
हहरसी हौंस पुदगलछबि छारसी॥
जालसौ जगविलास भालसौ भवनवास,
कालसौ कुटंबकाज लोकलाज लारसी।
सीठसौ सुजसु जानै बीठसौ बखत मानै.
ऐसी जाकी रीति ताहि बन्दत बनारसी॥—बन्धद्वार १९

२ धूलि जैसौ धन जाकै सूलिसौ संसार सुख,
भूलि जैसौ भाग देखै अंतकीसी यारी है।
पास जैसी प्रभुताई साँप जैसौ सनमान,
बड़ाई हू बीछनीसी नागिनीसी नारी है॥
अग्नि जैसौ इन्द्रलोक विघ्न जैसौ बिधिलोक,
कीरति कलंक जैसी सिद्धि सींटि डारी है।
वासना न कोऊ बाकी ऐसी मति सदा जाकी,
सुन्दर कहत ताहि बन्दना हमारी है॥ १५

३—कामहीन क्रोध जाकै लोभहीन मोह ताकै,
मदहीन मच्छर न कोउ न बिकारौ है।
दुखहीन सुख मानै पापहीन पुन्य जानै,
हरख न सोक आनै देहहीतैं न्यारौ है॥
निंदा न प्रसंसा करै रागहीन दोष धरै,
लैंनहीन दैंन जाकै कछु न पसारौ है।
सुन्दर कहत ताकी अगम अगाध गति,
ऐसौ कोऊ साध सु तौ रामजीकौ प्यारौ है॥
—साधुको अंग पृ० ४९४

'प्रीतिसी न पाती कोऊ'। कोई कहते हैं पहले सुन्दरदासजीने पिछला छन्द भेजा था। कुछ हो इनका आपसमें प्रेम था और दोनोंकी काव्यरचनामें शब्द, वाक्य और विचारोंका साम्य स्पष्ट है। ये दोनों महात्मा आगरे कब मिले इसका पता नहीं है। हमको महन्त गंगारामजीसे तथा झुंझणूके श्रीमाल सेठ अमोलक-चन्दजीसे यह कथा ज्ञात हुई थी।" इस किंवदन्तीमें जिन पद्योंको एक दूसरेके पास भेजनेके लिए कहा गया है, उन पद्योंसे तो ऐसी कोई बात ध्वनित नहीं होती, जिससे उसे सच माननेकी प्रवृत्ति हो सके। इस तरहके तो अनेक पद्य अनेक कवियोंकी रचनाओंमें मिलते हैं, परन्तु उससे यह नहीं माना जा सकता कि रचयिताओंने उन्हें एक दूसरेके पास भेजनेके उद्देश्यसे लिखा था। ये तीनों चारों पद्य जिन ग्रन्थोंके हैं उनमें वे अपने अपने स्थानपर सर्वथा उपयुक्त और प्रकरणके अनुकूल हैं, वहाँसे वे हटाये नहीं जा सकते।

सन्त सुन्दरदासजीका जन्म-काल वि० सं० १६५३ और मृत्यु-काल १७४६ है और ग्रन्थरचना-काल १६६४ से १७४२ तक माना जाता है, इसलिए बनारसी-दासजीसे उनकी मुलाकात होना सम्भव तो है परन्तु जब तक कोई और प्रमाण न मिले तब तक इसे एक किंवदन्तीसे अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता।

नाथूराम प्रेमी

१— प्रीतिसी न पाती कोऊ प्रेमसे न फूल और,
चित्तसौ न चंदन सनेहसौ न सेहरा।
हृदैसौ न आसन सहजसौ न सिंघासन;
भावसी न सौंज और सून्यसौ न गेहरा॥
सीलसौ सनान नाहिं ध्यानसौ न धूप और,
ग्यानसौ न दीपक अग्यान तमकेहरा।
मनसी न माला कोऊ सोहंसौ न जाप और,
आतमासौ देव नाहिं देहसौ न देहरा॥ १७
—सांख्यको अंग पृ० ५९६
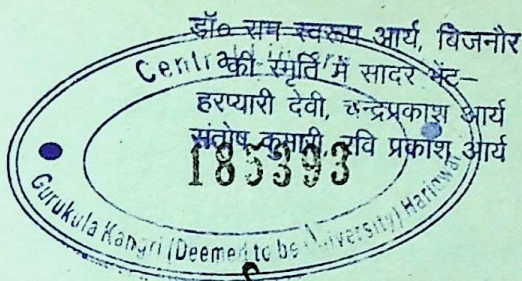
अर्ध-कथानक

श्रीपरमात्मने नमः। अथ बनारसीदासकृत अर्ध-कथानक लिख्यते[1]

दोहरा

पानि-जुगुल-पुट सीस धरि, मानि अपनपौ दास।
आनि भगति चित जानि प्रभु, बंदौं पास-सुपास॥ १॥

सवैया इकतीसा, बनारसी नगरीकी सिफथ[2]

गंगमांहि आइ धसी द्वै नदी बरुना असी,
बीच बसी बँनारसी नगरी बखानी है।
कसिवार देस मध्य गांउ तातैं कासी नांउ,
श्रीसुपास-पासकी जनमभूमि मानी है॥
तहां दुहू जिन सिवमारग प्रगट कीनौ,
तबसेती सिवपुरी जगतमैं जानी है।
ऐसी बिधि नाम थपे नगरी बनारसीके,
और भांति कहै सो तौ मिथ्यामत-बानी है॥ २॥

---

१ ड द ओंनमः सिद्धेभ्यः। श्री जिनाय नमः। अथ बनारसी अवस्था लिख्यते।
२ ड निरुक्ति कथन। ३ ड बारानसी।

दोहरा

जिन पहिरी जिन-जनमपुर-नाम-मुद्रिका-छाप ।
सो बनारसी निज कथा, कहै आपसौं आप ॥ ३ ॥

चौपाई

जैनधर्म श्रीमाल सुबंस । बानारसी नाम नरहंस ।
तिन मनमांहि बिचारी बात । कहौं आपनी कथा विख्यात ॥ ४ ॥
जैसी सुनी बिलोकी नैन । तैसी कछु कहौं मुख-बैन ॥
कहौं अतीत-दोष-गुणवाद । बरतमानताईं मरजाद ॥ ५ ॥
भावी दसा होइगी जथा । ग्यानी जानै तिसकी कथा ॥
तातैं भई-बात मन आनि । थूलरूप कछु कहौं बखानि ॥ ६ ॥
मध्यदेसकी बोली बोलि । गर्भित बात कहौं हिय खोलि ॥
भाखूं पूरब-दसा-चरित्र । सुनहु कान धरि मेरे मित्र ॥ ७ ॥

दोहरा

याही भरत सुखेतमैं, मध्यदेस सुभ ठांउ ।
बसै नगर रोहतगपुर, निकट बिहोली-गांउ ॥ ८ ॥
गांउ बिहोलीमैं बसै, राजबंस रजपूत ।
ते गुरु-मुख जैनी भए, त्यागि करम अदभूत ॥ ९ ॥
पहिरी माला मंत्रकी, पायौ कुल श्रीमाल ।
थाप्यौ गोत बिहोलिआ, बीहोली-रखपाल ॥ १० ॥
भई बहुत बंसावली, कहौं कहाँ लौं सोइ ।
प्रगटे पुर रोहतगमैं, गांगों गोसल दोइ ॥ ११ ॥
तिनके कुल बस्ता भयौ, जाकौ जस परगास ।
बस्तपालके जेठमल, जेठूके जिनदास ॥ १२ ॥

---

१ ड रुहतग्गपुर । २ ड गुरमुख । ३ अ अघभूत । ४ ब स ई गोसल गांगो ।

मूलदास जिनदासके, भयौ पुत्र परधान ।
पढ़यौ हिंदुगी पारसी, भागवान बलवान ॥ १३ ॥

मूलदास बीहोलिआ, बनिक वृत्तिके भेस ।
मोदी ह्वै[1] कै मुगलकौ, आयौ[2] मालवदेस ॥ १४ ॥

चौपई

मालवदेस परम सुखधाम । नरवर नाम नगर अभिराम ।
तहां मुगल पाई जागीर । साहि हिमाऊंकौ बरै[3] बीर ॥ १५ ॥
मूलदाससौं बहुत कृपाल । करै उचापति सौंपै माल ।
संबत सोलहसै जब जान । आठ बरस अधिके परबान ॥१६॥
सावन सित पंचमि[4] रबिबार । मूलदास-घर सुत अवतार ।
भयौ हरख खरचे बहु दाम । खरगसेन दीनौं यहु नाम ॥ १७
सुखसौं बरस दोइ चलि गए । घनमल नाम और सुत भए ।
बरस तीन जब बीते और । घनमल काल कियौ तिस ठौर ॥ १८

दोहरा

घनमल घन-दल उड़ि गए, काल-पवन-संजोग ।
मात-तात तरुवर तए, लहि आतप सुत-सोग ॥ १९

चौपई

लघु-सुत-सोक कियौ असराल । मूलदास भी कीनौं काल ॥
तेरहोत्तरे संबत बीच । पिता-पुत्रकौं आई मीच ॥ २०

---

१ ई हैकर । २ ड आया । ३ अ प्रतिके हासियेपर इस शब्दका अर्थ 'उमराव' दिया है । ४ ब पांचैं ।

खरगसेन सुत माता साथ । सोक-बिआकुल भए अनाथ ॥
मुगल गयौ थो[1] काहू गांउ । यह सब बात सुनी तिस ठांउ॥ २१

दोहरा

आयौ मुगल उतावलो, सुनि मूलाकौ काल ।
मुहर-छाप घर[2] खालसै, कीनौ लीनौ माल ॥ २२
माता पुत्र भए दुखी, कीनौ बहुत कलेस ।
ज्यौं त्यौं करि दुख देखते, आए पूरब देस ॥ २३

चौपई

पूरबदेस जौनपुर गांउ । बसै गोमती-तीर सुठांउ ।
तहां गोमती इहि बिध बहै। ज्यौं देखी त्यौं कविजन कहै ॥ २४

दोहरा

प्रथम हि दक्खनसुख[3] बही, पूरब मुख परबाह ।
बहुरों[4] उत्तरमुख बही, गोवै[5] नदी अथाह ॥ २५

गोवै नदी त्रिविधिमुख बही । तट रवनीक[6] सुविस्तर मही ।
कुल पठान जौनासह नांउ । तिन तहां आइ बसायो गांउ ॥२६
कुतबा पढ़्यौ छत्र सिर तानि । बैठि तखत फेरी निज आनि ।
तब तिन तखत जौनपुर नांउ। दीनौ भयौ अचल सो गांउ ॥ २७
चारौं बरन बसैं तिस बीच । बसहिं छतीस पौंनि कुल नीच ।
बांभन छत्री बैस अपार । सूद्र भेद छत्तीस प्रकार ॥ २८

छत्तीस पौंन कथन । सवैया इकतीसा

सीसगर, दरजी, तंबोली, रंगबाल, ग्वाल,
बाढ़ई, संगतरास, तेली, धोबी, धुनियां ।

---

१ ब स ई हो । २ स कर । ३ ड दछिन, अ दक्षिन । ४ ब फिरकर, ई फिरकै । ५ अ गोवइ । ६ ब रमनीक, ई रमणीक ।

कंदोई, कहार, काछी, कलाल, कुलाल, माली,
कुंदीगर, कागदी, किसान, पटवुनियां ॥
चितेरा, बिंधेरा, बारी, लखेरा, ठठेरा, राज,
पटुवा, छे्परबंध, नाई, भार-भुनियां ।
सुनार, लुहार, सिकलीगर, हवाईगर,
धींवर, चमार एई छत्तीस पँउनियां ॥ २९

चौपई

नगर जौनपुर भूमि सुचंग । मठ मंडप प्रासाद उतंग ।
सोभित सपतखने गृह घने । सघन पताका तंबू तने ॥ ३०
जहां बावन सराइ पुरकने । आसपास बावन परगने ।
नगरमाहिं बावन बाजार । अरु बावन मंडई उदार ॥ ३१
अनुक्रम भए तहां नव साहि । तिनके नांउ कहौं निरबाहि ।
प्रथम साहि जौनासह जानि । दुतिय बवक्करसाहि बखानि ॥ ३२
त्रितिय भयौ सुरहर सुलतान । चौथा दोस महम्मद जान ॥
पंचम भूपति साहि निजाम । छट्टम साहि बिराहिम नाम ॥ ३३
सत्तम साहिब साहि हुसैन । अट्ठम गाजी सँज्जित सैन ॥
नवम साहि बख्या सुलतान । बरती जाँसु अखंडित आन ॥ ३४ ॥
ए नव साहि भए तिस ठांउ । यातैं तखत जौनपुर नांउ ॥
पूरब दिसि पटनालौं आन । पंच्छिम हद्द इटावा थान ॥ ३५ ॥

---

१ स छपरबंद । २ अ धीमर । ३ जायसीने पदमावतमें गोहन पउनियोंके ३६ कुलोंका संकेत किया है । ४ स साजत । ५ ई ताहि । ६ अ पश्चिम ।

दक्खन[1] विंध्याचल सरहद्द । उत्तर परमित घाघर नद्द ॥
इतनी भूमि राज[2] विख्यात । बरिस तीनिसैकी यहु बात ॥ ३६ ॥
हुते पुब्ब पुरखा परधान । तिनके बचन सुने हम कान ॥
बरनी कथा जथास्रुत जेम । मृषा-दोष नहिं लागै एम ॥ ३७ ॥

· यह सब बरनन पाछिलौ, भयौ सुकाल बितीत ।
सोरहसै तेरै अधिक, समै कथा सुनु मीत ॥ ३८ ॥
नगर जौनपुरमैं बसै, मदनसिंघ श्रीमाल ।
जैनी गोत चिनालिया, बनजै हीरा-लाल ॥ ३९ ॥
मदन जौंहरीकौ सदनु, ढूंढ़त बूझत लोग ।
खरगसेन मातासहित, आए करम-संजोग ॥ ४० ॥
छजमलै[3] नाना सेनकौ[4], ताकौ अग्रँज[5] एह ।
दीनौ आदर अधिक तिन[6], कीनौ अधिक सनेह ॥ ४१ ॥

चौपई

मदन कहै पुत्री सुनु एम । तुमहिं अवस्था व्यापी केम ॥
कहै सुता पूरब बिरतंत । एहि बिधि मुए पुत्र अर कंत ॥ ४२ ॥
सरबस लूटि लियो ज्यौं मीर । सो सब बात कही धरि धीर ॥
कहै मदन पुत्रीसौं रोइ । एक पुत्रसौं सब किछु होइ ॥ ४३ ॥
पुत्री सोच न करु मनमांह । सुख-दुख दोऊ फिरती छांह ॥
सुता दोहिता कंठ लगाइ । लिए बस्त्र भूखन पहिराइ ॥ ४४ ॥
सुखसौं रहहि न ब्यापै काल । जैसा घर तैसी ननसाल ॥
बरिस तीनि बीते इह भांति । दिन दिन प्रीति रीति सुख सांति ॥४५

१ अ ड दच्छिन । २ स राजु । ३ अ छजमल । ४ अ प्रतिके हासियेमें इस शब्दका अर्थ 'खरगसेन' लिखा है । ५ अ ड भाई । ६ ई तिस ।

आठ बरसकौ बालक भयौ । तब चटसाल पढ़नकौं गयौ ॥
पढ़ि चटसाल भयौ बितपन्न[1] । परखै रजत-टका-सोवन्न ॥ ४६ ॥
गेह उचापति लिखै बनाइ । अत्तो जमा कहै समुझाइ ॥
लेना देना बिधिसौं लिखै । बैठै हाट सराफी सिखै ॥ ४७ ॥
बरिस च्यारि जब बीते और । तब सु करै उद्दमकी[2] दौर ॥
पूरब दिसि बंगाला थान । सुलेमान सुलतान पठान ॥ ४८ ॥
ताकौ साला लोदी खान । सो तिन राख्यौ पुत्र समान ॥
सिरीमाल ताकौ दीवान । नांउ राइ धंना जग जान ॥ ४९ ॥
सींघड़ गोत्र बंगाले बसै । सेवैं सिरीमाल पांचसै[3] ॥
पोतदार कीए तिन सर्व । भाग्य-संजोग[4] कमावहिं दर्व ॥ ५० ॥
करै बिसास[5] न लेखा लेइ । सबकौं फारकती लिखि देइ ॥
पोसह-पड़िकौंनासौं पेम । नौतन गेह करनकौ नेम ॥ ५१ ॥

दोहरा

खरगसेन बीहोलिया, सुनी राइकी बात ।
निज मातासौं मंत्र करि, चले निकसि परभात ॥ ५२ ॥
माता किछु खरची दई, नाना जानै नांहि ।
ले घोरा असवार होइ, गए राइजी पांहि ॥ ५३ ॥
जाइ राइजीकौं मिल्यौ, कह्यौ सकल बिरतंत ।
करी दिलासा बहुत तिन, धरी बात उर अंत ॥ ५४ ॥
एक दिवस काहू सभै, मनमैं सोचि बिचारि ।
खरगसेनकौं रायनैं, दिए परगने च्यारि ॥ ५५ ॥

---

१ अ व्युतपन्न । २ अ उदम, ब ड उद्दिम । ३ अ पंचसै । ४ स भाग्यपयोग, ड भागपयोग । ५ ब कर बिस्वास ।

दक्खन[1] बिंध्याचल सरहद्द । उत्तर परमित घाघर नद्द ॥
इतनी भूमि राज[2] विख्यात । बरिस तीनिसैकी यहु बात ॥ ३६ ॥
हुते पुब्ब पुरखा परधान । तिनके बचन सुने हम कान ॥
बरनी कथा जथाम्रुत जेम । मृषा-दोष नहिं लागै एम ॥ ३७ ॥

यह सब बरनन पाछिलौ, भयौ सुकाल बितीत ।
सोरहसै तेरै अधिक, समै कथा सुनु मीत ॥ ३८ ॥
नगर जौनपुरमैं बसै, मदनसिंघ श्रीमाल ।
जैनी गोत चिनालिया, बनजै हीरा-लाल ॥ ३९ ॥
मदन जौंहरीकौ सदनु, ढूंढ़त बूझत लोग ।
खरगसेन मातासहित, आए करम-संजोग ॥ ४० ॥
छजमलै[3] नाना सेनँकौ[4], ताकौ अग्रंज[5] एह ।
दीनौ आदर अधिक तिन[6], कीनौ अधिक सनेह ॥ ४१ ॥

चौपई

मदन कहै पुत्री सुनु एम । तुमहिं अवस्था व्यापी केम ॥
कहै सुता पूरब बिरतंत । एहि बिधि मुए पुत्र अर कंत ॥ ४२ ॥
सरबस लूटि लियो ज्यौं मीर । सो सब बात कही धरि धीर ॥
कहै मदन पुत्रीसौं रोइ । एक पुत्रसौं सब किछु होइ ॥ ४३ ॥
पुत्री सोच न करु मनमांह । सुख-दुख दोऊ फिरती छांह ॥
सुता दोहिता कंठ लगाइ । लिए बस्त्र भूखन पहिराइ ॥ ४४ ॥
सुखसौं रहहि न ब्यापै काल । जैसा घर तैसी ननसाल ॥
बरिस तीनि बीते इह भांति । दिन दिन प्रीति रीति सुख सांति ॥४५

१ अ ड दच्छिन। २ स राजु। ३ अ ब्रजमल। ४ अ प्रतिके हासियेमें इस शब्दका अर्थ 'खरगसेन' लिखा है। ५ अ ड भाई। ६ ई तिस।

आठ बरसकौ बालक भयौ । तब चटसाल पढ़नकौं गयौ ॥
पढ़ि चटसाल भयौ बितपन्न[1] । परखै रजत-टका-सोवन्न ॥ ४६ ॥
गेह उचापति लिखै बनाइ । अत्तो जमा कहै समुझाइ ॥
लेना देना बिधिसौं लिखै । बैठै हाट सराफी सिखै ॥ ४७ ॥
बरिस च्यारि जब बीते और । तब सु करै उद्दम[2]की दौर ॥
पूरब दिसि बंगाला थान । सुलेमान सुलतान पठान ॥ ४८ ॥
ताकौ साला लोदी खान । सो तिन राख्यौ पुत्र समान ॥
सिरीमाल ताकौ दीवान । नांउ राइ धंना जग जान ॥ ४९ ॥
सींघड़ गोत्र बंगाले बसै । सेवैं सिरीमाल पांचसै[3] ॥
पोतदार कीए तिन सर्व । भौग्य-संजोग[4] कमावहिं दर्व ॥ ५० ॥
करै[5] बिसास न लेखा लेइ । सबकौं फारकती लिखि देइ ॥
पोसह-पड़िकौंनासौं पेम । नौतन गेह करनकौ नेम ॥ ५१ ॥

दोहरा

खरगसेन वीहोलिया, सुनी राइकी बात ।
निज मातासौं मंत्र करि, चले निकसि परभात ॥ ५२ ॥
माता किछु खरची दई, नाना जानै नांहि ।
ले घोरा असवार होइ, गए राइजी पांहि ॥ ५३ ॥
जाइ राइजीकौं मिल्यौ, कह्यौ सकल बिरतंत ।
करी दिलासा बहुत तिन, धरी बात उर अंत ॥ ५४ ॥
एक दिवस काहू सभै, मनमैं सोचि बिचारि ।
खरगसेनकौं रायनैं, दिए परगने च्यारि ॥ ५५ ॥

---

१ अ व्युतपन्न । २ अ उदम, ब ड उद्दिम । ३ अ पंचसै । ४ स भाग्यपयोग, ड भागपयोग । ५ ब कर बिस्वास ।

चौपई

पोतदार कीनौं निज सोइ, दीनै साथि कारकुन दोइ ।
जाइ परगनें कीनौं काम, करहि अमल तहसीलहि दाम ॥ ५६ ॥
जोरि खजाना भेजहि तहां, राइ तथा लोदीखां जहां ॥
इहि बिधि वीते मास छ सात, चले समेतसिखरिकी जात ॥ ५७ ॥

दोहरा

संघ चलायौ रायजी, दियौ हुकम सुलतान ।
उहां जाइ पूजा करी, फिरि आए निज थान ॥ ५८ ॥
आइ राइ पट-भौनमैं, बैठे संध्याकाल ।
बिधिसौं सामाइक करी, लीनौं कर जपमाल ॥ ५९ ॥
चौबिहार करि मौन धरि, जपै पंच नवकार ।
उपजी सूल उदरविषैं, हूओ हाहाकार ॥ ६० ॥
कही न मुखसौं बात किछु, लही मृत्यु ततकाल ।
गही और थिति जाइ तिनि, ढही देह-दीवाल ॥ ६१ ॥

सवैया तेईसा

पुंन संजोग जुरे रथ पाइक, माते मतंग तुरंग तबेले ।
मानि बिभौ अंगयौ सिर भार, कियौ बिसतार परिग्रह ले ले ॥
बंध बढ़ाइ करी थिति पूरन, अंत चले उठि आपु अकेले ।
हारे हमालकी पोटसी डारि कै, और दिवालकी ओट हो खेले ॥ ६२ ॥

चौपई

एहि बिधि राइ अचानक मुआ । गांउ गांउ कोलाहल हुआ ॥
खरगसेन सुनि यहु बिरतंत । गयौ भागि घर त्यागि तुरंत ॥ ६३ ॥

---

२ ड धन ।

कीनौं दुखी देरिद्री भेख । लीनौं ऊबट पंथ अदेख ॥
नदी गांउ बन परबत घूमि । आए नगर जौनपुर-भूमि ॥ ६४ ॥
रजनी सेसे गेह निज आइ । गुरुजन-चरननमैं सिर नाइ ॥
किछु अंतर-धनु हुतौ जु साथ । सो दीनौं माताके हाथ ॥ ६५ ॥
एहि बिधि बरस च्यारि चलि गए । बरस अठारहके जब भए ।
कियौ गवन तब पच्छिम दिसां । संवत सोलह से छब्बिसां ॥ ६६ ॥
आए नगर आगरेमांहि । सुंदरदास पीतिआ पांहि ।
खरगसेनसौं राखै प्रेम । करै सराफी बेचै हेम ॥ ६७ ॥
खरगसेन भी थैली करी । दुहू मिलाइ दामसौं भरी ।
दोऊ सीर करहिं बेपार । कला निपुन धनवंत उदार ॥ ६८ ॥
उभय परस्पर प्रीति गँहंत । पिता पुत्र सब लोग कहंत ।
बरस च्यारि ऐसी विधि भए । तब मेरठिपुर ब्याहन गए ॥ ६९ ॥

छप्पै

सूरदास श्रीमाल ढोर मेरठी कहावै ।
ताकी सुता बियाहि, सेन अर्गलपुर आवै ॥
आइ हाट बैठे कमाइ, कीनी निज संपति ।
चाचीसौं नहिं बनी, लियौ न्यारो घर दंपति ॥
इस बीचि बरस द्वै तीनिमैं, सुंदरदास कलत्रजुत ।
मरि गए त्यागि धन धाम सब, सुता एक, नहिं कोउ सुत ॥ ७० ॥

दोहरा

सुता कुमारी जो हुती, सो परनाई सेनि ।
दान मान बहुबिधि दियौ, दीनी कंचन रेनि ॥ ७१ ॥

१ ड. दारिदी । २–३ अ दीस, छब्बीस । ४ ब करंत । ५ अ सुख ।

संपति सुंदरदासकी, जु कछु लिखी मिलि पंच ।
सो सब दीनी बहिनिकौं, सेन न राखी रंच ॥ ७२ ॥
तेतीसै संवत समै, गए जौनपुर गाम ।
एक तुरंगम एक रथ, बहु पाइक बहु दाम ॥ ७३ ॥
दिन दस बीते जौनपुर, नगरमांहि करि हाट ।
साझी करि बैठे तुरित, कियौ बनजकौ ठाट ॥ ७४ ॥

रामदास बनिआ धनपती । जाति अगरवाला सिवमती ॥
सो साझी कीनौं हित मानै । प्रीति रीति परतीति मिलान ॥ ७५ ॥
करहिं सराफी दोऊ गुनी । बनजहिं मोती मानिक चुनी ॥
सुखसौं काल भली विधि गमै । सोलहसै पैंतीस समै ॥ ७६ ॥
खरगसेन घर सुत अवतर्‌यौ । खरच्यौ दरब हरस मन धर्‌यौ ॥
दिन दसम पहुच्यौ परलोक । कीना प्रथम पुत्रकौ सोक ॥ ७७ ॥
सैंतीसै संवतकी बात । रुहतग गए सतीकी जात ॥
चोरन्ह लूटि लियौ पथमांहि । सर्वस गयौ रह्यौ कछु नांहि ॥ ७८
रहे वस्त्र अरु दंपति-देह । ज्यौं त्यौं करि आएं निज गेह ॥
गए हुते मांगनकौं[1] पूत । यहु फल दीनौं सती अऊत ॥ ७९
तऊ न समुझे मिथ्या बात । फिरि मानी उनहींकी जात ॥
प्रगट रूप देखै सब फोकै[2] । तऊ न समुझै मूरख लोकै[3] ॥ ८०
घर आए फिर बैठे हाट । मदनसिंघ चित भए उचाट ॥
माया तजी भई सुख सांति । तीन बरस बीते इस भांति ॥ ८१
संवत सोलहसै इकताल । मदनसिंघनैं कीनौं[4] काल ॥
धर्म कथा फली सब ठौर । बरस दोइ जब बीते और ॥ ८२

---

१ ब जान । २ अ सोग । ३ अ लोग । ४ अ कीधो ।

तब सुधि करी सतीकी बात । खरगसेन फिर दीनी जात ॥
संबत सोलहसै तेताल । माघ मास सित पक्ष रसाल ॥ ८३
एंकादसी वार रवि-नंद । नखत्त रोहिनी वृषकौ चंद ॥
रोहिनि त्रितिय चरन अनुसार । खरगसेन-घर सुत अवतार ॥ ८४
दीनौं नाम विक्रमाजीत । गावहिं कामिनि मंगल-गीत ॥
दीजहि दान भयौ अति हर्ष । जनम्यौ पुत्र आठएं वर्ष ॥ ८५
एहि बिधि बीते मास छ सात । चले सु पार्श्वनाथकी जात ॥
कुल कुटुंब सब लीनौ साथ । विधिसौं पूजे पारसनाथ ॥ ८६
पूजा करि जोरे जुंग पानि । आगें बालक राख्यौ आनि ॥
तब कर जोरि पुजाँरा कहै । "बालक चरन तुम्हारे गहै ॥ ८७
चिरंजीवि कीजै यह बाल । तुम्ह सरनागतके रखपाल ॥
इस बालकपर कीजै दया । अब यहु दास तुम्हारा भया" ॥ ८८
तब सु पुजारा साधै पौन । मिथ्या ध्यान कपटकी मौन ॥
घड़ी एक जब भई वितीत । सीस घुमाइ कहै सुनु मीत ॥ ८९
"सुँपिनंतर किछु आयौ मोहि । सो सब बात कहा मैं तोहि ॥
प्रभु पारस-जिनवरकौ जच्छ । सो मोपै आयौ परतच्छ ॥ ९० ॥
तिन यहु बात कही मुझपांहि । इस बालककौं चिंता नांहि ॥
जो प्रभु-पास-जनमकौ गांउ । सो दीजै बालककौ नांउ ॥ ९१ ॥
तौ बालक चिरजीवी होइ । यहु कहि लोप भयौ सुर सोइ ॥"
जब यहु बात पुजारे कही । खरगसेन जिय जाँनी सही ॥ ९२ ॥

दोहरा

हरषित कहै कुटंब सब, स्वामी पास सुपास ।
दुहुकौ जनम बनारसी, यहु बनारसी-दास ॥ ९३ ॥

१ ब एकादसी रविवार सुनन्द । २ अ निज । ३ ब पुजेरा । ४ ब सुपनंतर । ५ ड भई । ६ अ मानी ।

एहि बिधि धरि बालककौ नांउ । आए पलटि जौनपुर गांउ ॥
सुख समाधिसौं बरतै बाल । संबत सोलह सै अठताल ॥ ९४ ॥
पूरब करम उदै संजोग । बालककौं संग्रहनी रोग ।
उपज्यौ[1] औषध कीनी घनी । तऊ न बिथा जाइ सिसुतनी ॥ ९५ ॥
बरस एक दुख देख्यौ बाल । सहज समाधि भई ततकाल ॥
बहुरों बरस एकलौं भला । पंचासै निकसी सीतला ॥ ९६ ॥

दोहरा

बिथा सीतला उपसमी, बालक भयौ अरोग ।
खरगसेनके घरि सुता, भई करम-संजोग ॥ ९७

आठ बरसकौ हूओ बाल । विद्या पढ़न गयौ चटसाल ॥
गुर पांड़ेसौं विद्या सिखै । अक्खर बांचै लेखा लिखैं ॥ ९८
बरस एक लौं विद्या पढ़ी । दिन दिन अधिक अधिक मति बढ़ी ॥
विद्या पढ़ि हूओ बितपन्न । संबत सोलह सै बावन्न ॥ ९९

दोहरा

खरगसेन बनिज रतन, हीरा मानिक[2] लाल ।
इस अंतर नौ बरसकौ, भयौ बनारसि बाल ॥ १००
खैराबाद नगर बसै, तांबी परबत नाम ।
तासु पुत्र कल्यानमल, एक सुता तसु[3] धाम ॥ १०१ ॥
तासु पुरोहित आइओ, लीनैं नाऊँ[4] साथ ।
पत्र लिखत कल्यानकौ, दियौ सेनके हाथ ॥ १०२ ॥
करी सगाई पुत्रकी, कीनौ तिलक लिलाट ।
बरस दोइ उपरांत लिखि, लगन ब्याहकौ ठाट ॥ १०३ ॥

---

१ अ उपजी । २ अ लई । ३ ब तसु । ४ स ई नापित ।

भई सगाई बावनें, परचौ त्रेपनें काल ।
महघा अंन न पाइयै, भयौ जगत बेहाल ॥ १०४ ॥
गयौ काल बीते दिन बने । संवत सोलह सै चौवने ॥
मांघ मास सित पख बारसी । चले विवाहन बानारसी ॥ १०५ ॥
करि विवाह आए निज धाम । दूजी और सुता अभिराम ॥
खरगसेनके घर अवतरी । तिस दिन वृद्धा नानी मरी ॥ १०६ ॥

दोहरा

नानी मरन सुता जनम, पुत्रवधू आगौन ।
तीनौं कारज एक दिन, भए एक ही भौन ॥ १०७ ॥
यह संसार विडम्बना, देखि प्रगट दुख खेद ।
चतुर चित्त त्यागी भए, मूढ़ न जानहि भेद ॥ १०८ ॥
इहि बिधि दोइ मास बीतिया । आयौ दुलिहिनिकौ पीतिया ॥
ताराचंद नाम श्रीमाल । सो ले चल्यौ भतीजी नाल ॥ १०९ ॥
खैराबाद नगर सो गयौ । इहां जौनपुर बीतिक भयौ ॥
बिपदा उदै भई इस बीच । पुरहाकिम नौवाब किलीचँ ॥११०॥

दोहरा

तिन पकरे सब जौंहरी, दिए कोठरीमांहि ॥
बड़ी वस्तु मँगै कछू, सो तौ इनपै नांहि ॥ १११ ॥
एक दिवस तिनि कोप करि, कियौ हुकम उठि भोर ।
बांधि बांधि सब जौंहरी, खड़े किए ज्यौं चोर ॥ ११२ ॥
हने कटीले कोररे, कीने मृतक समान ।
दिए छोड़ तिस बार तिन, आए निज निज थान ॥११३॥

२ स त्रिरधा । ४ स इ विटंबना । ५ ब ड बीतक । ४ ब कलीच ।

आइ सबनि कीनौ मतौ, भागि जाहु तजि भौन ।
निज निज परिगह साथ ले, परै काल-मुख कौन ॥ ११४ ॥

चौपई

यहु कहि भिन्न भिन्न सब भए । फूटि फाटिकै चहुंदिसि गए ॥
खरगसेन लै निज परिवार । आए पच्छिम[1] गंगापार ॥ ११५ ॥
नगरी साहिजादपुर नांउ । निकट कड़ा[2] मानिकपुर गांउ ॥
आए साहिजादपुर बीच । बरसै मेघ भई अति कीच ॥ ११६ ॥
निसा अंधेरी बरसा घनी । आइ सराइ बसे गृह-धनी ॥
खरगसेन सब परिजन साथ । करहिं रुदन ज्यौं दीन अनाथ ॥ ११७

दोहरा

पुत्र कलत्र सुता जुगल, अरु संपदा-अनूप ।
भोग-अंतराई-उदै, भए सकल दुखरूप ॥ ११८ ॥

चौपई

इस अवसर तिस पुर थानिया । करमचंद माहुर[3] वानिया ॥
तिन अपनौं घर खाली कियौ । आपु निवास और घर लियौ ॥११९॥
भई बितीत[4] रैंनि इक जाम । टेरै खरगसेनकौ नाम ॥
टेरत बूझत आयौ तहां । खरगसेनजी बैठे जहां ॥१२०॥
'रामराम' करि बैठ्यौ पास । बोल्यौ तुम साहब मैं दास ॥
चलहु कृपा करि मेरे संग । मैं सेवक तुम चढ़ौ तुरंग ॥ १२१ ॥
जथाजोग है डेरा एक । चलिए तहां न कीजै टेक ॥
आए हितसौं तासु निकेत । खरगसेन परिवारसमेत ॥ १२२ ॥
बैठे सुखसौं करि विश्राम । देख्यौ अति विचित्र सो धाम ॥
कोरे कलस धरे बहु माट । चादरि सोरि तुलाई खाट ॥ १२३ ॥

---

१ ई स पश्चिम। २ ड करा, अ करी मानिकपुर। ३ ब माहोर। ४ ब बितीति।

भरयौ अंनसौं कोठौं एक । भव्य पदारथ औरं अनेक ॥
सकल बस्तु पूरन करि गेह । तिन दीनौं करि बहुत सनेह ॥१२४॥
खरगसेन हठ कीनौ महा । चरन पकरि तिन कीनी हहा ॥
अति आग्रह करि दीनौ सर्व । विनय वहुत कीनी तजि गर्व ॥१२५॥

दोहरा

घन बरसै पावस समै, जिन दीनौ निज भौन ।
ताकी महिमाकी कथा, मुखसौं बरनै कौन ॥ १२६ ॥

चौपई

खरगसेन तहां सुखसौं रहै । दसा बिचारि कबीसुर कहै ।
वह दुख दियौ नवाब किलीच । यह सुख साहिजादपुरबीच ॥१२७
एक दिष्टि बहु अंतर होइ । एक दिष्टि सुख-दुख सम दोइ ॥
जो दुख देखै सो सुख लहै । सुख भुंजै सोई दुख सहै ॥ १२८ ॥

दोहरा

सुखमैं मानै मैं सुखी, दुखमैं दुखमय होइ ।
मूढ़ पुरुषकी दिष्टिमैं, दीसै सुख दुख दोइ ॥ १२९ ॥
ग्यानी संपति विपतिमैं, रहै एकसी भांति ।
ज्यौं रबि ऊगत आथवत, तजै न राती कांति ॥ १३० ॥
करमचंद माहुर बनिक , खरगसेन श्रीमाल ।
भए मित्र दोऊ पुरुष, रहैं रयनि दिन नालै ॥ १३१ ॥
इहि बिधि कीनौ मास दस, साहिजादपुर बास ।
फिर उठि चले प्रयागपुर, बसै त्रिबेणी पास ॥ १३२ ॥

---

१ ब ठौ । २ अ अवर । ३ अ लाल ।

चौपई

बसै प्रयाग त्रिबेनी पास । जाकौ नांउ इलाहाबास ॥
तहां दानि वसुधा-पुरहूत । अकबर पातिसाहकौ पूत ॥ १३३ ॥
खरगसेन तहां कीनौ गौंन । रोजगार कारन तजि भान ॥
बनारसी बालक घरि रह्यौ । कौड़ी-बेच बनिजं[1] तिन गह्यौ ॥१३४॥
एक टका द्वै टका कमाइ । काहूकी ना धरै तमाइ ॥
जोरै नफा एकठा करै । लै दादीके आगें धरै ॥ १३५

दोहरा

दादी बांटै सीरनी, लाडू नुंकती[2] नित्त ।
प्रथम कमाई पुत्रकी, सती अऊत निमित्त ॥ १३६

चौपई

दादी मानै सती अऊत । जानै तिन दीनौ यह पूत ॥
देख सुपिन करै जब सैन । जागे कहै पितरके बैन ॥ १३७
तासु बिचार करै दिन राति । ऐसी मूढ़ जीवकी जाति ॥
कहत न बनै कहै का कोइ । जैसी मति तैसी गति होइ ॥ १३८

दोहरा

मास तीनि औरौं गए, बीते तेरह मास ।
चीठी आई सेनकी, करहु फतेपुर बास ॥ १३९ ॥
डोली द्वै[3] भाड़ै करी, कीनैं च्यारि मजूर ।
सहित कुटुंब बनारसी, आए फत्तेपूर ॥ १४० ॥

चौपई

फत्तेपुरमैं आए तहाँ । ओसवालके घर हैं जहाँ ॥
वासू साह अध्यातम-जान । वसै बहुत तिन्हकी संतान ॥१४१॥

१ ड ई बनज । २ अ ड निकुती । ३ व इक ।

बासू-पुत्र भगौतीदास । तिन दीनौ तिन्हकौ आवास ॥
तिस मंदिरमैं कीनौ बास । सहित कुटंब बनारसिदास॥१४२॥

सुख समाधिसौं दिन गए, करंत सु केलि बिलास[1] ।
चीठी आई बापकी, चले इलाहाबास ॥ १४३ ॥

चले प्रयाग बनारसी, रहे फतेपुर लोग ।
पिता-पुत्र दोऊ मिले, आनंदित बिधि-जोग ॥ १४४ ॥

चौपई

खरगसेन जौंहरी उदार । करै जबाहरकौ बेपार[2] ॥
दानिसाहिजीकी सरकार । लेवा देई रोक-उधार ॥ १४५ ॥

चारि[3] मास बीते इस भांति । कबहूं दुख कबहूं सुख सांति ॥
फिरि आए फत्तेपुर गांउ । सकल कुटंब भयौ इक ठांउ ॥ १४६॥

मास दोई बीते इस बीच । सुनी आगरे गयौ किलीच ॥
खरगसेन परिवारसमेत । फिरि आए आपनै निकेत ॥ १४७ ॥

जहां तहांसौं सब जौंहरी । प्रगटे जथा गुपत भौंहरी ॥
संबत सोलह सै छप्पनै । लागे सब कारज आपनै ॥ १४८ ॥

बरस एकलौं बरती छेम । आए साहिब साहि सलेम ॥
बड़ा साहिजादा जगबंद । अकबर पातिसाहिकौ नंद ॥ १४९ ॥

आखेटक कोल्हूबन काज । पातिसाहिकी भई अवाज ॥
हाकिम इहां जौनपुर थान। लघु किलीच नूरम सुलतान ॥१५०॥

---

१ ब करते सकल विलास । २ ब ब्यौहार । ड ब्यापार । ३ ब च्यार ।
४ ब दोक ।

ताहि हुकम अकबरकौ भयौ । सहिजादा कोल्हूबन गयौ ॥
तातैं सो किछु कर तू जेम । कोल्हूबन नहिं जाय सलेम ॥ १५१ ॥

एहि बिधि अकबरकौ फुरमान । सीस चढ़ायौ नूरम खान ॥
तब तिन नगर जौनपुर बीच । भयौ गढ़पती ठानी मीच ॥१५२॥

जहां तहां रूधी सब बाट । नांउ न चलै गौमती-घाट ॥
पुल दरवाजे दिए कपाट । कीनौ तिन विग्रहकौ ठाठ ॥ १५३ ॥

राखे बहु पायक असवार । चहु दिसि बैठे चौकीदार ॥
कोट कंगूरेन्ह राखी नाल । पुरमैं भयौ ऊंचलाचाल ॥ १५४ ॥

करी बहुत गढ़ संजोवनी । अंन बेस्त्र जलकी ढोवनी ॥
जिरह जीन बंदूक अपार । बहु दारू नाना हथियार ॥ १५५ ॥

खोलि खजाना खरचै दाम । भयौ आपु सनमुख संग्राम ।
प्रजालोग सब ब्याकुल भए । भागे चहू ओर उठि गए ॥ १५६ ॥

महा नगरि सो भई उजार । । अब आई अंब्र आई धार ॥
सब जौंहरी मिले इक ठौर । नगरमांहि नर रह्यौ न और ॥१५७॥

क्या कीजै अब कौन बिचार । मुसकिल भई सहित परिबार ॥
रहे न कुसल न भागे छेमैं । पकरी सांप छछूंदरि जेम ॥१५८॥

तब सब मिलि नूरमके पास । गए जाइ कीनी अरदास ॥
नूरम कहै सुनहु रे साहु । भाँवै इहां रहौ कै जाहु ॥ १५९ ॥

मेरौ मरन बन्यौ है आइ । मैं क्या तुमकौं कहौं उपाइ ॥
तब सब फिरि आए निज धाम । भागहु जो किछु करहि सो राम ॥१६०

---

१ स उचाला । २ ब बस्तु । ३ अ आई यह । ४ अ खेम । ५ अ भावै इहां उहांकौ जाहु ।

दोहरा

आपु आपुकौं सब भगे, एकहि एक न साथ।
कोऊ काहूकी सरन, कोऊ कहूं अनाथ ॥ १६१ ॥

चौपई

खरगसेन आए तिस ठांउ। दूलह साहु गए जिस गांउ ॥
लछिमनपुरा गांउ[1]के पास। तहां चौधरी लछिमनदास ॥ १६२ ॥
तिन लै राखे जंगलमांहि। कीनौं कौल बोल दै बांहि ॥
इहि बिधि बीते दिवस छ सात। सुनी[2] जौनपुरकी कुसलात ॥ १६३ ॥
साहि सलेम[3] गोमती तीर। आयौ तब पठयौ इक मीर ॥
लालाबेग मीरकौ नांउ। ह्वै वकील आयौ तिस ठांउ ॥ १६४ ॥
नरम गरम कहि ठाढ़ौ भयौ। नूरमकौं लिबाइ लै गयौ ॥
जाइ साहिके डारौ पाइ। निरभै कियौ गुनह बकसाइ ॥ १६५ ॥
जब यह बात सुनी इस भांति। तब सबके मन बरती सांति ॥
फिरि आए निज निज घर लोग। निरभै भए गयौ भय-रोग ॥ १६६ ॥
खरगसेन अरु दूलह साह। इनहू पकरी वरकी राह ॥
सपरिवार आए निज धाम। लागे आप[4] आपने काम ॥ १६७ ॥
इस अवसर बानारसि बाल। भयौ प्रवांन चतुर्दस साल ॥
पंडित देवदत्तके पास। किछु विद्या तिन करी अभ्यास ॥ १६८ ॥
पढ़ी 'नाममाला' सै दोइ। और 'अनेकारथ' अवलोइ ॥
जोतिस अलंकार लघु कोक। खंड स्फुट सै च्यारि सिलोक ॥१६९॥

१ अ नांउकौ वास। २ अ सुनौ जौनपुरकी यह बात। ३ अ सलीम।
४ अ अपने अपने।

विद्या पढ़ि विद्यामैं रमै । सोलह सै सतावने समै ॥
तजि कुल-कान लोककी लाज । भयौ बनारसि आसिखबाज ॥१७०

करै आसिखी धरि मन धीर । दरदबंद ज्यौं सेख फकीर ॥
इकटक देखि ध्यान सो धरै । पिता आपनेकौ धन हरै ॥ १७१ ॥

चोरै चूंनी मानिक मनी । आनै पान मिठाई घनी ॥
भेजै पेसकसी हित पास । आपु गरीब कहावै दास ॥ १७२ ॥

इस अंतर चौमास बितीत । आई हिमरितु ब्यापी[1] सीत ॥
खरतर अभैधरम उवझाइ । दोइ सिष्यजुत प्रकटे आइ ॥ १७३ ॥

भानचंद मुनि चतुर विशेष । रामचंद बालक गृह-भेष ॥
आए जती जौनपुरमांहि । कुल श्रावक सब आवहिं जांहि ॥१७४

लखि कुल-धरम बनारसि वाल । पिता साथ आयौ पोसाल ॥
भानचंदसौं भयौ सनेह । दिन पोसाल रहै निसि गेह ॥ १७५ ॥

भानचंदपै विद्या सिखै । पंचसंधिकी रचनां लिखै ॥
पढ़ै सनातर-बिधि अस्तोन । फुट सिलोक बहु बरनै कौन ॥१७६॥

सामाइक पडिकौना पंथ । छंद कोस स्रुतबोध गरंथ ॥
इत्यादिक विद्या मुखपाठ । पढ़ै सुद्ध साधै गुन आठ ॥ १७७ ॥

कबहू आइ सबद उर धरै । कबहू जाइ आसिखी करै ॥
पोथी एक बनाई नई । मित हजार दोहा चौपई ॥ १७८ ॥

तामैं नवरस-रचना लिखी । पै बिसेस बरनन आसिखी ॥
ऐसे कुकबि बनारसि भए । मिथ्या ग्रंथ बनाए नए ॥ १७९ ॥

---

१ ड व्यापा ।

दोहरा

कै पढ़ना कै आसिखी, मगन दुहू रसमांहि ॥
खान-पानकी सुध नहीं, रोजगार किछु नांहि । १८० ॥

चौपई

ऐसी दसा बरस द्वै रही । मात पिताकी सीख न गही ।
करि आसिखी पाठ सब पठे । संवत सोलह सै उनसठे ॥ १८१ ॥

दोहरा

भए पंचदस बरसके, तिस ऊपर दस मास ।
चले पाउजा करनकौं, कवि बनारसीदास ॥ १८२ ॥
चढ़ि डोली सेवक लिए, भूषन बसन बनाइ ।
खैराबाद नगरविषै, सुखसौं पहुचे आइ ॥ १८३ ॥

चौपई

मास एक जब भयौ बितीत । पौषै[1] मास सितै[2] पख रितु सीत ॥
पूरब करम उदै संजोग । आकसमात बातकौ[3] रोग ॥ १८४ ॥

दोहरा

भयौ बनारसिदास-तनु, कुष्ठरूप सरबंग ।
हाड़ हाड़ उपजी बिथा, केस रोम भुव-भंग ॥ १८५ ॥
बिस्फोटक अगनित भए, हस्त चरन चौरंग ।
कोऊ नर साला ससुर, भोजन करै न संग ॥ १८६ ॥
ऐसी असुभ दसा भई, निकट न आवै कोइ ।
सासू और बिवाहिता, करहिं सेव तिय दोइ ॥ १८७ ॥

---

१ ड पोष । २ अ रितु सित पख सीत । ३ अ व्रात संयोग ।

जल-भोजनकी लहि सुध, दैंहि आनि मुखमांहि ।
ओखद लावहिं अंगमैं, नाक मूंदि उठि जांहि ॥ १८८ ॥

चौपई

इस अवसर नर नापित कोइ । ओखद-पुरी खवावै सोइ ॥
चने अलूनै भोजन देइ । पैसा टका किछ्र नहि लेइ ॥ १८९ ॥

चारि मास बीते इस भांति । तब किछु विथा भई उपसांति ॥
मास दोइ औरौ चलि गए । तब बनारसी नीके भए ॥ १९० ॥

दोहरा

न्हाइ धोइ ठाढ़े भए, दैं नाऊकौं दान ।
हाथ जोड़ि बिनती करी, तू मुझ मित्र समान ॥ १९१

नापित भयौ प्रसंन अति, गयौ आपने धाम ।
दिन दस खैराबादमैं, कियौ और बिसराम ॥ १९२

फिरि आए डोली चढ़े, नगर जौनपुरमांहि ।
सासु ससुर अपनी सुता, गौंने भेजी नांहि ॥ १९३

आइ पिताके पद गहे, मां रोई उर ठोकि ।
जैसे चिरी कुरीजकी, त्यौं सुत-दसा विलोकि ॥ १९४

खरगसेन लज्जित भए, कुबचन कहे अनेक ।
रोए बहुत बनारसी, रहे चकित छिन एक ॥ १९५

दिन दस बीस परे दुखी, बहुरि गए पोसाल ।
कै पढ़ना कै आसिखी, पकरी पहिली चाल ॥ १९६

---

१ ब देहमैं ।

चौपई

मासि चारि ऐसी विधि भए। खरगसेन पटनै उठि गए॥
फिरि बनारसी खैराबाद। आए मुख लज्जित सबिषाद॥ १९७
मास एक फिरि दूजी चार। घरमैं रहे न गए बजार॥
फिरि उठि चले नारि लै संग। एक सुडोली एक तुरंग॥ १९८
आए नगर जौनपुर फेरि। कुल कुटंब सब बैंठे घेरि॥
गुरुजन लोग देंहि उपदेस। आसिखबाज सुनें दरवेस॥१९९
बहुत पढ़ैं बांभन अरु भाट। बनिकपुत्र तौ बैठे हाट॥
बहुत पढ़ै सो माँगै भीख। मानहु पूत बड़ेकी सीख॥ २००

दोहरा

इत्यादिक स्वारथ वचन, कहे सबनि बहु भांति।
मानै नहीं बनारसी, रह्यौ सहज-रस मांति॥ २०१

चौपई

फिरि पोसाल भानपै पढ़ै, आसिखबाजी दिन दिन बढ़ै॥
काऊ कह्यौ न मानै कोइ, जैसी गति तैसी मति होइ॥ २०२
कर्माधीन बनारसि रमै, आयौ संवत साठा समै॥
साठै संवत एती बात, भई जु कछु कहौं बिख्यात॥ २०३
साठै करि पटनेंसौं गौन। खरगसेन आए निज भौन॥
साठै ब्याही बेटी बड़ी। वितरी पहिली संपति गड़ी॥ २०४
बनारसीकैं [1]बेटी हुई। द्विवस छ-सातमांहि सो मुई॥
जहमति परे बनारसिदास। कीनैं लंघन बीस उपास॥ २०५

---

१ अ बेटी भई। इस प्रतिकी टिप्पणीमें इस लड़कीका नाम 'बीरबाई' लिखा है।

लागी छुधा पुकारै सोइ । गुरुजन पथ्य देइ नहि कोइ ॥
तब मांगै देखनकौं रोइ । आध सेरकी पूरी दोइ ॥ २०६

खाट हेठ ल धरी दुराइ । सो बनारसी भखी चुराइ ॥
वाही पथसौं नीकौ भयौ । देख्यौ लोगनि कौतुक नयौ ॥२०७॥

साठि संबत करि दिढ़ हियौ । खरगसेन इक सौदा लियौ ॥
तामैं भए सौगुने दाम । चहल पहल हूई निज धाम ॥ २०८

यह साठे संबतकी कथा । ज्यौं देखी मैं बरनी तथा ॥
समै उनसठे सावन बीच । कोऊ संन्यासी नर नीच ॥ २०९

आइ मिल्यौ सो आकसमात । कही बनारसिसौं तिन बात ॥
एक मंत्र है मेरे पास । सो बिधिरूप जपै जो दास ॥ २१०

बरस एक लौं साधै नित्त । दिढ़ प्रतीति आनै निज चित्त ॥
जपै बैठि छैरछोभी[1] मांहि । भेद न भाखै किसू ही पांहि ॥ २११

पूरन होइ मंत्र जिस वार । तिसके फलका कहूं बिचार ॥
प्रात समय आवै गृहद्वार । पावै एक पड़्या दीनार ॥ २१२

बरस एक लौं पावै सोइ । फिरि साध फिरि ऐसी होइ ॥
यह सब बात बनारसि सुनी । जान्या महापुरष है गुनी ॥ २१३

पकरे पाइ लोभके लिए । मांगै मंत्र बीनती किए ॥
तब तिन दीनौं मंत्र सिखाइ । अक्खर कागदमांहि लिखाइ ॥ २१४

वह प्रदेस उठि गयौ स्वतंत्र । सठ बनारसी साधै मंत्र ॥
बरस एक लौं कीनौ खेद । दीनौं नांहि औरकौं भेद ॥ २१५

---

१ ड छरछूवी, इ छरछोवी ।

चरस एक जब पूरा भया । तब बनारसी द्वारै गया ॥
नीची दिष्टि बिलोकै धरा । कहुं दीनार न पावै परा ॥२१६॥

फिरि दूजै दिन आयौ द्वार । सुपने नहि देखै दीनार ॥
व्याकुल भयौ लोभके काज । चिंता बढ़ी न भावै नाज ॥२१७॥

कही भानसौं मनकी दुधा । तिनि जब कही बात यह मुधा ॥
तब बनारसी जांनी सही । चिंता गई छुधा लहलही ॥ २१८ ॥

जोगी एक मिल्यौ तिस आइ । बानारसी दियौ भौंदाइ ॥
दीनी एक संखोली हाथ । पूजाकी सामग्री साथ ॥ २१९

कहै सदासिव मूरति एह । पूजै सो पावै सिव-गेह ॥
तब बनारसी सीस चढ़ाइ । लीनी नित पूजै मन लाइ ॥ २२०

ठानि सनानि भगति चित धरै । अष्टप्रकारी पूजा करै ॥
सिव सिव नाम जपै सौ बार । आठ अधिक मन हरख अपार ॥२२१

दोहरा

पूजै तब भोजन करै, अँनपूजै पछिताइ ।
तासु दंड अगिले दिवस, रूखा भोजन खाइ ॥ २२२

ऐसी बिधि बहु दिन गएँ, करत गुपत सिवपूज ।
आयौ संबत इकसठा, चैत मास सित दूज ॥ २२३

साहिब साहि सलीमकौ, हीरानंद मुकीम ।
ओसवाल कुल जौंहरी, बनिक बित्तकी सीम ॥२२४

---

१ ब मानी । २ ब बिन पूजै । ३ अ भए । ४ अ ड बृत्ति ।

तिनि प्रयागपुर नगरसौं, कीनौ उद्दम सार।
संघ चलायौ सिखिरकौं, उतरयौ गंगापार ॥ २२५

ठौर ठौर पत्री दई, भई खबर जिततित्त।
चीठी आई सेनकौं, आवहु जात-निमित्त ॥ २२६

खरगसेन तब उठि चले, ह्वै तुरंग असवार।
जाइ नंदजीकौं मिले, तजि कुटंब घरबार ॥ २२७

चौपई

खरगसेन जात्राकौं गए। बानारसी निरंकुस भए॥
करैं कलह मातासौं नित्त। पारस[१]-जिनकी जात निमित्त ॥२२८

दही दूध घृत चावल चने। तेल तंबोल पहुप अनगने॥
इतनी बस्तु तजी ततकाल। पन लीनौ कीनौ हठ बाल ॥२२९

दोहरा

चैत महीनै पन लियौ, बीते मास छ सात।
आई पून्यौ कातिकी, चलै लोग सब जात ॥२३०

चले सिवमती न्हानकौं, जैनी पूजन पास।
तिन्हके साथ बनारसी, चले बनारसिदास ॥ २३१

कासी नगरीमैं गए, प्रथम[२] नहाए गंग।
पूजा पास सुपासकी, कीनी धरि मन रंग[३] ॥ २३२

जे जे पनकी वस्तु सब, ते ते मोल मंगाइ।
नेवज ज्यौं आगैं धरैं, पूजैं प्रभुके पाइ ॥ २३३

१ ब पार्श्वनाथकी। २ ब प्रथमैं न्हाये। ३ ब च्रंग।

दिन दस रहे बनारसी, नगर बनारसमांहि ।
पूजा कारन द्योहरे, नित प्रभात उठि जांहि ॥ २३४

एहि विधि पूजा पासकी, कीनी भगतिसमेत ।
फिरि आए घर आपनै, लिएं संखोली सेत ॥ २३५

पूजा संख महेसकी, करकै तौ किछु खांहि ।
देस विदेस इहां उहां, कबहूं भूली नांहि ॥ २३६

सोरठा

संखरूप सिवदेव, महा संख बानारसी ।
दोऊ मिले अबेवै, साहिब सेवक एकसे ॥ २३७

दोहरा

इस ही बीचि उरे परे, खरगसेनके भौन ।
भयौ एक अलपायु सुत, ताहि बखानै कौन ॥ २३८

चौपई

संबत सोलह सै इकसठे । आए लोग संघसौं नठे ॥
केई उबरे केई मुए । केई महा जहमती हुए ॥ २३९
खरगसेन पटनैमौं आइ । जहमति परे महा दुख पाइ ॥
उपजी बिथा उदरम राग । फिरि उपसमी आउबैल-जोग ॥ २४०
संघ साथ आए निज धाम । नंद जौनपुर कियौ मुकाम ॥
खरगसेन दुख पायौ वाट । घरम आइ परे फिरि खाट ॥ २४१

---

१ अ कीधी । २ ब अभेव । ३ अ उदरवे [illegible] आरबल, ड आयुबल ।

हीरानंद लोग-मनुहारि । रहे जौनपुरमैं दिन चारि ॥
पंचम दिवस पारके बाग । छट्ठे दिन उठि चले प्रयाग ॥ २४२

दोहरा

संघ फूटि चहुं दिसि गयौ, आप आपकौ होइ ।
नदी नांव संजोग ज्यौं, बिछुरि मिलै नहिं कोइ ॥ २४३

चौपई

इहि बिधि दिवस कैकुं[1] चलि गए । खरगसेनजी नीके भए ॥
सुख समाधि बीते दिन घनें । बीचि बीचि दुख जांहि न गनें ॥२४४

दोहरा

इस अवसर सुत अवतर्‌यौ, बानारसिके गेह ।
भव पूरन करि मरि गयौ, तजि दुलभ नरदेह ॥ २४५

चौपई

संवत सोलह स बासठा । आयौ कातिक पावस नठा ॥
छत्रपति अकबर साहि जलाल । नगर आगेरे कीनौं काल ॥ २४६
आई खबर जौनपुरमांह । प्रजा अनाथ भई बिनु नाह ॥
पुरजन लोग भए भयभीत । हिरद [illegible]ाकुलता मुख पीत ॥ २४७

दोहरा

अकसमात बाना[illegible]ी, सुनि अकबरकौ काल ।
सीढ़ी परि ब[illegible] हुतौ, भयौ भरम चित चाल ॥ २४८

---

१ ब कैक्र । २ [illegible] ।ेग ।

आइ तंवाला[1] गिरि परयौ, सक्यौ न आपा राखि।
फूटि भाल लोहू[2] चल्यौ, कह्यौ 'देव' मुख-भाखि ॥ २४९ ॥
लगी चोट पाखानकी, भयौ गृहांगन लाल।
'हाइ हाइ' सब करि उठे, मात तात बेहाल ॥ २५०

चौपई

गोद उठाय माइनैं लियौ। अंबर जारि घाउमैं दियौ ॥
खाट बिछाइ सुबायौ बाल। माता रुदन करै असराल ॥ २५१
इस ही बीच नगरमैं सोर। भयौ उदंगल चारिहु ओर ॥
घर घर दर दर दिए कपाट। हटवानी नहिं बैठे हाट ॥ २५२
भले बस्त्र अरु भूसन भले। ते सब गाड़े धरती तले ॥
हंडवाई गाड़ी कहुं और। नगदी माल निभरमी ठौर ॥ २५३
घर घर सबनि बिसाहे सस्त्र। लोगन्ह पहिरे मोटे बस्त्र ॥
ओढ़े कंबल अथवा खेस। नारिन्ह पहिरे मोटे बेस ॥ २५४
ऊंच नीच कोउ न पहिचान। धनी दरिद्री भए समान ॥
चौरि[3] धारि दीसै कहुं नांहि। यौं ही अपभय लोग डरांहि ॥ २५५

दोहरा

धूम धाम दिन दस रही, बहुरौ बरती सांति।
चीठी आई सबनिक, समाचार इस भांति ॥ २५६
प्रथम पातिसाही करी, बावन[4] बरस जलाल।
अब सोलहसै बासठे, कातिक हूओ काल ॥ २५७

---

१ ब 'तिवाला'। २ ब लोही ३ ब चोर धार।
४ डा० वासुदेवशरणजीकी राय है कि अकबरका ५२ वर्षतक राज्य करना हिजरी सनकी दृष्टिसे जान पड़ता है जिसमें चान्द्रमासकी गणना चलती है। यों अकबरका ५० वर्ष राज्य करना सुविदित है।

अकबरकौ नंदन बड़ौ, साहिब साहि सलेम।
नगर आगरेमैं तखत, बैठौ अकबर जेम॥ २५८

नांउ धरायौ नूरदीं, जहांगीर सुलतान।
फिरी दुहाई मुलकमैं, बरती जहं तहं आन॥ २५९॥

इहि बिधि चीठीमैं लिखी, आई घर घर बार।
फिरी दुहाई जौनपुर, भयौ सु जयजयकार॥ २६०॥

चौपई

खरगसेनके घर आनंद। मंगल भयौ गयौ दुख-दंद॥
बानारसी कियौ असनान। कीजै उत्सव दीजै दान॥ २६१॥

एक दिवस बानारसिदास। एकाकी ऊपर आवास॥
बैठ्यौ मनमैं चिंतै एम। मैं सिव-पूजा कीनी केम॥ २६२॥

जब मैं गिर्‌यौ पर्‌यौ मुरछाइ। तब सिव किछु न करी सहाइ॥
यहु बिचारि सिव-पूजा तजी। लखी प्रगट सेवामैं कजी॥ २६३॥

तिस दिनसौं पूजा न सुहाइ। सिव-संखोली धरी उठाइ॥
एक दिवस मित्रन्हके साथ। नौकृत पोथी लीनी हाथ॥ २६४॥

नदी गोमतीके बिचै आइ। पुलके ऊपरि बैठे जाइ॥
बांचे सब पोथीके बोल। तब मनमैं यहु उठी कलोल॥ २६५॥

एक झूठ जो बोलै कोइ। नरक जाइ दुख देखै सोइ॥
मैं तो कलपित बचन अनेक। कहे झूठ सब साचु न एक॥२६६॥

कैसैं बनै हमारी बात। भई बुद्धि यह आकसमात॥
यहु कहि देखन लाग्यौ नदी। पोथी डार दई ज्यौं रदी॥ २६७॥

---

१ अ स मुरझाय। २ ब इ तट।

हाइ हाइ करि बोलै मीत । नदी अथाह महाभयभीत ॥
तामैं फैलि गए सब पत्र । फिरि कहु कौन करै एकत्र ॥ २६८ ॥

घरी द्वक पछितानैं मित्र । कहैं कर्मकी चाल विचित्र ॥
यहु कहिकैं सब न्यारे भए । बंनारसी आपुन घर गए ॥ २६९

खरगसेन सुनि यहु बिरतंत । हूए मनमैं हरषितवंत ॥
सुतके मन ऐसी मति जगै । घरकी नांउ रही-सी लगै ॥ २७०

दोहरा

तिस दिनसौं बानारसी, करै धरमकी चाह ।
तजी आसिखी फासिखी, पकरी कुलकी राह ॥ २७१ ॥

कहैं दोष कोउ न तजै, तजै अवस्था पाइ ।
जैसैं[4] बालककी दसा, तरुन भए मिटि जाइ ॥ २७२ ॥

उदै होत सुभ करमके, भई असुभकी हानि ।
तातैं तुरित बनारसी, गही धरमकी बानि ॥ २७३ ॥

चौपई

नित उठि प्रात जाइ जिनभौन । दरसनु बिनु न करै दंतौन ।
चौदह नेम बिरति उच्चरै । सामाइक पड़िकौना करै ॥२७४

हरी जाति राखी परवांन । जावजीव बैंगन-पचखान ।
पूजाबिधि साधै दिन आठ । पढ़ै बीनती पद मुख-पाठ ॥ २७५

१ अ ड घड़ी । २ अ बनारसी अपने । ३ ब नींउ । ४ अ जैसी ।
५ ड पूजापाठ पढ़ै मुखपाठ ।

दोहरा

इहि विधि जैनधरम कथा, कहै सुनै दिन रात ।
होनहार कोउ न लखै, अलख जीवकी जात ॥ २७६

तब अपजसी बनारसी, अब जस भयौ विख्यात ।
आयौ संवत चौसठा, कहौं तहांकी बात ॥ २७७

खरगसेन श्रीमालकैं, हुती सुता द्वै ठौर ।
एक बियाही जौनपुर, दुतिय कुमारी और ॥ २७८

सोऊ ब्याही चौसठे, संवत फागुन मास ।
गई पाडलीपुरविषैं, करि चिंतादुखनास ॥ २७९

बानारसिके दूसरौ, भयौ और सुत कीर ।
दिवस कैकुमैं उड़ि गयौ, तजि पिंजरा सरीर ॥ २८०

चौपई

कबहूं दुख कबहूं सुख सांति । तीनि बरस बीते इस भांति ॥
लच्छन भले पुत्रके लखे । खरगसेन मनमांहि हरखे ॥ २८१
संबत सोलह सै सतसठा । घरकौ माल कियौ एकठा ॥
खुला जवाहर और जड़ाउ । कागदमांहि लिख्यौ सब भाउ ॥२८२
द्वै पुहँची द्वै मुद्रा बनी । चौबिस मानिक चौतिस मनी ॥
नौ नीले पन्ने दस-दून । चारि गांठि चूंनी परचून ॥ २८३
एती वस्तु जवाहररूप । घृत मन बीस तेल द्वै कूप ॥
लिए जौनपुर होई दुकूल । मुद्रा द्वै सत लागी मूल ॥ २८४

---

१ ई पाटलीपुर । २ ब पौहची । ३ ब चौतिस मानिक चौबिस मनी । ४ ब हौहि ।

कछु घरके कछु परके दाम । रोक उधार चलायौ काम ।
जब सब सौंज भई तैयार । खरगसेन तब कियौ बिचार ॥ २८५
सुत बनारसी लियौ बुलाय । तासौं बात कही समुझाय ।
लेहु साथ यहु सौंज समस्त । जाइ आगरे बेचहु वस्त ॥ २८६
अब गृहभार कंध तुम लेहु । सब कुटंबकौं रोटी देहु ॥
यहु कहि तिलक कियौ निज हाथ । सब सामग्री दीनी साथ॥२८७

दोहरा

गाड़ी भार लदाइकै, रतन जतनसौं पास ।
राखे निज कच्छाविषैं, चले बनारसिदास ॥ २८८
मिली साथ गाड़ी बहुत, पांच कोस नित जांहि ।
क्रम क्रम पंथ उलंघकरि, गए इटाएमांहि ॥ २८९
नगर इटाएके निकट, करि गाड़िन्हकौ घेर ।
उतरे लोग उजारमैं, हूई संध्या-बेर ॥ २९०
घन घमंडि आयौ बहुत, बरसन लाग्यौ मेह ।
भाजन लागे लोग सब, कहां पाइए गेह ॥ २९१
सौरि उठाईं बनारसी, भए पयादे पाउ ।
आए बीचि सराइमैं, उतरे द्वै उंबराउँ ॥ २९२
भई भीर बाजारमैं, खाली कोउ न हाट ।
कहूं ठौर नहिं पाइए, घर घर दिए कपाट ॥ २९३
फिरत फिरत फावा भए, बैठन कहै न कोइ ।
तलै कीचसौं पग भरे, ऊपर बरसै तोइ ॥ २९४

१ ब सौज । २ ब दियौ । ३ ब ओढ़ बानारसी । ४ ब उमराव ।

अंधकार रजनी समै, हिम रितु अगहन मास।
नारि एक बैठन कह्यौ, पुरुष उठ्यौ लै बांस ॥ २९५

तिनि उठाइ दीनैं बहुरि, आए गोपुर पार।
तहां झौंपरी तनकसी, बैठे चौकीदार ॥ २९६

आए तहां बनारसी, अरु श्रावक द्वै साथ।
ते बूझैं तुम कौन हौ, दुःखित दीन अनाथ ॥ २९७

तिनसौं कहै बनारसी, हम ब्यौपारी लोग।
बिना ठौर व्याकुल भए, फिरैं करम संजोग ॥ २९८

चौपई

तब तिनक चित उपजी दया। कहैं इहां बैठौ करि मया॥
हम सकार अपने घर जांहि। तुम निसि बसौ झौंपरी मांहि॥२९९

औरौं सुनौ हमारी बात। सरियति खबरि भएं परभात॥
बिनु तहकीक जान नहि देहि। तब बकसीस देहु सो लेहि॥३००

मानी बात बनारसि ताम। बैठे तहं पायौ विश्राम॥
जल मंगाइकै धोए पाउ। भीजे बस्त्रन्ह दीनी बाउ॥ ३०१

त्रिन बिछाइ सोए तिस ठौर। पुरुष एक जोरावर और॥
आयौ कहै इहां तुम कौन। यह झौंपरी हमारौ भौन॥ ३०२

सैन करौं मैं खाट बिछाइ। तुम किस ठाहर उतरे आइ॥
कै तौ तुम अब ही उठि जाहु। कै तौ मेरी चाबुक खाहु॥३०३

तब बनारसी है इलबले। बरसत मेहु बहुरि उठि चले॥
उनि दयाल होइ पकरी बांह। फिरि बैठाए छायामांह॥३०४

---

१ ड सब नर, ई सकाल। २ ब सो।

दीनौ एक पुरानो टाट । ऊपर आनि बिछाई खाट।
कहै टाटपर कीजै सैन । मुझे खाट बिनु परै न चैन ॥ ३०५
'एवमस्तु' बानारसि कहै । जैसी जाहि परै सो सहै ॥
जैसा कातै तैसा बुनै । जैसा बोवै तैसा लुनै ॥ ३०६
पुरुष खाटपर सोया भले । तीनौ जनें खाटके तले ॥
सोए रजनी भई बितीत । ओढ़ी सौरि न ब्यापी सीत ॥ ३०७
भयौ प्रात आए फिरि तहां । गाड़ी सब उतरी ही जहां ॥
बरसा गई भई सुख सांति । फिरि उठि चले नित्यकी भांति ॥ ३०८
आए नगर आगरे बीच । तिस दिन फिरि बरसा अरु कीच ।
कपरा तेल घीउ धरि पार । आपु छेरे आए उर पार ॥ ३०९
मन चिंतवै बनारसिदास । किस दिसि जांहि कहां किस पास ॥
सोचि सोचि यह कीनौ ठीक । मोतीकटला कियौ रफीक ॥ ३१०
तहां चांपसीके घर पास । लघु बहनेऊ बंदीदास ॥
तिसके डेरै जाइ तुरंत । सुनिए 'भला सगा अरु संत' ॥ ३११
यह बिचारि आए तिस पांहि । बहनेऊके डेरेमांहि ॥
हितसौं बूझै बंदीदास । कपरा घीउ तेल किस पास ॥ ३१२
तब बनारसी बोलै खरा । उधरनकी कोठीमौं धरा ॥
दिवस कैकु जब बीते और । डेरा जुदा लिया इक ठौर ॥ ३१३
पट-गठरी राखी तिसमांहि । नित्य नखासे आवहि जांहि ॥
बस्त्र बेचि जब लेखा किया । ब्याज-मूरै दै टोटा दिया ॥ ३१४

---

१ अ वार । २ ड ई मूल ।

एक दिवस बानारसिदास । गए पार उधरनके पास ॥
बेचा घीऊ तेल सब झारि । बढ़ती नफा रुपैया च्यारि ॥ ३१५
हुंडी आई दीनैं दाम । बात उहांकी जानै राम ॥
बेंचि खोंचि आए उर पार । भए जवाहर बेंचनहार ॥ ३१६
देहिं ताहि जो मांगै कोइ । साधु कुसाधु[1] न देखै टोइ ॥
कोऊ बस्तु कहूं लै जाइ । कोऊ लेइ गिरौं धरि खाइ ॥ ३१७
नगर आगरेकौ ब्यौपार । मूल न जानै मूढ़ गंवार ॥
आयौ उदै असुभकौ जोर । घटती होत चली चहु ओर ॥ ३१८

दोहरा

नारे मांहि इजारके, बंध्यौ हुतौ दुल म्यान ।
नारा टूट्यौ गिरि परचौ, भयौ प्रथम यह ग्यान ॥ ३१९
खुलौ जवाहर जो हुतौ, सो सब थौं[2] उसनांहि ॥
लगी चोट गुपती सही, कही न किस ही पांहि ॥ ३२०
मानिक नौरेके[3] पले, बांध्यौ साटि[4] उचाटि ॥
धरी इजार अलंगनी, मूसा लै गयौ काटि ॥ ३२१
पहुँची[5] दोइ जड़ाउकी, बैंची गाहकपांहि ॥
दाम करोरी लेइ रह्यौ, परि देवाले मांहि ॥ ३२२
मुद्रा एक जड़ाउकी, ऐसैं डारी खोइ ।
गांठि देत खाली परी, गिरी न पाई सोइ ॥ ३२३
रेज परेजी वस्तु कछु, बुगचा बागे दोइ ॥
हंडवाई वरसैं रही, और बिसाति न कोइ ॥ ३२३

---

१ अ असाधु। २ अ थ्यौ। ३ ब नारेके सले। ४ ब सार उचाट। ५ ब पौहची।

चौपई

इहि विधि उदै भयौ जब पाप। हलहलाइकै आई ताप॥
तब बनारसी जहमति परे। लंघन दस निकोररे करे॥ ३२५
फिर पथ लीनौं नीके भए। मास एक बाजार न गए॥
खरगसेनकी चीठी घनी। आवहिं पै न देइ आपनी॥ ३२६

दोहरा

उत्तमचंद जवाहरी, दूलहकौ लघु पूत।
सो बनारसीका बड़ा, बहनेऊ अरिभूत॥ ३२७
तिनि अपने घरकौं दिए, समाचार लिखि लेख।
पूंजी खोइ बनारसी, भए भिखारी भेख॥ ३२८
उहां जौंनपुरमैं सुनी, खरगसेन यह बात॥
हाइ हाइ करि आइ घर, कियौ बहुत उतपात॥ ३२९
कलह करी निज नारिसों, कही बात दुख रोइ॥
हम तौ प्रथम कही हुती, सुत आवै घर खोइ॥ ३३०॥
कहा हमारा सब थया, भया भिखारी पूत।
पूंजी खोई बेहया, गया बनजका सूत॥ ३३१॥
भए निरास उसास भरि, करि घरमैं बकवाद।
सुत बनारसीकी बहू, पठई खैराबाद॥ ३३२॥
ऐसी बीती जौनपुर, इहां आगरेमांहि।
घरकी वस्तु बनारसी, बेंचि बेंचि सब खांहि॥ ३३३॥

लटा कुटा जो किछु हुतौ, सो सब खायौ झोरि[1] ।
हंडवाई खाई सकल, रहे टका द्वै चारि ॥ ३३४ ॥

तब घरमैं बैठे रहैं, जांहि न हाट बजार ।
मधुमालति मिरगावती, पोथी दोइ उदार[2] ॥ ३३५ ॥

ते बांचहिं रजनीसमै, आवहिं नर दस बीस ।
गावहिं अरु बातैं करहिं, नित उठि देंहि असीस ॥३३६॥

सो सामा घरमैं नहीं, जो प्रभात उठि खाइ ।
एक कचौरीबाल नर, कथा सुनै नित आइ ॥ ३३७ ॥

वाकी हाट उधार करि, लैंहि कचौरी सेर ।
यह प्रासुक भोजन करहिं, नित उठि[3] सांझ सवेर ॥३३८॥

कबहू आवहिं हाटमंहि, कबहू डेरामांहि ।
दसा न काहूसौं कहैं, करज कचौरी खांहि[4] ॥ ३३९ ॥

एक दिवस बानारसी, समौ पाइ एकंत ।
कहै कचौरीबालसौं, गुपत गेह-बिरतंत ॥ ३४० ॥

तुम उधार दीनौ बहुत, आगै अब जिनि देहु ।
मेरे पास किछू नहीं, दाम कहांसौं लेहु ॥ ३४१ ॥

कहै कचौरीबाल नर, बीस रुपैया खाहु ।
तुमसौं कोउ न कछु कहै, जहं भावै तहं जाहु ॥ ३४२ ॥

तब चुप भयौ बनारसी, कोउ न जानै बात ।
कथा कहै बैठौ रहै, बीते मास छ-सात ॥ ३४३ ॥

---

१ ब इ डारि । २ ब उचारि । ३ ब प्रति । ४ अ प्रतिमें यहाँ ३४१ नम्बर पड़ा है और आगे अन्त तक यह दो नम्बरोंकी भूल चली गई है ।

कहौं एक दिनकी कथा, तांबी ताराचंद ।
ससुर बनारसिदासकौ, परवतकौ फरजंद ॥ ३४४ ॥
आयौ रजनीके समै, बानारसिके भौन ।
जब लौं सब बैठे रहे, तब लौं पकरी मौन ॥ ३४५ ॥
जब सब लोग बिदा भए, गए आपने गेह ।
तब बनारसीसौं कियौ, ताराचंद सनेह ॥ ३४६ ॥
करि सनेह बिनती करी, तुम नेउते परभात ।
कालि उहां भोजन करौ, आवस्सिक यह बात ॥ ३४७ ॥

चौपई

यह कहि निसि अपने घर गयौ । फिरि आयौ प्रभात जब भयौ ॥
कहै बनारसिसौं तब सोइ । उहां[३] प्रभात रसोई होइ ॥ ३४८ ॥
तातैं अब चलिए इस बार । भोजन करि आवहु बाजार ॥
ताराचंद कियौ छल एह । बानारसी गयौ तिस गेह ॥ ३४९ ॥
भेज्यौ एक आदमी कोइ । लटा कुटा ल आयौ सोइ ॥
घरका भाड़ा दिया चुकाइ । पकरे बानारसिके पाइ ॥ ३५० ॥
कहै विनैसौं तारा साहु । इस घर रहौ उहां जिन जाहु ॥
हठ करि राखे डेरामांहि । तहां बनारसि रोटी खांहि ॥ ३५१ ॥
इहि विधि मास दोइ जब गए । धरमदासके साझी भए ॥
जस्स अमरसी भाई दोइ । ओसवाल दिलैंवाली सोइ ॥ ३५२ ॥
करहिं जवाहर-बनज बहूत । धरमदास लघु बंधुं कपूत ॥
कुविसन करै कुसंगति जाइ । खोवै दाम अमल बहु खाइ ॥३५३॥

१ ब सु निज निज । २ अ चलिए घर अन्न भई रसोइ । ३ अ दिवाली ।
४ ब बांधवपूत ।

यह लखि कियौ सीरकौ संच । दी पूंजी मुद्रा सै पंच ॥
धरमदास बानारसि यार । दोऊ सीर करहिं ब्यौपार ॥ ३५४ ॥

दोऊ फिरैं आगरे मांझ । करहिं गस्त घर आवहिं सांझ ।
ल्यावहिं चूंनी मानिक मनी । बेंचहिं बहुरि खरीदहिं घनी ॥३५५॥

लिखहिं रोजनामा खतिआइ । नामी भए लोग पतिआइ ॥
बेंचहिं लेंहिं चलावहिं काम । दिए कचौरीवाले दाम ॥ ३५६ ॥

भए रुपैया चौदह ठीक । सब चुकाइ दीनै तहकीक ॥
तीनि बार करि दीनौं माल । हरषित कियौ कचौरीवाल ॥३५७॥

दोहरा

बरस दोइ साझी रहे, फिर मन भयौ विषाद ।
तब बनारसीकी चली, मनसा खैराबाद ॥३५८॥

एक दिवस बानारसी, गयौ साहुके धाम ।
कहै चलाऊ हम भए, लेहु आपने दाम ॥ ३५९ ॥

चौपई

जस्स साह तब दियौ जुआब । बेचहु थैलीकौ असबाब ॥
जब एकठे हौंहि सब थोक । हमकौं दाम देहु सब रोक ॥३६०॥

तब बनारसी बेची बस्त । दाम एकठे किए समस्त ॥
गनि दीनैं मुद्रा सै पंच । बाकी कछु न राखी रंच ॥३६१॥

दोहरा

बरस दोइमैं दोइ सै, अधिके किए कमाइ ।
बेची बस्तु बजारमैं, बढ़ता गयौ समाइ । ॥ ३६२ ॥

---

१ ब और । २ अ बजावहिं । ३ अ ड बिढ़ता ।

सोलह सै सत्तरि समै, लेखा कियौ अचूक ।
न्यारे भए बनारसी, करि साझा द्वै टूक ॥ ३६३ ॥

चौपई

जो पाया सो खाया सर्व । बाकी कछू न बांच्या दर्व ॥
करी मसक्कति गई अकाथ । कौड़ी एक न लागी हाथ ॥३६४॥
निकसी [2]धौंधी सागर मथा । भई हींगवालेकी कथा ॥
लेखा किया रूखतल बैठि । पूंजी गई गांठिमैं पैठि ॥ ३६५ ॥
सो बनारसीकी गति भई । फिरि आई दरिद्रता नई ॥
बरस डेढ़ लौं नाचे भले । है खाली घरकौं उठि चले ॥ ३६६ ॥
एक दिवस फिरि आए हाट । घरसौं चले गलीकी बाट ॥
सहज दिष्टि कीनी जब नीच । गठरी एक परी [3]पंथ बीच ॥३६७॥
सो बनारसी लई उठाइ । अपने डेरे खोली आइ ॥
मोती आठ और किछु नांहि । देखत खुसी भए मनमांहि ॥३६८॥
ताइत एक गढ़ायौ नयौ । मोती मेले संपुट दयौ ॥
बांध्यौ कटि कीनौ बहु यत्न । जनु पायौ चिंतामनि रत्न ॥३६९॥
अंतरधनु राख्यौ निज पास । पूरब चले बनारसिदास ॥
चले चले आए तिस ठांउ । खराबाद नाम जहां गांउ ॥३७०॥
कला साहु ससुरके धाम । संध्या आइ कियौ विश्राम ॥
रजनी बनिता पूछै बात । कहौ आगरेकी कुसलात ॥ ३७१ ॥
कहै बनारसि माया-बैन । बनितौं कहै झूठ सब फैन ॥
तब बनारसी सांची कही । मेरे पास कछू नहिं सही ॥ ३७२ ॥

---

१ अ बाचा । २ अ थोथी । ३ अ मग । ४ अ ड नारी ।

जो कछु दाम कमाए नए । खरच खाइ फिरि खाली भए ॥
नारी[1] कहै सुनौ हो कंत । दुख सुखकौ दाता भगवंत ॥३७३॥

दोहरा

समौ पाइकै दुख भयौ, समौ पाइ सुख होइ ।
होनहार सो ह्वै रहै, पाप पुन्न फल दोइ ॥ ३७४ ॥

चौपई

कहत सुनत अर्गलपुर-बात । रजनी गई भयौ परभात ॥
लहि एकंत कंतके पानि । बीस रुपैया दीए आनि ॥ ३७५ ॥
ऐं[2] मैं जोरि धरे थे दाम । आए आज तुम्हारे काम ॥
साहिब चिंत न कीजै कोइ । पुरुष जिए तो सब कछु होइ ॥३७६॥
यह कहि नारि गई मां पास । गुपत बात कीनी परगास ॥
माता काहूसौं जिनि कहौ । निज पुत्रीकी लज्जा वहौ ॥३७७॥

दोहरा

थोरे दिनमैं लेहु सुधि, तो तुम मा मैं धीय ।
नाहीं तौ दिन कैकुमैं, निकसि जाइगौ पीय ॥ ३७८ ॥

चौपई

ऐसा पुरुष लजालू बड़ा । बात न कहै जात है गड़ा ।
कहै माइ जिनि होइ उदास । द्वै सै मुद्रा मेरे पास ॥ ३७९ ॥
गुपत देउं तेरे करमांहि । जो वै बहुरि आगरे जांहि ।
पुत्री कहै धन्य तू माइ । मैं उनकौं निसि बूझा जाइ ॥ ३८० ॥

---

१ ब वनिता कहै सुनो तुम कंत । २ ब प्रतिमें यह पंक्ति नहीं है ।

रजनी समै मधुर मुख भास । बनिता कहै बनारसि पास ।
कंत तुम्हारौ कहा विचार । इहां रहौ कै करौ विहार ॥ ३८१ ॥
बानारसी कहै तियपांहि । हम तू साथ जौनपुर जांहि ।
बनिता कहै सुनहु पिय बात । उहां महा विपदा उतपात ॥ ३८२
तुम फिर जाहु आगरेमांहि । तुमकौं और ठौर कहुं नांहि ।
बानारसी कहै सुन तिया । बिंनु धन मानुषका धिग जिया ॥ ३८३
दे धीरज फिरि बोलै बाम । करहु खरीद देउं मैं दाम ॥
यह कहि दाम आनि गनि दिए । बात गुपत राखी निज हिए ॥ ३८४॥
तब बनारसी बहुरौ जगे । एती बात करनकौं लगे ॥
करैं खरीद धोवावैं चीर । ढूंढैं मोती मानिक हीर ॥ ३८५ ॥
जोरहिं 'अजितनाथके छंद'। लिखहिं 'नाममाला' भरि वंदै ॥
च्यारौं काज करहिं मन लाइ । अपनी अपनी बिरिया पाइ ॥ ३८६
इहि बिधि च्यारि महीनें गए । च्यारि काज संपूरन भए ॥
करी 'नाममाला' सै दोइ । राखे 'अजित छंद' उरपोइ ॥ ३८७
कपरा धोइ भयौ तैयार । लियौ मोल मोतीकौ हार ॥
अगहन मास सुकल बारसी । चले आगरै बानारसी ॥ ३८८ ॥

दोहरा

बहुरौं आए आगरै, फिरिकै दूजी बार ।
तब कटले परवेजके, आनि उतारयौ भार ॥ ३८९ ॥

चौपई

कटलेमांहि ससुरकी हाट । तहां करहि भोजनकौ ठाठ ॥
रजनी सोवहि कोठीमांहि । नित उठि प्रात नखासे जांहि ॥ ३९०

---

१ अ विचार, ब ई व्यौहार । २ ब धिग बिनु दाम पुरुषकौ जिया ।
३ ब वृंद ।

फरि बठहि बहु करै उपाइ । मंदा कपरा कछु न बिकाइ ।
आवहि जाहि करहि अति खेद । नहि समुझै भावीकौ भेद ॥ ३९१

दोहरा

मोती-हार लियौ हुतौ, दै मुद्रा चालीस ।
सौ बेच्यौ सतरि उठे, मिले रुपइआ तीस ॥ ३९२ ॥

चौपई

तब बनारसी करै विचार । भला जवाहरका ब्यापार[1] ॥
हुए दौन दूनें इस मांहि । अब सौं वस्त्र खरीदहि नांहि ॥३९३॥
च्यारि मास लौं कीनौ धंध । नहिं बिकाइ कपरा पग बंध ॥
बैनीदास खोबरा गोत । ताकौ 'दास नरोत्तम' पोत ॥ ३९४ ॥

दोहरा

सो बनारसीकौ हितू, और बदलिआ 'थान'।
रात दिवस क्रीड़ा करहिं, तीनौं मित्र समान ॥ ३९५ ॥

चौपई

चढ़ि गाड़ीपर तीनौं डौल । पूजा हेतु गए भर कौल ।
कर पूजा फिरि जोरे हाथ । तीनौं जनें एक ही साथ ॥ ३९६ ॥
प्रतिमा आगै भाखैं एहु । हमकौं नाथ लच्छिमी देहु ॥
जब लच्छिमी देहु तुम तात । तब फिरि करहिं तुम्हारी जात ॥
यह कहिक आए निज गेह । तीनौं मित्र भए इक देह ।
दिन अरु रात एकठे रहैं । आप आपनी बातैं कहैं ॥ ३९८ ॥
आयौ फागुन मास विख्यात । बालचंदकी चली बरात ॥
ताराचंद मौठिया गोत । नेमाकौ सुत भयौ उदोत ॥ ३९९

१ ब व्यौहार।

कही बनारसिसौं तिन बात । तू चलु मेरे साथ बरात ॥
तब अंतरधन मोती काढ़ि । मुद्रा तीस और द्वै बाढ़ि ॥ ४००
बेंचि खोंचिकै आनैं दाम । कीनौ तब बरातिकौ साम ॥
चले बराति बनारसिदास । दूजा मित्र नरोत्तम पास[1] ॥ ४०१
मुद्रा खरच भएं सब तिहां । ह्वै बरात फिरि आए इहां ॥
खैराबादी कपरा झारि । बेच्यौ घटे रुपइया च्यारि ॥ ४०२
मूल-ब्याज दै फारिक भए । तब सु नरोत्तमके घर गए ॥
भोजन करकै दोऊ यार । बैठे[2] कियौ परस्पर प्यार ॥ ४०३

दोहरा

कहै नरोत्तमदास तब, रहौ हमारे गेह ।
भाईसौं क्या भिन्नता, कपँटीसौं क्या नेह ॥ ४०४

तब बनारसी ऊतर भनै । तेरे घरसौं मोहि न बनै ।
कहै नरोत्तम मेरे भौन । तुमसौं बोलै ऐसा कौन ॥ ४०५
तब हठकरि राखे घरमांहि । भाई कहै जुदाई नांहि ॥
काहू दिवस नरोत्तमदास । ताराचंद मौठिए पास ॥ ४०६
बैठे तब उठि बोले साहु । तुम बनारसी पटनैं जाहु ॥
यह कहि रासि देइ तिस बार । टीका काढ़ि उतारे पार ॥४०७॥
आइ पार दूझे दिन भले । तीनि पुरुष गाड़ी चढ़ि चले ॥
सेवकं कोउ न लीनौं गैल । तीनौं सिरीमाल नर छैल ॥ ४०८

१ ब दास । २ ड बैठे बहुत कियौ तिनि प्यार । ३ ड तुमसौं बोलै कौन ।
४ ब सेवक एकु लियौ तिन गैल ।

दोहरा

प्रथम नरोत्तमकौ ससुर, दुतिय नरोत्तमदास ।
तीजा पुरुष वनारसी, चौथा कोउ न पास ॥ ४०९

चौपई

भाड़ा किथा पिरोजाबाद । साहिजादपुरलौं मरजाद ॥
चैले साहिजादेपुर गए । रथसौं उतरि पयादे भए ॥ ४१० ॥
रथका भाड़ा दिया चुकाइ । सांझि आइकै बसे सराइ ॥
आगै और न भाड़ा किया । साथ एक लीया बोझिया ॥ ४११ ॥
पहर डेढ़[2] रजनी जब गई । तब तहं मकर चांदनी भई ॥
इनके मन आई यह बात । कहहिं चलहु हूवा परभात ॥ ४१२ ॥
तीनौं जनें चले ततकाल । दै सिर बोझ बोझिया नाल ॥
चारौं भूलि परे पथमांहि । दच्छिन दिसि जंगलमैं जांहि ॥ ४१३
महा[3] बीझ बन आयौ जहां । रोवन लग्यौ बोझिया तहां ॥
बोझ डारि भाग्यौ तिस ठौर । जहां न कोऊ मानुष और ॥ ४१४
तब तीनिहु मिलि कियौ विचार । तीनि भाग कीन्हा सब भार ॥
तीनि गांठि बांधी सम भाइ । लीनी तीनिहु जनें उठाइ ॥ ४१५
कबहूं कांधै कबहूं सीस । यँह[4] विपत्ति दीनी जगदीस ॥
अरध रात्रि[5] जब भई बितीत । खिन रोवैं खिन गावैं गीत ४१६
चले चले आए तिस ठांउ । जहां बसै चोरन्हकौ गांउ ॥
बोला पुरुष एक तुम कौन । गए सूखि मुख पकरी मौन । ४१७

---

१ ब चलते साहिजादपुर । २ अ एक । ३ ब महा त्रिकट । ४ ब यहु विपता । ५ ब राति ।

इन्ह परमेसुरकी लौ धरा । वह था चोरन्हका चौधरी ॥
तब बनारसी पढ़ा [1]सिलोक । दी असीस उन दीनी धोक ॥ ४१८
कहै चौधरी आवहु पास । तुम्ह नारायण मैं तुम्ह दास ॥
आइ बसहु मेरी चौपारि । मोरे तुम्हरे बीच मुरारि ॥ ४१९
तब तीनौं नर आए तहां । दिया चौधरी थानक जहां ॥
तीनौं पुरुष भए भयभीत । हिरदैमांहि कंप मुख पीत ४२०

दोहरा

सूत काढ़ि डोरा बट्यौ, किए जनेऊ चारि ।
पहिरे तीनि तिहूं जनैं, राख्यौ एक उबारि ॥ ४२१
माटी लीनी भूमिसौं, पानी लीनौं ताल ।
बिप्र भेष तीनौं बनैं, टीका कीनौं भाल ॥ ४२२ ॥

चौपई

पहर दोइ लौं बैठे रहे । भयौ प्रात बादर पहपहे ॥
हय-आरूढ़ चौधरी-ईस । आयौ साथ और नर बीस ॥ ४२३ ॥
उनि कर जोरि नवायौ सीस । इन उठिकै दीनी आसीस ॥
कह चौधरी पंडितराइ । आवहु मारग देहुं दिखाइ ॥ ४२४ ॥
पराधीन तीनौं उठि चले । मस्तक तिलक जनेऊ गले ॥
सिरपर तीनिहु लीनी पोट । तीन कोस जंगलकी ओट ॥ ४२५ ॥
गयौ चौधरी कियौ निबाह । आई फत्तेपुरकी राह ॥
कहै चौधरी इस मगमांहि । जाहु हमहिं आग्या हम जांहि ॥४२६॥

---

१ अ तीन ।

फत्तेपुर इन्ह रूखन तले । 'चिरं जीव' कहि तीनौं चले ॥
कोस दोइ दीसै लखेरांउ । फिर द्वै कोस फतेपुर-गांउ ॥ ४२७ ॥

आइ फतेपुर लीनी ठौर । दोइ मजूर किए तहां और ॥
बहुरौं त्यागि फतेपुर-बास । गए छ कोस इलाहाबास ॥ ४२८ ॥

जाइ सराइ उतारा लिया । गंगाके तट भोजन किया ॥
बानारसी नगरम गयौ । खरगसेनकौ दरसन भयौ ॥ ४२९ ॥

दौरि पुत्रनैं पकरे पाइ । पिता ताहि लीनौ उर लाइ ॥
पूछै पिता बात एकंत । कह्यौ बनारसि निज बिरतंत ॥ ४३० ॥

सुतके बचन हिएमैं धरे । खाइ पछार भूमि गिरि परे ॥
मूर्छागति आई ततकाल । सुखमैं भयौ ऊचलाचाल ॥ ४३१ ॥

घरी चारि लौं बेसुध रहे । स्वासा जगी फेरि लहलहे ॥
बानारसी नरोत्तमदास । डोली करी इलाहाबास ॥ ४३२ ॥

खरगसेन कीनैं असवार । बेगि उतारे गंगापार ॥
तीनौं पुरुष पियादे पाइ । चले जौनपुर पहुंचे आइ ॥ ४३३ ॥
बानारसी नरोत्तम मित्त । चले बनारसि बनज-निमित्त ॥
जाइ पास-जिन पूजा करी । ठाढ़े होइ बिरति उच्चरी ॥४३४॥

अडिल्ल

सांझसमै दुविहार, प्रात नौकारसहि ।
एक अथेला पुन्न, निरंतर नेम गहि ॥
नौकरवाली एक जाप, नित कीजिए ।
दोष लगै परभात, तौ घीउ न लीजिए ॥ ४३५ ॥

---

१ ब लखगांव । २ ब भाय ।

दोहरा

मारग बरत जथासकति, सब चौदसि उपवास ।
साखी कीनैं[1] पास जिन, राखी हरी पचास ॥ ४३६ ॥

दोइ बिवाह सुरित (?) द्वै, आगैं करनी और ।
परदारा-संगति तजी, दुहू मित्र इक ठौर ॥ ४३७ ॥

सोलह सै इकहत्तरे, सुकल पच्छ बैसाख ।
बिरति धरी पूजा करी, मानहु पाए लाख ॥ ४३८ ॥

चौपई

पूजा करि आए निज थान । भोजन कीना खाए पान ॥
करै कछू ब्यौपार विसेख । खरगसेनकौ आयौ लेख ॥ ४३९ ॥

चीठीमांहि बात बिपरीत । बांचन लागे दोऊ मीत ॥
बानारसीदासकी बाल । खैराबाद हुती पिउसाल ॥ ४४० ॥

ताके पुत्र भयौ तीसरौ । पायौ सुख तिनि दुख बीसरौ ॥
सुत जनमैं दिन पंद्रह हुए । माता बालक दोऊ मुए ॥ ४४१ ॥

प्रथम बहूकी भगिनी एक । सो तिन भेजी कियौ विवेक ।
नाऊं[2] आनि नारिअर दियौ । सो हम भले मूहूरत लियौ ॥४४२

एक बार ए दोऊ कथा । संडासी लुहारकी जथा ॥
छिनमंहि अगिनि छिनक जलपात । त्यौं यह हरख-शोककी बात ।

यह चीठी बांची तब दुहूं । जुगुल मित्र रोए करि उहूं ॥
बहुतै रुदन बनारसि कियौ । चुप ह्वै रहे कठिन करि हियौ ॥ ४४४

---

१ अ कीने । २ ब नापित तिलक आनि कर कियौ ।

बहुरौं लागे अपने काज । रोजगारकौ करन इलाज ।
लैंहि दैंहि थोरा अरु घना । चूंनी मानिक मोती पना ॥ ४४५ ॥
कबहूं एक जौनपुर जाहि । कबहूं रहै बनारसमाहि ।
दोऊ सकृत रहैं इक ठौर । ठानहिं भिन्न भिन्न पग दौर ॥ ४४६ ॥
करहिं मसक्कति आलस नांहि । पहर तीसरे रोटी खांहि ॥
मास छ सात गए इस भांति । बहुरौं कछु पकरी उपसांति ॥४४७
थोरा दौरहि खाइ सबार । ऐसी दसा करी करतार ॥
चीनी किलिच खान उमराउ । तिन बुलाइ दीयौ सिरपाउ ॥४४८

दोहरा

बेटा बड़ो किलीचकौ, च्यार हजारी मीर ।
नगर जौनपुरकौ धनी, दाता पंडित बीर ॥ ४४९ ॥
चीनी किलिच बनारसी, दोऊ मिले बिचित्र ।
वह यासौं किरिपा करै, यह जानै मैं मित्र ॥ ४५० ॥
एहि बिधि बीते बहुत दिन, बीती दसा अनेक ।
बैरी पूरब जनमकौ, प्रगट भयौ नर एक ॥ ४५१ ॥
तिनि अनेक बिधि दुख दियौ, कहौं कहां लौं सोइ ।
जैसी उनि इनसौं करी, ऐसी करै न कोइ ॥ ४५२ ॥

चौपई

बानारसी नरोत्तमदास । दुहुकौं लेन न देइ उसास ॥
दोऊ खेद खिन्न तिनि किए । दुख भी दिए दाम भी लिए ॥४५३
मास दोइ बीते इस बीच । कहूं गयौ थौ चीनि किलीच ॥
आयौ गढ़ मौवासा जीति । फिरि बनारसीसेती प्रीति ॥ ४५४ ॥

दोहरा

कबहुं नाममाला पढ़ै, छंद कोस स्रुतबोध ।
करै कृपा नित एकसी, कबहुं न होइ विरोध ॥ ४५५ ॥

चौपई

बानारसी कही किछु नांहि । पै उनि भय मानी मनमांहि ॥
तब उन पंच बदे नर च्यारि । तिन्ह चुकाइ दीनी यह रारि ॥४५६
चूक्यौ झगरा भयौ अनंद । ज्यौं सुछंद खग छूटत फंद ॥
सोलह सै बहत्तरै बीच । भयौ कालबस चीनि किलीच ॥ ४५७ ॥
बानारसी नरोत्तमदास । पटनें गए बनजकी आस ॥
मास छ सात रहे उस देस । थोरा सौदा बहुत किलेस ॥ ४५८ ॥
फिरि दोऊ आए निज ठांउ । बानारसी जौनपुर गांउ ॥
इहां बनज कीनौ अधिकाइ । गुपत बात सो कही न जाइ ॥ ४५९ ॥

दोहरा

आउ बित्त निज गृहचरित, दान मान अपमान ।
औषध मैथुन मंत्र निज, ए नव अकह-कहान ॥ ४६० ॥

चौपई

तातैं यह न कही विख्यात । नौ बातन्हमैं यह भी बात ॥
कीनी बात भली अरु बुरी । पटनें कासी जौनापुरी ॥ ४६१ ॥
रहे बरस द्वै तीनिहु ठौर । तब किछु भई औरकी और ॥
आगानूर नाम उमराउ । तिसकौं साहि दियौ सिरपाउ ॥ ४६२ ॥
सो आवतौ सुन्यौ जब सोर । भागे लोग गए चहु ओर
तब ए दोऊ मित्र सुजान । आए नगर जौनपुर थान ॥ ४६३ ॥

---

१ स प्रतिमें यह पंक्ति नहीं है ।

घरके लोग कहूं छिपि रहे । दोऊ यार उतर दिसि बहे ॥
दोऊ मित्र चले इक साथ । पांउ पियादे लाठी हाथ ॥ ४६४ ॥
आए नगर अजोध्यामांहि । कीनी जात रहे तहां नांहि ॥
चले चले रौनांही[१] गए । धर्मनाथके सेवक भए ॥ ४६५ ॥

दोहरा

पूजा कीनी भगतिसौं, रहे गुपत दिन सात ।
फिरि आए घरकी तरफ, सुनी पंथमंह बात ॥ ४६६ ॥
आगानूर बनारसी, और जौनपुर बीच ।
कियौ उदंगल बहुत नर, मारे करि अधमीच ॥ ४६७ ॥
हक नाहक पकरे सबै, जड़िया कोठीवाल ।
हुंडीबाल सराफ नर, अरु जौंहरी दलाल ॥ ४६८
काहू मारे कोररा, काहू बेड़ी पाइ ।
काहू राखे भाखसी, सबकौं देइ सजाइ ॥ ४६९

चौपई

सुनी बात यह पंथिक पास । बानारसी नरोत्तमदास ।
घर आवत हे दोऊ मीत । सुनि यह खबरि भए भयभीत ॥ ४७०
सुरहुरपुरकौं[२] बहुरौं फिरे । चढ़ि घड़नाई सरिता तिरे ।
जंगलमाहिं हुतौ मौवास । जहां जाइ करि कीनौ बास ॥ ४७१
दिन चालीस रहे तिस ठौर । तब लौं भई औरकी और ॥
आगानूर गयौ आगरे । छोड़ि दिए प्रानी नागरे ॥ ४७२
नर द्वै चारि हुते बहुधनी । तिन्हकौं मारि दई अति घनी ॥
बांधि लै गयौ अपने साथ । हक नाहक जानै जिननाथ ॥ ४७३

---

१ स रोनाई । २ ब सुरहुरपुरसौं ।

इस अन्तर ए दोऊ जनें । आए निरभय घर आपनें ।
सब परिवार भयौ एकत्र । आयौ सबलसिंघकौ पत्र ।। ४७४
सबलसिंघ मौठिआ मसंद । नेमीदास साहुकौ नंद ।।
लिख्यौ लेख तिन अपने हाथ । दोऊ साझी आवहु साथ ।। ४७५

दोहरा

अब पूरबमैं जिनि रहौ, आवहु मेरे पास ।
यह चीठी साहू लिखी, पढ़ी बनारसिदास ।। ४७६
और नरोत्तमके पिता, लिख दीनौ बिरतंत ।
सो कागद आयौ गुपत, उनि बांच्यौ एकंत ।। ४७७
बांचि पत्र बानारसी, के कर दीनौ आनि ।
बांचहु ए चाचा लिखे, समाचार निज पानिं ।। ४७८
पढ़ने लगे बानारसी, लिखी आठ दस पांति ।
हेम खेम ताके तले, समाचार इस भांति ।। ४७९
खरगसेन बानारसी, दोऊ दुष्ट विशेष ।
कपटरूप तुझकौं मिले, करि धूरतका भेषं ।। ४८०
इनके मत जो चलहिगा, तौ मांगहिगा भीख ।
तातैं तू हुसियार रहु, यहै हमारी सीख ।। ४८१
समाचार बानारसी, बांचे सहज सुभाउ ।
तब सु नरोत्तम जोरि कर, पकरे दोऊ पाउ ।। ४८२
कहै बनारसिदाससौं, तू बंधव तू तात ।
तू जानहि उसकी दसा, क्या मूरखकी बात ।। ४८३

---

१ ऊपरके 'पढ़न लगे' से लेकर यहाँ तककी ये चार पंक्तियाँ अ प्रतिमें ४८१ के बाद लिखी हैं ।

तब दोऊ खुसहाल है, मिले होइ इक चित्त ।
तिस दिनसौं बानारसी, नित्त सराहै मित्त ॥ ४८४

रीझि नरोत्तमदासकौ, कीनौ एक कवित्त ।
पंढ़ै रैन दिन भाटसौ, घर बजार जित कित्त ॥ ४८५

सवैया इकतीसा

नरोत्तमदासस्तुति—

नवपद ध्यान गुन गान भगवंतजीकौ,
करत सुजान दिढ़ग्यान जग मानियै ॥
रोम रोम अभिराम धर्मलीन आठौ जाम,
रूप-धन-धाम काम-मूरति बखानियै ॥
तनकौ न अभिमान सात खेत देत दान,
महिमान जाके जसकौ बितान तानियै ।
महिमानिधान प्रान प्रीतम बनारसीकौ,
चहुपद आदि अच्छरन्ह नाम जानियै ॥ ४८६

चौपई

बानारसि चिंतै मनमांहि । ऐसो मित्त जगतमैं नांहि ॥
इस ही बीच चलनकौ साज । दोऊ सोझी करहिं इलाज ॥ ४८७
खग्गसेनजी ज़हमति परे । आइ असाधि बैदनैं करे ॥
बानारसी नरोत्तमदास । लाहनि कछु कराई तास ॥ ४८८
संबत तिहत्तरे बैसाख । सातैं सोमवार सित पाख ॥
तब साझेका लेखा किया । सब असबाब बांटिकै लिया ॥ ४८९

२ अ पढ़ै रातदिन एकसौ । ३ अ साजी, ब सायी ।

दोहरा

दोइ रोजनामैं किए, रहे दुहूके पास ।
चले नरोत्तम आगरै, रहे बनारसिदास ॥ ४९०

रहे बनारसि जौनपुर, निरखि तात बेहाल ।
जेठ अंधेरी पंचमी, दिन बितीत निसिकाल ॥ ४९१

खरगसेन पहुचे सुरग, कहवति लोग विख्यात ।
कहां गए किस जोनिमैं, कहै केवली बात ॥ ४९२

कियौ सोक बानारसी, दियौ नैन भरि रोइ ।
हियौ कठिन कीनौ सदा, जियौ न जगमैं कोइ ४९३

चौपई

मास एक बीत्यौ जब और । तब फिरि करी बनजकी दौर ॥
हुंडी लिखी, रजत सै पंच । लिए, करन लागे पट संच ॥ ४९४

पट खरीदि कीनौं एकत्र । आयौ बहुरि साहुकौ पत्र ।
लिखा सिंघजी चीठीमाहिं । तुझ बिनु लेखा चूकै नाहिं ४९५

तातैं तू भी आउ सिताब । मैं बूझौं सो देहि जुवाब ॥
बानारसी सुनत बिरतंत । तजि कपरा उठि चले तुरंत ॥ ४९६

बांभन एक नाम सिवराम । सौंप्यौ ताहि बस्त्रका काम ।
मास असाढ़मांहि दिन भले । बानारसी आगरै चले ॥ ४९७

दोहरा

एक तुरंगम नौ नफर, लीनें साथि बनाइ ।
नांउ घैसुआ गांउमैं, बसे प्रथम दिन आइ ॥ ४९८

ताही दिन आयौ तहां, और एक असबार।
कोठीवाल महेसुरी, बसै आगरै बार ॥ ४९९

चौपई

षट सेबक इक साहिब सोइ। मथुराबासी बांभन दोइ ॥
नर उनीसकी जुरी जमांति। पूरा साथ मिला इस भांति ॥ ५००
कियौ कौल उतरहिं इकठौर। कोऊ कहूं न उतरै और ॥
चले प्रभात साथ करि गोल। खेलहिं हंसहिं करहिं कलोल ॥५०१

दोहरा

गांउ नगर उलंघि बहु, चलि आए तिस ठांउ।
जहां घाटमपुरके निकट, बसै कोररा[१] गांउ ॥ ५०२
उतरे आइ सराइमैं, करि अहार विश्राम।
मथुरावासी बिप्र द्वै, गए अहीरी-धाम ॥ ५०३
दुहुमैं बांभन एक उठि, गयौ हाटमैं जाइ।
एक रुपैया काढ़ि तिनि, पैसा लिए भनाइ[२] ॥ ५०४
आयौ भोजन साज ले, गयौ अहीरी-गेह।
फिरि सराफ आयौ तहां, कहै[३] रुपैया एह ॥ ५०५
गैरसाल है बदलि दै, कहै बिप्र मम नांहि।
तेरा तेरा यौं कहत, भई कलह दुहुमांहि ॥ ५०६
मथुराबासी विप्रनैं, मार्‍यौ बहुत सराफ।
बहुत लोग बिनती करी, तऊ करै नहिं माफ ॥ ५०७

१ ब कोरड़ा। २ ब भुनाय। ३ ब कह्यौ।

भाई एक सराफकौ, आइ गयौ इस बीच ।
मुख मीठी बातें करै, चित कपटी नर नीच ॥ ५०८
तिन बांभनके बस्त्र सब, टेकटोहे करि रीस ।
लखे रुपैया गांठिमैं, गिनि देखे पचीस ॥ ५०९
सबके आगै फिरि कहै, गैरसाल सब दर्व ।
कोतवालपै जाइकै, नजरि गुजारौ सर्व ॥ ५१०
विप्र जुगल मिसु करि परे, मृतकरूप धरि मौन ।
बनिया सबनि दिखाइ लै, गयौ गांठि निज भौन ॥ ५११
खरे दाम घरमैं धरे, खोटे ल्यायौ जोरि ।
मिही कोथैलीमांहि भरि, दीनी गांठि मरोरि ॥ ५१२ ॥
लेइ कोथली हाथमैं, कोतवालपै जाइ ।
खोटे दाम दिखाइकै, कही बात समुझाइ ॥ ५१३ ॥

चौपई

साहिबजी ठग आये घनें । फैले फिरहिं जांहि नहिं गनें ॥
संध्यासमै हौंहि इक ठौर । ह्वै असवार करहु तब दौर ॥ ५१४ ॥
यह कहि बनिक निरौलो भयौ । कोतवाल हाकिमपै गयौ ॥
कही बात हाकिमके कान । हाकिम साथ दियौ दीवान ॥ ५१५ ॥
कोतवाल दीवान समेत । सांझ समै आए ज्यौं प्रेत ।
पुरजन लोक साथि सै चारि । जनु सराइमैं आई धारि ॥ ५१६ ॥
बैठे दोऊ खाट बिछाइ । बांभन दोऊ लिए बुलाइ ।
पूछै मुगल कहहु तुम कौन । कहै विप्र मथुरा मम भौन ॥ ५१७ ॥

१ अ एकटोहे । २ ड ई कोथरी । ३ ड निरासौ ।

फिरि महेसरी लियौ बुलाय । कहं तू जाहि कहांसौं आइ ॥
तब सो कहे जौनपुर गांउ । कोठीवाल आगरे जांउ ॥ ५१८ ॥
फिरि बनारसी बोलै बोल । मैं जौंहरी करौं मनिमोल ।
कोठी हुती बनारसमांहि । अब हम बहुरि आगरे जांहि ॥ ५१९ ॥

दोहरा

साझी नेमा साहुके, तखत जौनपुर भौन ।
ब्यौपारी जगमैं प्रकट, ठगके लच्छन कौन ॥ ५२० ॥

चौपई

कही बात जब बानारसी । तब वे कहन लगे पारसी ॥
एक कहै ए ठग तहकीक । एक कहै ब्यौपारी ठीक ॥ ५२१ ॥
कोतवाल तब कहै पुकारि । बांधहु बेग करहु क्या रारि ॥
बोलै हाकिमकौ दीवान । अहमक कोतवाल नादान ॥ ५२२ ॥
रौति समै सूझ नहिं कोइ । चोर साहुकी निरख न होइ ॥
कछु जिन कहौ रातिकी राति । प्रात निकसि आवैगी जाति॥५२३॥
कोतवाल तब कहै बखानि । तुम ढूंढ़हु अपनी पहिचानि ॥
कोररा, घाटमपुर अरु बरी । तीनि गांउकी सरियति करी ॥५२४॥
और गांउ हम मानहि नांहि । तुम यह फिकिर करहु हम जांहि ।
चले मुगल बादा बदि भोर । चौकी बैठाई चहुओर ॥ ५२५ ॥

दोहरा

सिरीमाल बानारसी, अरु महेसुरीजाति ।
करहिं मंत्र दोऊ जैनें, भई छमासी राति ॥ ५२६ ॥

---

१ ब रजनी समै न रुक है कोइ । २ अ निरत । ३ ब पुरुष ।

चौपई

पहर राति जब पिछली रही । तब महेसुरी ऐसी कही ॥
मेरो लहुरा भाई हरी । नांउ सु तौ ब्याहा है बरी ॥ ५२७ ॥
हम आए थे इहां बरात । भली यादि आई यह बात ।
बानारसी कहै रे मूढ़ । ऐसी बात करी क्यौं गूढ़ ॥ ५२८ ॥

दोहरा

तब महेसुरी यौं कहै, भयसौं भूली मोहि ।
अब मोकौं सुमिरन भई, तू निचिंत मन होहि ॥ ५२९ ॥

चौपई

तब बनारसी हरषित भयौ । कछु इक सोच रह्यौ कछु गयौ ॥
कबहू चितकी चिंता भगै । कबहू बात झूठसी लगै ॥ ५३० ॥
यौं चिंतवत भयौ परभात । आइ पियादे लागे घात ॥
सूली दै मजूरके सीस । कोतवाल भेजी उनईस ॥ ५३१ ॥
ते सराईमैं डारी आनि । प्रगट पियादे कहैं बखानि ।
तुम उनीस प्रानी ठग लोग । ए उनीस सूली तुम जोग ॥५३२॥

दोहरा

घरी एक बीते बहुरि, कोतवाल दीवान ।
आए पुरजन साथ सब, लागे करन निदान ॥ ५३३ ॥

चौपई

तब बनारसी बोलै बानि । बरीमांहि निकसी पहचानि ॥
तब दीवान कहै स्याबास । यह तो बात कही तुम रास ॥ ५३४

---

१ अ कही । २ ब भई ।

मेरे साथ चलो तुम बरी । जो किछु उहां होइ सो खरी ॥
महेसुरी हूओ असबार । अरु दीबान चला तिस लार ॥ ५३५
दोऊ जनैं बरीमैं गए । समधी मिले साहु तब भए ॥
साहु साहुघर कियौ निवास । आयौ मुगल बनारसी पास ॥ ५३६
आइ कह्यौ तुम सांचे साहु । करहु माफ यह भया गुनाहु ॥
तब बनारसी कहै सुभाउ । तुम साहिब हाकिम उमराउ ॥ ५३७
जो हम कर्म पुरातन कियौ । सो सब आइ उदै रस दियौ ॥
भावी अमिट हमारा मता । इसमैं क्या गुनाह क्या खता ॥ ५३८
दोऊ मुगल गए निज धाम । तहं बनारसी कियौ मुकाम ।
दोऊ बांभन ठाढ़े भए । बोलहिं दाम हमारे गए ॥ ५३९

दोहरा

पहर एक दिन जब चढ़्यौ, तब बनारसीदास ।
सेर छ सात फुलेल ले, गए मुगलके पास ॥ ५४०
हाकिमकौं दीबानकौं, कोतवालके गेह ।
जथाजोग सबकौं दियौ, कीनौं सबसन नेह ॥ ५४१
तब बनारसी यौं कहै, आजु सराफ ठगाइ ।
गुनहगार कीजै उसहि, दीजै दाम मंगाइ ॥ ५४२
कहै मुगल तुझ बितु कहैं, मैं कीन्हौ उस खोज ।
वह निज सबै ही साथ लै, भागा उस ही रोज ॥ ५४३

सोरठा

मिला न किस ही ठौर, तुम निज डेरे जाइ करि ।
सिरिनी बांटहु और, इन दामनिकी क्या चली ॥ ५४४

१ अ वसही साखि ।

चौपई

तब बनारसी चिंतै आम । विना जोर नहिं आवहि दाम ।
इहां हमारा किछु न बसाय । तातैं बैठि रहै घर जाय ॥ ५४५

दोहरा

यह विचार करि कीनी दुवा । कही जु होना था सो हुवा ॥
आए अपने डेरेमांहि । कही बिप्रसौं दमिका (?) नाहिं ॥ ५४६
भोजन कीनौ सबनि मिलि, हूऔ संध्याकाल ।
आयौ साहु नहेसुरी, रहे राति खुसहाल ॥ ५४७

चौपई

फिरि प्रभात उठि मारग लगे । मनहु कालके मुखसौं भगे ॥
दूजै दिन मारगके बीच । सुनी नरोत्तम हितकी मीच ॥ ५४८

दोहरा

चीठी बैनीदासकी, दीनी काहू आनि ।
बांचत ही मुरछा भई, कहूं पांउ कहुं पानि ॥ ५४९
बहुत भांति बानारसी, कियौ पंथमैं सोग ।
समुझावै मानै नहीं, घिरे आइ बहु लोग ॥ ५५०
लोभ मूल सब पापकौ, दुखकौ मूल सनेह ।
मूल अजीरन ब्याधिकौ, मरन मूल यह देह ॥ ५५१
ज्यौं त्यौं कर समुझे बहुरि, चले होहि असवार ।
क्रम क्रम आए आगरै, निकट नदीके पार ॥ ५५२
तहां बिप्र दोऊ भए, आड़े मारग बीच ।
कहहिं हमारे दाम बिनु, भई हमारी मीच ॥ ५५३

१ ड अ देखत । २ अ सब ।

चौपई

कही सुनी बहुतेरी बात। दोऊ बिप्र करैं अपघात ॥
तब बनारसी सोचि बिचारि। दीनैं[1] दामनि मेटी रारि ॥ ५५४

दोहरा

बारह दिए महेसुरी, तेरह दीनैं आप।
बांभन गए असीस दै, भए बनिक निष्पाप ॥ ५५५
अपने अपने गेह सब, आए भए निचीत।
रोएं[2] बहुत बनारसी, हाइ मीत हा मीत ॥ ५५६
घरी चारि रोए बहुरि, लगे आपने काम।
भोजन करि संध्या समय, गए साहुके धाम ॥ ५५७

चौपई

आवंहि जांहि साहुके भौन। लेखा कागद देखैं[3] कौन ॥
बैठे साहु बिभौ-मदमांति। गावहिं गीत कलावत-पांति ॥ ५५८
[4]धुरै पखावज बाजै तांति। सभा साहिजादेकी भांति ॥
दीजहि दान अखंडित नित्त। कवि बंदीजन पढ़हि कबित्त ॥ ५५९
कही न जाइ साहिबी सोइ। देखत चकित होइ सब कोइ ॥
बानारसी कहै मनमांहि। लेखा आइ बना किस पांहि ॥ ५६०
सेवा करी मास द्वै चारि। कैसा बनज कहांकी रारि ॥
जब कहिए लेखेकी बात। साहु जुवाब देहि परभात ॥ ५६१
मासी घरी छमासी जाम। दिन कैसा यह जानै राम ॥
सूरज उँदै[5] अस्त है कहां। विषयी विषय-मगन है जहां ॥ ५६३

---

१ स ईं दाम जु। २ ब कीनौ रुदन बनारसी। ३ अ पूछइ। ४ इस पंक्तिसे लेकर ५६७ तककी पंक्तियाँ ब प्रतिमें नहीं हैं। ५ ब ऊगै अथवै कहां।

एहि बिधि बीते बहुत दिन, एक दिवस इस राह ।
चाचा बेनीदासके, आए अंगासाह ॥ ५६३
अंगा चंगा आदमी, सज्जन और विचित्र ।
सो बहनेऊ सिंघका, बानारसिका मित्र ॥ ५६३
तासौं कही बनारसी, निज लेखेकी बात ।
भैया, हम बहुतै दुखी, दुखी नरोत्तम तात ॥ ५६५
तातैं तुम समुझाइकै, लेखा डारहु पारि ।
अगिली फारकती लिखौ, पिछिलो कागद फारि ॥ ५६६

चौपई

तब तिस ही दिन अंगनदास । आए सबलसिंघके पास ॥
लेखा कागद लिए मंगाइ । साझा पाता दिया चुकाइ ॥ ५६७
फारकती लिखि दीनी दोइ । बहुरौ सुंखुन करै नहिं कोइ ॥
मता लिखाइ दुहूपै लिया । कागद हाथ दुहूका दिया ॥ ५६८
न्यारे न्यारे दोऊ भए । आप आपने घरै उठि गए ॥
सोलह सै तिहत्तरे साल । अगहन कृष्णपक्ष हिमकाल ॥ ५६९
लिया बनारसि डेरा जुदा । आया पुन्य करमका उदा ॥
जो कपरा था बांभन हाथ । सो उनि भेज्या आछे साथ ॥ ५७०
आई जौनपुरीकी गांठि । धरि लीनी लेखेमों सांठि ॥
नित उठि प्रात नखासे जांहि । बेचि मिलावहिं पूंजीमांहि ॥ ५७१
इस ही समय ईति बिस्तरी । परी आगरै पहिली मरी ॥
जहां तहां सब भागे लोग । परगट भया गांठिका रोग ॥ ५७२

१-२ ड फारखती । ३ ब सुपन । ४ अ घरकौं । ५ अ कालका ।

निकसै गांठि मरै छिनमांहि । काहूकी बसाइ किछु नांहि ॥
चूहे मरहिं बैद मरि जांहि । भयसौं लोग अंन नहिं खांहि ॥ ५७३

नगर निकट बांभनका गांउ । सुखकारी अजीजपुर नांउ ॥
तहां गए बानारसिदास । डेरा लिया साहुके पास ॥ ५७४

रहहिं अकेले डेरेमांहि । गर्भित बात कहनकी नांहि ॥
कुमति एक उपजी तिस थान । पूरबकर्मउदै परवांन ॥ ५७५

मरी निवर्त्त भई बिधि जोग । तब घर घर आए सब लोग ।
आए दिन केतिक इक भए । बानारसी अमरसर गए ॥ ५७६

उहां निहालचंदकौ ब्याह । भयौ बहुरि फिरि पकरी राह ।
आए नगर आगरेमांहि । सबलसिंघके आवहिं जांहि ॥ ५७७

दोहरा

हुती जु माता जौनपुर, सो आई सुत पास ।
खैराबाद बिवाहकौं, चले बनारसिदास ॥ ५७८ ॥

चौपई

करि बिवाह आए घरमांहि । मनसा भई जातकौं जांहि ॥
बरधमान कुंअरजी दलाल । चल्यौ संघ इक तिन्हके नाल ॥ ५७९

अहिछत्ता-हथनापुर-जात । चले बनारसि उठि परभात ॥
माता और भारजा संग । रथ बैठे धरि भाउ अभंग ॥ ५८० ॥

पचहत्तरे पोह सुभ घरी । अहिछत्तेकी पूजा करी ॥
फिरि आए हथनापुर जहां । सांति कुंथु अर पूजे तहां ॥ ५८१

१ ब दयाल ।

दोहरा

सांति-कुंथ-अरनाथकौ, कीनौ एक कवित्त ।
ताकौं पढ़ै बनारसी, भाव भगतिसौं नित्त ।। ५८२

छप्पै

श्री बिससेन नरेस, सूर नृप राइ सुदंसन[1] ।
अचिरा सिरिआ देवि, करहिं जिस देव प्रसंसन ।।
तसु नंदन सारंग, छाग नंदावत लंछन ।
चालिस पैंतिस तीस, चाप काया छबि कंचन ।।
सुखरासि बनारसिदास भनि, निरखत मन आनंदई[2] ।।
हथिनापुर, गजपुर, नागपुर, सांति कुंथ अर बंदई[3] ।। ५८३

चौपई

करी जात मन भयौ उछाह । फिरयौ संघ दिल्लीकी राह ।।
आई मेरठि पंथ बिचाल । तहां बनारसीकी न्हनसाल ।। ५८४ ।।
उतरा संघ कोटके तले । तब कुटुंब जात्रा करि चले ।।
चले चले आए भर कोल । पूजा करी कियौ थौ कौल ।। ५८५
नगर आगरै पहुचे आइ । सब निज निज घर बैठे जाइ ।।
बानारसी गयौ पौसाल[4] । सुनी जती श्रावककी चाल ।। ५८६
बारह ब्रतके किए कबित्त । अंगीकार किए धरि चित्त ।।
चौदह नेम संभालै नित्त । लागै दोष करै प्राछित्त ।। ५८७
नित संध्या पड़िकौना करै । दिन दिन ब्रत् बिशेषता धरै ।।
गहै जैन मिथ्यामत बमै । पुत्र एक हूवा इस समै ।। ५८८

---

१ ब सुनंदन । २ ब ई आनंदमय । ३ ब ई नंदिजय । ४ ब प्यौसाल ।

छिहत्तरे संबत आसाढ़ । जनम्यौ पुत्र धरमरुचि बाढ़ ॥
बरस एक बीत्यौ जब और । माता मरन भयौ तिस ठौर ॥ ५८९
सतहत्तरे समै मा मरी । जथासकति कछु लाहनि करी ॥
उनासिए सुत अरु तिय मुई । तीजी और सगाई हुई ॥ ५९०
बेगा साहु कूकड़ी गोत । खैराबाद तीसरी पोत ।
समय अस्सिए ब्याहन गए । आए घर गृहस्थ फिरि भए ॥५९१॥
तब तहां मिले अरथमल ढोर । करैं अध्यातम बातैं जोर ।
तिनि बनारसीसौं हित कियौ । समैसार नाटक लिखि दियौ ५९२
राजमल्लनैं टीका करी । सो पोथी तिनि आगै धरी ॥
कहै बनारससिसौं तू बांचु । तेरे मन आवेगा सांचु ॥ ५९३ ॥
तब बनारसि बांचै नित्त । भाषा अरथ बिचारै चित्त ॥
पावै नहीं अध्यातम पेच । मानै बाहिज किरिआ हेच ॥ ५९४ ॥

दोहरा

करनीकौ रस मिटि गयौ, भयौ न आतमस्वाद ।
भई बनारसिकी दसा, जथा ऊंटकौ पाद ॥ ५९५ ॥

चौपई

बहुरौं चमत्कार चित भयौ । कछु बैराग भाव परिनयौ ॥
'ग्यान-पचीसी' कीनी सार । 'ध्यान-बतीसी' ध्यान विचार[1] ५९६
कीनैं 'अध्यातमके गीत' । बहुत कथन बिबहार-अतीत ॥
'सिवमंदिर' इत्यादिक और । कबित अनेक किए तिस ठौर ५९७
जप तप सामायिक पड़िकौन । सब करनी करि डारी बौन ।
हरी-बिरति लीनी थी जोइ । सोऊ मिटी न परमिति कोइ ॥ ५९८

१ अ उदार । २ ब और ।

ऐसी दसा भई एकंत । कहौं कहां लौं सो बिरतंत ॥
बिनु आचार भई मति नीच । सांगानेर चले इस बीच ॥ ५९९
बानारसी बराती भए । तिपुरदासकौं ब्याहन गए ॥
ब्याहि ताहि आए घरमांहि । देवचढ़ाया नेवज खांहि ६००
कुमती चारि मिले मन मेल । खेला पैजांरहुका खेल ॥
सिरकी पाग लैंहि सब छीनि । एक एककौं मारहिं तीनि ॥ ६०१

दोहरा

चन्द्रभान बानारसी, उदैकरन अरु थान ।
चारौं खेलहिं खेल फिरि, करहिं अध्यातम ग्यान ॥ ६०२
नगन हौंहिं चारौं जनें, फिरहिं कोठरीमांहि ।
कहहिं भए मुनिराज हम, कछु परिग्रह नांहि ॥ ६०३
गनि गनि मारहिं हाथसौं, मुखसौं करहिं पुकार ।
जो गुंमान हम करैंतहे, ताके सिर पैजार ॥ ६०४
गीत सुनैं बातैं सुनैं, ताकी बिंग बनाइ ।
कहैं अध्यातममैं अरथ, रहैं मृषा लौ लाइ ॥ ६०५

चौपई

पूरब कर्म उदै संजोग । आयौ उदय असाता भोग ।
तातैं कुमत भई उतपात । कोऊ कहै न मानै बात ॥ ६०६
जब लौं रही कर्मबासना । तब लौं कौन बिथा नासना ॥
असुभ उँदय जब पूरा भया । सहजहि खेल छूटि तब गया ॥ ६०७
कहहिं लोग श्रावक अरु जती । बानारसी खोसँरामती ॥
तीनि पुरुषकी चलै न बात । यह पंडित तातैं विख्यात ॥ ६०८

---

१ ब ई पादत्राण । २ अ गुनमान । ३ अ कर गहे, इ करत है । ४ ब करम ।
५ ड खुसरामती, ब [illegible]रामती, ई [illegible]रामती ।

निंदा थुति जैसी जिस होइ। तैसी तासु कहै सब कोइ ॥
पुरजन बिना कहे नहि रहै। जैसी देखै तैसी कहै ॥ ६०९

दोहरा

सुनी कहै देखी कहै, कलपित कहै बनाइ।
दुराराधि ए जगत जन, इन्हसौं कछु न बसाइ ॥ ६१०

चौपई

जब यह धूमधाम मिटि गई। तब कछु और अवस्था भई ॥
जिनप्रतिमा निंदै मनमांहि। मुखसौं कहै जो कहनी नांहि। ६११
करै बरत गुरु सनमुख जाइ। फिरि भानहि अपने घर आइ ॥
खाहि रात दिन पसुकी भांति। रहै एकंत मृषामदमांति ॥ ६१२

दोहरा

यह बनारसीकी दसा, भई दिनहु दिन गाढ़।
तब संबत चौरासिया, आयौ मास असाढ़ ॥ ६१३
भयौ तीसरी नारिकै, प्रथम पुत्र अवतार।
दिवस कैकु रहि उठि गयौ, अलपआयु संसार ॥ ६१४

चौपई

छत्रपति जहांगीर दिल्लीस। कीनौ राज बरस बाईस ॥
कासमीरके मारग बीच। आवत हुई अचानक मीच ॥ ६१५
मासि चारि अंतर परवांन। आयौ साहिजिहां सुलतान।
बैठ्यौ तखत छत्र सिर तानि। चहू चक्कमैं फेरी आनि ॥ ६१६

१ ब आव।

दोहरा

सौलह सै चौरासिए, तखत आगरे थान ।
बैठ्यौ नाम धराय प्रभु, साहिब साहि किरान ॥ ६१७
फिरि संबत पच्चासिएँ[1], बहुरि दूसरी बार ।
भयौ बनारसिके सदन, दुतिय पुत्र अवतार ॥ ६१८

चोपई

बरस एक द्वै अंतर काल । कैथा-शेष[2] हूऔ सो बाल ।
अलप आउ है आवहिं जांहि । फिर सतासिए संबतमांहि ॥ ६१९
बानारसीदास आबास । त्रितिय पुत्र हूऔ परगास ॥
उनासिए पुत्री अवतरी । तिन आऊषा पूरी करी ॥ ६२०
सब सुत सुता मरनपद गहा । एक पुत्र कोऊँ[3] दिन रहा ॥
सो भी अलप आउँ[4] जानिए । तातैं मृतकरूप मानिए ॥ ६२१
क्रम क्रम बीत्यौ इक्यानवा । आयौ सोलहसै बानवा ॥
तब ताईं धरि पहिली दसा । बानारसी रह्यौ इकरसा ॥ ६२२

दोहरा

आदि अस्सिआ बानवा, अंत बीचकी बात ।
कछु औरौं बाकी रही, सो अब कहौं बिख्यात ॥ ६२३
चले बरात बनारसी, गए चाटसू गांउ ।
बच्छा-सुतकौं व्याहकै, फिरि आए निज ठांउ ॥ ६२४
अरु इस बीचि कबीसुरी, कीनी बँहुरि[5] अनेक ।
नाम 'सुक्तिमुकतावली,' किए कबित सौ एक ॥ ६२५

---

१ ई स पिच्चासिए । २ ड कथासेष । ३ ई स कोई । ४ ड आयु ।
५ य ड बहुत ।

' अध्यातम बत्तीसिका, ' ' पैड़ी ' ' फागु धमाल ' ।
कीनी ' सिंधुचतुर्दसी, ' फूटक कबित रसाल ॥ ६२६
' शिवपच्चीसी ' भावना, ' सहस अठोत्तर नाम । '
' करमछतीसी ' ' झूलना ', अंतर रावन राम ॥ ६२७
बरनी ' आंखैं दोइ बिधि, ' करी ' बचनिका ' दोइ ।
' अष्टक ' ' गीत ' बहुत किए, कहौं कहा लौं सोइ ॥ ६२८
सोलह सै बानवै लौं, कियौ नियत-रस-पान ।
पै कवीसुरी सब भई, स्यादवाद-परवांन ॥ ६२९
अनायास इस ही समय, नगर आगरे थान ।
रूपचंद पंडित गुनी, आयौ आगम-जान ॥ ६३०

चोपई

तिहुना साहु देहुरा किया । तहां आइ तिनि डेरा लिया ॥
सब अध्यातमी कियौ बिचार । ग्रंथ बंचायौ गोमटसार ॥ ६३१
तामैं गुनथानक परवांन । कह्यौ ग्यान अरु क्रिया-बिधान ।
जो जिय जिस गुन-थानक होइ । तैसी क्रिया करै सब कोइ ॥ ६३२
भिन्न भिन्न बिबरन बिस्तार । अंतर नियत बहिर बिबहार ॥
सबकी कथा सबै बिधि कही । सुनिकै संसै कछुव न रही ॥ ६३३
तब बनारसी औरै भयौ । स्यादबाद परिनति परिनयौ ॥
पांड़े रूपचंद गुर पास । सुन्यौ ग्रंथ मन भयौ हुलास ॥ ६३४
फिरि तिस समै बरस द्वै बीच । रूपचंदकौं आई मीच ॥
सुनि सुनि रूपचंदके बैन । बानारसी भयौ दिढ़ जैन ॥ ६३५

१ अ तिहिना साह । २ ड स सिव ।

दोहरा

तब फिरि और कबीसुरी, करी अध्यातममांहि
यह वह कथनी एकसी, कहुं बिरोध किछु नांहि ॥ ६३६

हृदैमांहि कछु कालिमा, हुती सरदहन बीच ।
सोऊ मिटि समता भई, रही न ऊंच न नीच ६३७

चोपई

अब सम्यक दरसन उनमान । प्रगट रूप जानै भगवान ॥
सोलह सै तिरानवै बर्ष । समैसार नाटक धरि हर्ष ॥ ६३८
भाषा कियौ भानके सीस । कवित सातसै सत्ताईस
अनेकांत परनति परिनयौ । संवत आइ छानवा भयौ ७३९
तब बनारसीके घर बीच । त्रितियं पुत्रकौं आई मीच
बानारसी बहुत दुख कियौ । भयौ सोकसौं ब्याकुल हियौ ६४०
जगमैं मोह महा बलबान । करै एक सम जान अजान ।
बरस दोइ बीते इस भांति । तऊ न मोह होइ उपसांति ६४१

दोहरा

कैही पचावन बरस लौं, बानारसिकी बात ।
तीनि बिवाहीं भारजा, सुता दोइ सुत सात ॥ ६४२ ॥

नौ बालक हूए मुए, रहे नारि नारि नर दोइ ।
ज्यौं तरवर पतझार है, रहैं ठूंठसे होइ ॥ ६४३ ॥

तत्त्वदृष्टि जो देखिए, सत्यारथकी भौंति ।
ज्यौं जाकौ परिगह घटै, त्यौं ताकौं उपसांति ॥ ६४४ ॥

१ ब चरम । २ यह पद्य अ प्रतिमें नहीं है । ३ ब बात ।

संसारी जानै नहीं, सत्यारथकी बात।
परिगहसौं मानै बिभौ, परिगह बिन उतपात ॥ ६४५ ॥
अब बनारसीके कहौं, बरतमान गुन दोष।
विद्यमान पुर आगरे, सुखसौं रहै सजोष ॥ ६४६ ॥

चौपई

भाषाकबित अध्यातममांहि। पटतर[1] और दूसरौ नांहि ॥
छमावंत संतोषी भला। भली कबित पढ़िवेकी कला ॥ ६४७ ॥
पढ़ै संसकृत प्राकृत सुद्ध। विविध-देसभाषा-प्रतिबुद्ध ॥
जानै सबद अरथकौ भेद। ठानै नही जगतकौ खेद ॥ ६४८ ॥
मिठबोला सबहीसौं प्रीति। जैन धरमकी दिढ़ परतीति ॥
सहनसील नहिं कहै कुबोल। सुथिरचित्त नहिं डावांडोल ॥६४९॥
कहै सबनिसौं हित उपदेस। हृदै सुष्ट न दुष्टता लेस ॥
पररमनीकौ त्यागी सोइ। कुबिसन और न ठानै कोई ॥ ६५० ॥
हृदय[2] सुद्ध समकितकी टेक। इत्यादिक गुन और अनेक ॥
अलप जघन्न कहे गुन जोइ। नहि उतकिष्ट न निर्मल कोइ ॥ ६५१

अथ दोषकथन

कहे बनारसिके गुन जथा। दोषकथा अब बरनौं तथा।
क्रोध मान माया जलरेख। पै लछिमीकौ लोभ[3] बिसेख ॥ ६५२ ॥
पोतै हास कर्मकौ[4] उदा। घरसौं हुवा न चाहै जुदा ॥
करै न जप तप संजम रीति। नही दान-पूजासौं प्रीति ॥ ६५३ ॥

१ ड पंडेत। २ ब हिये। ३ अ मोह। ४ अ कर्म दा।

थोरे लाभ हरख बहु धरै । अलप हानि बहु चिंता करै ॥
मुख अवद्य भाषत न लजाइ । सीखै भंडकला मनै लाइ ॥ ६५४ ॥
भाखै अकथकथा बिरतंत । ठानै नृत्य पाइ एकंत ॥
अनदेखी अनसुनी बनाइ । कुकथा कहै सभामंहि आइ ॥ ६५५ ॥
होइ निमग्न हास रस पाइ । मृषावाद बिनु रहा न जाइ ॥
अकस्मात भय ब्यापै घनी । ऐसी दसा आइ करि बनी ॥ ६५६ ॥
कबहूं दोष कबहुं गुन कोइ । जाकौ उदौ सो परगट होइ ॥
यह बनारसीजीकी बात । कही थूल जो हुती विख्यात ॥ ६५७ ॥
और जो सूछम दसा अनंत । ताकी गति जानै भगवंत ।
जे जे बातैं सुमिरन भई । तेते बचनरूप परिनंई ॥ ६५८ ॥
जे बूझी प्रमाद इह मांहि । ते काहूपै कही न जांहि ॥
अलप थूल भी कहै न कोइ । भाषै सो जु केवली होइ ६५९

दोहरा

एक जीवकी एक दिन, दसा होहि जेतीक ।
सो कहि सकै न केवली, जानै जद्यपि ठीक । ६६० ।
मनपरजैधर अवधिधर, करहिं अलप चिंतौन ।
हमसे कीट पतंगकी, बात चलावै कौन । ६६१ ।
तातैं कहत बनारसी, जीकी दसा अपार[3] ।
कछ थूलमैं थूलसी, कही बहिर बिबहार । ६६२
बरस पंच पंचास लौं, भाख्यौ निज बिरतंत ।
आगै भावी जो कथा, सो जानै भगवंत । ६६३

१ अ पन । २ ड व बूड़े । ३ अ रसाल ।

बरस पचाबन ए कहे, बरस पचाबन और ।
बाकी मानुष आउमैं, यह उतकिष्टी दौर । ६६४

बरस एक सौ दस अधिक, परमित मानुष आउ ।
सोलहसै अट्ठानबै, समै बीच यह भाउ ॥ ६६५

तीनि भांतिके मनुज सब, मनुजलोकके बीच ।
बरतहिं तीनौं कालमैं, उत्तम, मध्यम, नीच ॥ ६६६

अथ उत्तम नर यथा—

जे परदोष छिपाइकै, परगुन कहैं विशेष ।
गुन तजि निज दूषन कहैं, ते नर उत्तम भेष ॥ ६६७

अथ मध्यम नर यथा—

जे भाखहिं पर-दोष-गुन, अरु गुन-दोष सुकीउ ।
कहहिं सहज ते जगतमैं, हमसे मध्यम जीउ ॥ ६६८

अथ अधम नर यथा —

जे परदोष कहैं सदा, गुन गोपहिं उर बीच
दोष लोपि निज गुन कहैं, ते जगमैं नर नीच ६६९

सौलह सै अैट्ठानवै, संवत अगहनमास
सोमबार तिथि पंचमी, सुकल पक्ष परगास ६७०

नगर आगरेमैं बसै, जैनधर्म श्रीमाल ।
बानारसी बिहोलिआ, अध्यातमी रसाल ६७१

---

१ ड करैं । २ अ अट्ठावना, ड अट्ठानवा ।

चौपई

ताके मन आई यह बात। अपनौ चरित कहौं बिख्यात।
तब तिनि बरस पंच पंचास। परमित दसा कही मुख भास ६७२

आगै जु कछु होइगी और। तैसी समुझैंगे तिस ठौर।
बरतमान नर-आउ बखान। बरस एक सौ दस परवांन ६७३

दोहरा

तातैं अरध कथान यह, बानारसी चरित्र।
दुष्ट जीव सुनि हंसहिंगे, कहहिं सुनहिंगे मित्र॥ ६७४

सब दोहा अरु चौपई, छसै पिचंत्तरि मान।
कहहिं सुनहिं बांचहिं पढ़हिं, तिन सबकौ कल्यान॥ ६७५

ईति श्रीअर्द्धकथानक अधिकारः। सम्पूर्णः। शुभमस्तु।

संवत् १८४९ श्रावणमासे कृष्णपक्षे चतुर्दशी १४ भौमवासरे लिखितं भगवानदास भिंडमैं। राम।

---

१ अ वर। २ अ तिहत्तर जान। ३ ब इतिश्री बनारसी अवस्था संपूरणम्। मिती आसाढ़ कृष्ण ७ संवत् १९०२। श्री। स इती बानारसी अवस्था संपूरणं। ड इति श्री अर्द्धकथानक अधिकार सम्पूर्ण। श्री बनारसीदासजी-कृतिरियं। श्लोकसंख्या एक १०००। श्रीस्ताल्लेखकपाठकयोस्सदा कल्याणं भवतु। ई इति बनारसी अवस्था सम्पूर्णम्।

नाम-सूची

२—विशेष स्थानोंका परिचय

अजीजपुर=ब्राह्मणोंका गाँव। आगरेसे १० मील उत्तर पश्चिम। अब भी यहाँपर ब्राह्मणोंकी बस्ती है।

अमरसर=जयपुरसे उत्तरकी ओर २४ मील और गोविन्दगढ़ स्टेशनसे १५ मील। शेखावतोंके आदिपुरुष राव शेखाजी वि० सं० १४५५ के लगभग यहाँ गढ़ बनाकर रहे थे। श्वेताम्बर सम्प्रदायके खरतरगच्छका यह एक विशिष्ट स्थान था। यहाँ इस गच्छके जिनकुशलसूरिकी चरण-पादुका वि० सं० १६५३ में और कनकसोमकी १६६२ में स्थापित की गई थीं। कनकसोमने अपनी 'आर्द्रकुमार धमाल' की रचना यहींपर की थी। साधुकीर्ति, समयसुन्दर, विमलकीर्ति, सूरचन्द आदि और भी कई विद्वानोंकी कई छोटी बड़ी रचनायें (सं० १६३८ से १६८० तक की) मिली हैं जो इसी अमरसरमें रची गई थीं[1]।

अर्गलपुर=यह आगरेका संस्कृत रूप है। संस्कृत-लेखकोंने अक्सर इसका प्रयोग किया है। बहुतोंने इसे उग्रसेनपुर भी लिखा है[2]।

अहिछत्ता=बरेली जिलेका रामनगर। जैनोंका प्रसिद्ध अहिच्छत्र तीर्थ।

इटावा=उत्तर प्रदेशके एक जिलेका मुख्य नगर।

इलाहाबास—इलाहाबाद। जहागीरनामेमें सर्वत्र इलाहाबास ही लिखा है। साधु सौभाग्यविजयजीने अपनी तीर्थमालामें भी इलाहाबास लिखा है।

कासिवार देश=काशी जिस प्रदेशमें थी, उसका नाम।

कड़ा मानिकपुर=इलाहाबाद जिलेका इसी नामका कसबा। जिलेका नाम भी पहले यही था।

कोररा या कुर्रा=आगरेसे लगभग २० मील दूर कुर्रा चित्तरपुर नामका गाँव।

कोल, कौल=अलीगढ़का पुराना नाम। अलीगढ़की तहसीलका नाम अब भी कौल है।

खैराबाद=सीतापुर (अवध) जिलेमें लखनऊसे ४० मील।

---

१ देखो, जैनसत्यप्रकाश वर्ष ८, अंक ३ में श्री अगरचन्द नाहटाका लेख।

२ श्रीआगराख्ये आदिनगरे पुराणपुरे श्रिया आगररूपे नगरे वा उग्रसेनाह्वये, उग्रसेन कंसपिताऽत्र प्रागुवासेति प्रवासात्।—युक्तिप्रबोध पृ० ६।

घाटमपुर=कुर्रा चित्तरपुरके पास है, ज़िला कानपुर ।

घैंसुआ गाँव=जौनपुरसे आगरे जानेके रास्तेमें एक मंजिलपर ।

चाटसू=जयपुर रियासतमें इसी नामसे प्रसिद्ध स्थान ।

दिल्ली=वर्तमान देहली या दिल्ली ।

नरवर=नरपुर, नरउर, ग्वालियर राज्यका एक प्राचीन स्थान । ज्ञानार्णवकी सं० १२९४ की लिखी हुई एक प्रतिकी लेखकप्रशस्तिमें शायद इसे ही 'नृपुरी' लिखा है ।

पटना=बिहारकी राजधानी ।

परवेजका कटरा=आगरेमें इस समय इस नामका कोई कटरा नहीं है। पहले रहा होगा ।

पिरोजाबाद=फीरोजाबाद जिला आगरा ।

फतेहपुर=इलाहाबादसे छह कोस ।

बीड़ोली=बाबू उग्रसेनजी वकीलके अनुसार यह गांव करनाल जिलेमें पानीपतसे कुछ दूर जमुनाके किनारे है । रोहतकसे ३५ कोससे फासलेपर ।

बरी=कोररा, घाटमपुरके नजदीक गाँव ।

पाडलीपुर=पाटलिपुत्र या पटना (?)

मेरठि, मेरठिपुर=मेरठ, यू० पी० का प्रसिद्ध शहर ।

रोहतगपुर=रोहतक (पूर्वीय पंजाबका जिला) ।

रौनाही=नौराई (रत्नपुरी) । धर्मनाथ तीर्थंकरका जन्मस्थान । अयोध्याके पास सोहावल स्टेशनसे एक मील । यहाँ अब दो श्वेताम्बर और तीन दिगम्बर सम्प्रदायके जैन मन्दिर हैं ।

लखरांउ=फतेहपुरके पास दो कोसकी दूरीपर ।

लछिमनपुरा=बहुत करके ईस्टर्न रेल्वेकी इलाहाबाद रायबरेली लाइनका लछमनपुर नामका स्टेशन ही लछिमनपुरा है ।

सांगानेर=जयपुरके समीप ७ मीलपर ।

साहिजादपुर=इलाहाबाद जिलेमें गंगाके किनारे, दारानगरके पास । श्रीसौभाग्यविजयकृत तीर्थमालामें भी इसका उल्लेख है । वे वहाँपर गये थे—

दारानगर साहिजादपुर आया। देखी श्रावक गुरु मन भाया ॥
गंगाजीतट नगरी विशाल। .... ॥

सुरहरपुर=यह शायद जौनपुरका ही दूसरा नाम है। जौनपुरके तीसरे बादशाह ख्वाजाजहाँका दूसरा नाम मल्कि सरवर था जिसे बनारसीदासजीने सुरहर सुल्तान लिखा है। संभव है, इसी नामसे जौनपुर सुरहरपुर भी कहलाता हो। राहुलजीकी रायमें मुहम्मद तुगलकका ही दूसरा नाम जौनाशाह था और उसीके नामसे जौनपुर बसाया गया।

हथिनापुर=हस्तिनापुर। मेरठसे २० मील। जैनोंका प्रसिद्ध तीर्थस्थान।

समेतसिखर=सम्मेद शिखर, हजारीबाग जिलेका 'पारसनाथ हिल' प्रसिद्ध जैन तीर्थ।

३—सम्बन्धित व्यक्तियोंका परिचय

मुनि भानुचन्द्र

इनक़ा बनारसीदासजीने भान, भानु, भानु-सुगुरु, रविचन्द और भानुचन्द्र नामसे अनेक स्थानोंमें उल्लेख किया है[1]। ये श्वेतम्बर खरतरगच्छकी लघुशाखाके जिनप्रभसूरिके अन्वयमें हुए हैं[2]। इनके गुरुका नाम अभयधर्म उपाध्याय था।

अभयधर्म नामके एक और भी मुनि इसी खरतर गच्छमें हो गये हैं जिनके शिष्य कुशललाभ थे। कुशललाभने वि० सं० १६२४ में वीरमगाँव (गुजरात) में रहते समय 'तेजसार रासा' की रचना की थी[3]। उनका बिहार मारवाड़की ओर अधिक होता रहा है और वे निश्चय ही बनारसीदासजीके गुरु भानु-

---

१—गोयम-गणहर-पय नमौं, सुमरि सुगुरु 'रविचंद'।
सरसुति देवि प्रसाद लहि, गाऊं अजित जिनिंद ॥—बनारसीविलास १९२
'भानु' उदय दिनके समै, 'चंद'उदय निसि होत,
दोऊ जाके नाममैं, सो गुरु सदा उदोत ॥ —ब० वि० १४३
इति प्रश्नोत्तर मालिका, उद्धव-हरि-संवाद।
भाषा कहत बनारसी, 'भानुसुगुरु' परसाद ॥ —ब० वि० पृ० १८८
सँवरौ सारदसामिनि औ गुरु 'भान'।
कछु बलमा परमारथ करौ बखान !! — व० वि० प० २३८
ओंकार परनाम करि, 'भानु' सुगुरु धरि चित्त।
रचौं सुगम नामावली, बाल-विबोधनिमित्त ॥ १
जे नर राखैं कंठ निज, होइ सुमति परगास।
'भानु' सुगुरु परसादतैं, परमानंद विलास ॥—नाममाला

२—खरतरगणस्य श्राद्धः लघुशाखीयखरतरगणस्य श्रावकः।
—युक्तिप्रबोध द्वि० गाथाकी टीका

३—श्रीखरतरगच्छि सहि गुरुराय, गुरुश्रीअभयधर्मउवझाय।
सोलहसै चउवीसिमझार, श्रीवीरमपुर नयरमझार ॥ २
अविकारइं जिनपूजातणइ, वाचक कुशललाभ इमि भणइ।
—आनन्दकाव्यमहोदधि सप्तमभागकी भूमिका पृ० १५६

चन्द्रसे बहुत पहले हुए हैं। बृहत् खरतर गच्छके इन अभयधर्म उपाध्यायका स्वर्गवास १६२० के लगभग हुआ है।

स्व० पूरनचन्द नाहरके लेखसंग्रह (नं० १७६ और २६१) में संवत् १६८६ और १६८८ की प्रतिष्ठा की हुई चरणपादुकाये हैं, जो संभवतः भानुचन्द्रके गुरु अभयधर्मकी ही हैं।

अर्धकथानकमें अभयधर्म उपाध्यायका अपने दो शिष्यों—भानुचन्द्र और रामचन्द्र—के साथ जौनपुरमें आनेका उल्लेख है जिनमें भानुचन्द्रको विशेष चतुर कहा गया है। इन्हींके पास १६५७ में बनारसीदासजीने विद्या पढ़ना शुरू किया था[1]। इसके आगे कहींपर उनके साथ साक्षात् होनेका जिक्र नहीं है, परन्तु अपनी रचनाओंमें वे बराबर उनका उल्लेख करते रहे हैं। संवत् १६९३ में नाटकसमयसारकी भाषा करनेके प्रसंगमें भी उन्होंने अपनेको 'भानके सीस' कहा है[2]। भानुचन्द्रके सम्बन्धमें इससे अधिक और कुछ पता न लगा, उनकी या उनके गुरुकी कोई रचना भी नहीं मिली।

नाममाला, बनारसीविलास और अर्धकथानकमें भी बनारसीदासजीने अपने गुरुका भक्तिपूर्वक उल्लेख किया है।

पांडे राजमल्ल

बनारसीदासजीने समयसार नाटकमें लिखा है—

पांडे राजमल्ल जिनधरमी, समयसार नाटकके मरमी।
तिन गिरंथकी टीका कीनी, बालाबोध सुगम कर दीनी॥ २३॥

इसी बालबोध टीकाका उल्लेख अर्धकथानकमें भी किया है (५९२-९४) कि वि० सं० १६८० में अध्यात्म-चर्चाके प्रेमी अरथमल ढोर मिले और उन्होंने समयसार नाटककी राजमल्लकृत टीका दी और कहा कि तुम इसे पढ़ो,

---

१—खरतर अभैधरम उबझाइ, दोइ सिष्यजुत प्रकटे आइ॥ १७३
भानचंद मुनि चतुरविशेष, रामचंद बालक गृहमेष॥ १७४
भानचंदसौं भयौ सनेह, दिन पौसाल रहै निसि गेह॥ १७५
भानचंदपै विद्या सिखै.......

२—सोलहसै तिरानवे वर्ष, समैसार नाटक धरि हर्ष॥ ६३८
भाषा कियौ भानके सीस, कवित सातसौ सत्ताईस॥

इससे सत्य क्या है सो तुम्हारी समझमें आ जायगा। हमारी समझमें ये राजमल्ल वही हैं, जो जम्बूस्वामीचरित, लाटी-संहिता, अध्यात्मकमलमार्तण्ड, छन्दोविद्या (पिंगल) और पंचाध्यायी (अपूर्ण) के कर्त्ता हैं। छन्दोविद्याको छोड़कर इनके शेष सब ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

जम्बूस्वामीचरितका रचनाकाल १६३२, लाटीसंहिताका १६४१ और अध्यात्मकमलमार्तण्डका १६४४ है। छन्दोविद्याका रचनाकाल मालूम नहीं हुआ, पर वह अकबरके समयमें नागोरके महान् धनी राजा भारमल्ल श्रीमालको प्रसन्न करनेके लिए लिखा गया था। पंचाध्यायी चूँकि उनकी अपूर्ण रचना है, अतएव यह उनकी अन्तिम रचना जान पड़ती है। अरथमलने नाटक समयसारकी बालबोध टीका (भाषा) सं० १६८० में बनारसीदासजीको दी थी। अतएव वह पंचाध्यायीसे कुछ पहले ही बन गई होगी।

जम्बूस्वामीचरितकी रचना अग्रवालवंशी साहु टोडरकी प्रार्थनापर अर्गलपुर या आगरेमें, लाटीसंहिता साहु फामनके लिए वैराट नगरमें, और छन्दोविद्या महान् धनी राजा भारमल्ल श्रीमालके लिए शायद नागोरमें हुई। अध्यात्मकमलमार्तण्ड और पंचाध्यायी ये दो ग्रन्थ किसीके लिए नहीं, आत्मतुष्टिके लिए लिखे जान पड़ते हैं।

अध्यात्मकमलमार्तण्ड २५० पद्योंका छोटासा ग्रन्थ है जिसके पहले परिच्छेदमें मोक्ष और मोक्षमार्गका लक्षण, दूसरेमें द्रव्यसामान्य, तीसरेमें द्रव्यविशेष और चौथेमें सात तत्त्व नव पदार्थोंका वर्णन है और इसके पठनका फल सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होना बतलाया है। डा० जगदीशचन्द्रजी जैनने जम्बूस्वामीचरितकी प्रस्तावनामें लिखा है कि "अमृतचन्द्रसूरिके आत्मख्यातिसमयसारकी तरह इसके आदिमें भी चिदात्मभावको नमस्कार करके संसारतापकी शान्तिके लिए कविने अपने ही मोहनीय कर्मके नाशके लिए इस ग्रन्थकी रचना की है और उसमें कुन्दकुन्द आचार्य और अमृतचन्द्रको स्मरण किया है। कविने इस छोटेसे ग्रन्थमें आत्मख्यातिके ढंगपर अनेक छन्द

१-२-३—माणिक्यचन्द्र-जैनग्रन्थमाला, बम्बई द्वारा प्रकाशित।
४—सेठ नाथारंगजी गाँधी, शोलापुर द्वारा प्रकाशित।
५—देखो, अनेकान्त वर्ष ४ अंक २-४ में 'राजमल्लका पिंगल।'

अलंकार आदिसे सुसज्जित अध्यात्मशास्त्रकी अति सुन्दर रचना करके जैन साहित्यके गौरवको वृद्धिंगत किया है। ”

अर्थात् राजमल्ल अमृतचन्द्रके नाटकसमयसारके मर्मज्ञ थे और इस लिए वे ही इस बालबोधटीकाके कर्ता मालूम होते हैं। बहुत संभव है कि अध्यात्म-कमलमार्तण्डके रचनाकाल १६४४ के लगभग ही उक्त टीका लिखी गई हो।

वि० सं० १६८० में अरथमल ढोरने इस टीकाकी पोथी बनारसीदासको दी थी, और यह समय राजमल्लजीके ग्रन्थोंके रचनाकाल १६३२, १६४१ और १६४४ के साथ बेमेल नहीं जान पड़ता।

भारमल्लजी रांक्या गोत्रके श्रीमाल वणिक थे जिनको प्रसन्न करनेके लिए राजमल्लजीने छन्दोविद्याकी रचना की और बनारसीदासजी तथा अरथमलजी भी श्रीमाल थे। इसके सिवाय आगरा, वैराट आदिमें राजमल्लजीका आना जाना रहता था।

वे एक काष्ठासंघी भट्टारकके शिष्य थे। एक एक भट्टारकके अनेकों शिष्य होते थे जो अपनी आम्नायके श्रावकोंको धर्म-बोध देनेके लिए भ्रमण करते रहते थे। ये पांडे कहलाते थे, और इन्हींमेंसे गद्दीके उत्तराधिकारी चुने जाते थे। राजमल्ल इसी तरहके पांडे जान पड़ते हैं।

इनके ग्रन्थोंमें भट्टारकोंकी और उनके अनुयायी धनी श्रावकोंकी लम्बी-लम्बी प्रशस्तियाँ हैं, परन्तु इन्होंने स्वयं अपना कोई परिचय नहीं दिया कि किस जाति या कुलके थे, सिर्फ इतना लिखा है कि काष्ठासंघके भट्टारक हेमचन्द्रकी आम्नायके थे। भट्टारकोंके शिष्य हो जानेपर कुल जाति बतलानेकी कोई जरूरत ही नहीं रहती। इनके ग्रन्थोंसे यह परिचय अवश्य मिलता है कि ये बहुत बड़े विद्वान्, कवि आ...

१— स्व० ब्र० शीतलप्रसादने सन् १९२९ में इस टीकाको नाटक समय-सारके पद्य और अपना भावार्थ देकर प्रकाशित कराया था। इसमें ग्रन्थकर्त्ताकी कोई प्रशस्ति नहीं है और न रचनाकाल ही दिया है। जयपुरके भंडारोंमें इसकी कई प्रतियाँ हैं, उनमेंसे एक सं० १७४३ की और दूसरी सं० १७५८ की लिखी है। परंतु किसी प्रतिमें प्रशस्ति या रचना-काल नहीं दिया है। श्री अगरचन्दजी नाहटाने मुझे बताया कि उन्होंने एक प्रति सं० १६५७ की लिखी देखी थी।

मर्मज्ञ थे। उनकी गुरुपरम्परामें भी शायद उनकी जोड़का कोई विद्वान् नहीं था। अध्यात्म-ज्ञानके प्रभावसे उनमें उदार मतसहिष्णुता भी थी। भारमल्लजी नागोरी तपागच्छके श्वेताम्बर श्रावक थे, फिर भी उन्होंने खुले दिलसे उनकी प्रशंसा की है।

स्व० ब्र० शीतलप्रसादजीने समयसारके कलशोंकी राजमल्लीय टीकाकी प्रस्तावनामें अनेक प्रमाण देकर बतलाया है कि पंचाध्यायीके कर्त्ता और समयसार टीकाके कर्त्ता एक ही हैं। पंचाध्यायीमें कहा है—

स्पर्शरसगन्धवर्णा लक्षणभिन्ना यथा रसालफले।
कथमपि हि पृथक्कर्त्तुं न तथा शक्यास्त्वखंडदेशभाक् ॥ ८३ ॥

और बालबोध टीकामें यही बात यों कही है—

"—यथा एक आम्रफल स्पर्श रस गन्ध वर्ण विराजमान पुद्गलको पिंड छै तिहितैं स्पर्शमात्रकै विचारतां स्पर्शमात्र छै, रसमात्रकै विचारतां रसमात्र छै, गंधमात्रकै विचारणतां गंधमात्र छै, वर्णमात्रके विचारतां वर्णमात्र छै, तथा एक जीववस्तु स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव विराजमानि छै तिहितैं स्वद्रव्यरूप विचारतां स्वद्रव्यमात्र छै, स्वक्षेत्ररूप विचारतां स्वक्षेत्रमात्र छै, स्वभावरूप विचारतां स्वभावमात्र छै, तिहितैं इसौ कह्यौ जो वस्तु सो अखंडित है। अखंडित शब्दकौ इसो अर्थ छै।"

पाण्डे राजमल्लजीने अपनेको काष्ठासंघके भट्टारक हेमचन्द्रकी आम्नायका बतलाया है और उनके समयमें क्षेमकीर्ति भट्टारक विद्यमान् थे जिनकी प्रशंसा लाटीसंहिताकी प्रशस्तिमें[1] की गई है और शायद वे उन्हींके शिष्योंमेंसे एक थे और इसीसे पाण्डे कहलाते थे। उन्होंने अपने ग्रन्थ आगरा, वैराट और नागोर आदि नगरोंमें रहते हुए रचे हैं।

समयसारकलशोंकी बालबोध टीका उस समयकी जयपुर आगरा आदिकी गद्य भाषाका नमूना है। 'बनारसीविलास' के परिचयमें हमने उसके कुछ अंश दे दिये हैं।

---

१ तत्पट्टेऽस्त्यधुना प्रतापनिलयः श्रीक्षेमकीर्तिर्मुनिः,
हेयाहेयविचारचारुचतुरो भट्टारकोष्णांशुमान्।
यस्य प्रोषधपारणादिसमये पादोदबिन्दूत्करै—
र्जातान्येव शिरांसि धौतकलुषाण्याशाम्बराणां नृणाम् ॥ —लाटीसंहिता

पाण्डे रूपचन्द और पं० रूपचन्द

बनारसीदासने अपने नाटक समयसारमें उन पाँच साथियोंका उल्लेख किया है जिनके साथ बैठकर वे परमार्थकी चर्चा किया करते थे[1]— पंडित रूपचंद, चतुर्भुज, भगवतीदास, कुँवरपाल और धर्मदास। इनमें सबसे पहले पंडित रूपचंद हैं।

अर्धकथानकमें[2] एक और रूपचन्द गुरुका उल्लेख है जो संवत् १६९० के लगभग आगरेमें तिहुना साहुके मन्दिरमें आकर ठहरे थे और सब अध्यात्मीयोंने जिनसे गोम्मटसार ग्रन्थ बँचाया। ये पूर्वोक्त पाँच साथियोंमेंके पं० रूपचन्दसे पृथक् हैं और इन्हें 'पाण्डे' तथा 'गुरु' कहा है।

गुरु रूपचन्दकी पाण्डे पदवीसे अनुमान होता है कि ये भी किसी भट्टारकके शिष्य थे। गोम्मटसार सिद्धान्तके सिवाय अध्यात्मके भी वे मर्मज्ञ होंगे और इसीलिए उनके उपदेशसे बनारसीदासकी डाँवाडोल अवस्थामें सुस्थिरता आई थी। इनकी कोई रचना अब तक नहीं मिली। पाण्डे हेमराजने पंचास्तिकायकी बालबोधटीकाके अन्तमें एक रूपचन्दका गुरु रूपसे स्मरण किया है—"यह (ग्रन्थ) श्री रूपचन्द गुरुके प्रसादथी पाण्डे हेमराजने अपनी बुद्धि माफिक लिखत कीना।" इस टीकाका रचनाकाल सं० १७२१ है।

नाटक समयसारकी समाप्ति सं० १६९३ की आश्विन सुदी १३ रविवारको हुई है जिसमें पं० रूपचन्द आदि पाँच साथियोंकी परमार्थचर्चाका उल्लेख है जब कि पाण्डे रूपचन्दका स्वर्गवास इससे पहले ही हो चुका था। इसलिए दोनों रूपचन्द भिन्न भिन्न व्यक्ति थे, इसमें कोई सन्देह न रहना चाहिए।

साथी रूपचन्द भी बनारसीदास जैसे ही अध्यात्मरसिक सुकवि थे। श्री अगरचन्दजी नाहटा द्वारा भेजे हुए पुराने दो गुटकोंमें[3] रूपचन्दकी 'दोहरा शतक'

१—देखो, नाटक समयसारके अन्तिम अध्यायके पद्य २६–३०

२—अर्धकथानक पद्य ६३०–३५।

३—पहला गुटका बनारसीदासके एकचित्त मित्र कँवरपालके हाथका सं० १६८४–८५ का लिखा हुआ है। इसमें अध्यात्मकी और दूसरी बीसों पुरानी रचनाएँ संग्रह की गई हैं।

आदि रचनायें संग्रहीत हैं। दूसरे गुटकेके दोहरा शतकके अन्तमें लिखा है—

" रूपचंद सतगुरुनिकी, जन बलिहारी जाइ ॥
आपुन पैं सिवपुर गए, भव्यनि पंथ दिखाइ ॥
इतिश्री रूपचन्द्रजोगीकृत दोहरा शतक समाप्त। "

इसका 'जोगी' पद रूपचंदके अध्यातमी होनेका प्रमाण है। यह शतक कहीं कहीं 'परमार्थी दोहाशतक' के नामसे मिलता है[2]। इस सुन्दर रचनाके तीन दोहे देखिए---

चेतन चित-परिचय बिना, जप तप सबै निरत्थ।
कन बिन तुस जिमि फटकतैं, आवै किछू न हत्थ ॥
चेतनसौं परचै नहीं, कहा भए व्रतधारि।
सालि बिहूने खेतकी, वृथा बनावति बारि ॥
बिना तत्त्व परचै बिना, अपर भाव अभिराम।
ताम और रस रुचत है, अमृत न चाख्यौ जाम ॥

श्री अगरचन्दजी नाहटाके भेजे हुए पहले गुटकेमें जो कँवरपालके हाथका लिखा हुआ है, रूपचन्दका एक सुन्दर पद दिया हुआ है—

प्रभु तेरी परम विचित्र मनोहर मूरति रूप बनी।
अंग अंगकी अनुपम सोभा, बरनि न सकत फनी ॥
सकल बिकार रहित बिनु अंबर, सुंदर सुभ करनी।
निराभरन भासुर छबि सोहत, कोटि तरुन तरनी ॥
बसुरसरहित सांत रस राजत, खलि इहि साधुपनी।
जातिबिरोधि जंतु जिहि देखत, तजत प्रकृति अपनी ॥
दरिसनु दुरित हरै चिर संचितु, सुर-नर-फनि मुहनी।
रूपचन्द कहा कहौं महिमा, त्रिभुवन-मुकुट-मनी ॥

रूपचन्दकी एक रचना 'गीत परमार्थी' है, जिसमें परमार्थ या अध्यात्मके

१--यह गुटका स्वयं कँवरपालका लिखा हुआ तो नहीं है, पर उनके पढ़नेके लिए लिखा गया था, सं० १७०४ के आसपास।

२--इसे हम जैनहितैषी भाग ६, अंक ५–६ में बहुत समय पहले प्रकाशित कर चुके हैं।

बहुत ही सुन्दर गीत हैं[1]।' उनकी 'अध्यात्म सवैया' नामक रचनाका परिचय अभी हाल ही पं० कस्तूरचन्द शास्त्री एम० ए० ने अनेकान्तमें दिया है[2]। इसमें सब मिलाकर १०१ इकतीसा तेईसा सवैया हैं; अर्थात् यह भी एक शतक है। नमूनेके तौरपर शतकका एक पद्य दिया जाता है —

अनुभौ अभ्यासमैं निवास सुद्ध चेतनकौ,
अनुभौसरूप सुद्ध बोधकौ प्रकास है।
अनुभौ अनूप उपरहत अनंत ग्यान,
अनुभौ अनीत त्याग ग्यान सुखरास है॥
अनुभौ अपार सार आपहीकौ आप जानै,
आपहीमैं व्याप्त दीसै जामैं जड़ नास है।
अनुभौ अरूप है सरूप चिदानंद चंद,
अनुभौ अतीत आठकर्मसौं अफास है॥

इनके सिवाय मंगलगीतप्रबन्ध (पंचमंगल)[3], खटोलनागीत[4] और नेमिनाथरासा[5] नामकी तीन रचनाएँ और भी रूपचन्द्रकी मिलती हैं। इनमेंसे नेमिनाथ रासा और पंचमंगलका शब्दसाम्य और उपमासाम्य दोनोंको एक ही कर्त्ताकी रचना माननेका संकेत देते हैं और खटोलना गीतकी भी दो पंक्तियाँ पंचमंगलकी पंक्तियोंसे मिलती जुलती हैं--

सोरठ देस सुहावनो, पुहुमी पुर परसिद्ध।
रस गोरस परिपूरनु, धन-जन-कनकसमिद्ध॥
रूपचन्द जन बीनवै, हौं चरननिकौ दासु।
मैं इहलोक सुहावनो, विरच्यौ किंचित रासु॥

१—इसके छह गीत जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय द्वारा 'परमार्थ जकड़ी-संग्रह' में प्रकाशित किये गये थे। बृहज्जिनवाणीसंग्रहमें भी इसके १० गीत संग्रह किये गये हैं।

२—देखो, अनेकान्त वर्ष १४, अंक १० में 'हिन्दीके नये साहित्यकी खोज' शीर्षक लेख।

३—यह पंचमंगल नामसे घर घर पढ़ा जाता है।

४-५—पं० परमानंदजी शास्त्रीने जैनग्रन्थप्रशस्तिसंग्रहमें इन रचनाओंकी सूचना दी है।

जो यह सुरधर गावहिं, चित दै सुनहिं जु कान।
मनवांछित फल पावहीं, ते नर नारि सुज्ञान ॥ ५०

पंचमंगल

१—पणविवि पंच परमगुरु जो जिनसासनं—आदि
२—जो नर सुनहिं बखानहिं सुर धर गावहीं,
मनवांछित फल सो नर निहचै पावहीं। आदि
३—मयनरहित मूसोदर-अंबर जारिसौ,
किमपि हीन निज तनुतैं भयौ प्रभु तारिसौ ॥

नेमिनाथ रासा

पणविवि पंच परम गुरु, मनबचकाय तिसुद्धि।
नेमिनाथ गुन गावउ, उपजै निर्मल बुद्धि ॥

खटोलना गीत

सिद्ध सदा जहँ निवसहीं, चरम सरीर प्रमान।
किंचिदून मयनोज्झित, मूसा गगन समान ॥

इस तरह ये तीनों रचनाएँ एक ही कविकी मालूम होती हैं।

एक और पं० रूपचंद

इस नामके एक और विद्वान् उसी समय हुए हैं जिनके समवसरणपाठ या केवलज्ञान-कल्याणार्चा नामक संस्कृत ग्रंथकी अन्त्य-प्रशस्ति 'जैनग्रंथप्रशस्ति-संग्रह' (नं० १०७) में प्रकाशित हुई है[१]। उससे मालूम होता है कि कुरु देशके सलेमपुरमें गर्गगोत्री अग्रवाल मामटके पुत्र भगवानदासके छह पुत्रोंमेंसे सबसे छोटे रूपचन्द थे, जो निरालस थे, जैनसिद्धान्तदक्ष थे। उसी समय भट्टारक जगद्भूषणकी आम्नायमें गोलापूरब वंशके संघपति भगवानदास हुए जिन्होंने जिनेन्द्रदेवकी प्रतिष्ठा कराई और उन्हींकी प्रेरणासे रूपचन्दने उक्त समवसरणपाठकी रचना की। संघपति भगवानदासकी उन्होंने निःसीम प्रशंसा की

१—यह प्रशस्ति बहुत ही अशुद्ध और अस्पष्ट है। जगह जगह प्रश्नांक दिये हैं, जिनके कारण पूरा अर्थ स्पष्ट नहीं होता। इसकी मूल प्रति कहाँ किस भंडारमें है और प्रति लिखनेका समय स्थान क्या है, सो भी नहीं बतलाया गया।

है। उन्हें भरतेश्वर, श्रेयान्स राजा, शक्र, आदि न जाने क्या क्या बना दिया है। ये रूपचन्द्र बोधविधानलब्धिके लिए वाराणसी गये थे और वहाँ पाणिनि व्याकरण, षट्दर्शन, आदि पढ़कर वहाँसे दरियापुर आ गये थे। शायद सेठ भगवानदासकी सहायतासे ही वे बनारस गये थे। शाहजहाँके राज्यमें संवत् १६९२ में समवसरणपाठकी रचना हुई।

पं० परमानंदजीने इस पाठके कर्त्ताको ही बनारसीदासका गुरु और दोहरा-शतक आदि हिन्दी कविताओंका कर्त्ता बतलानेका प्रयत्न किया है। परन्तु समवसरणपाठ सं० १६९२ में रचा गया है और रूपचन्द्र पांडेकी मृत्यु इसके दो वर्ष बाद १६९४ के लगभग हो चुकी थी। समयसामीप्यके सिवाय और कोई प्रमाण दोंनोंकी एकता सिद्ध करनेके लिए नहीं दिया गया। वे हिन्दीके भी कवि थे, इसका कोई संकेत नहीं मिलता। इस ग्रन्थके सिवाय और भी कोई रचना उनकी है, यह अभीतक नहीं मालूम हुआ। उनके आगरे आनेका भी कोई उल्लेख नहीं है। इसके सिवाय ये पांडे भी नहीं थे।

मुनि रूपचन्द्र

बनारसीदासकृत नाटक समयसारकी भाषाटीकाके कर्त्ताका भी नाम रूपचन्द है, परन्तु ये न तो वे रूपचन्द्र हैं जिन्हें अर्धकथानकमें 'गुरु' और 'पाण्डे' कहा है और न परमार्थी दोहाशतक आदिके कर्त्ता रूपचन्द्र, जो बनारसीदासके साथी पंच पुरुषोंमेंसे एक थे। उन्होंने अपनी उक्त भाषाटीका नाटक समयसारकी रचनाके कोई सौ वर्ष बाद संवत् १७९२ में बनाकर समाप्त की थी, इसलिए केवल नाम-साम्यके कारण कोई इन्हें बनारसीदासका गुरु या साथी समझनेके भ्रममें नहीं पड़ सकता।

१—ब्र० नन्दलाल दिगम्बर-जैन-ग्रन्थमाला भिण्ड (ग्वालियर) द्वारा प्रकाशित।

२—इस टीकाकी प्रस्तावना वयोवृद्ध पं० झम्मनलाल तर्कतीर्थने लिखी है और उसमें उन्होंने रूपचन्द्रको बनारसीदासका गुरु बतला दिया है। (अर्थात् गुरुने शिष्यके ग्रन्थपर टीका लिखी!) टीकाके अन्तमें छपी हुई प्रशस्ति आदि देखनेका कष्ट न तो तर्कतीर्थजीने उठाया और न ब्र० नन्दलालजीने। और भी कुछ लेखकोंने इन रूपचन्द्रको बनारसीदासका गुरु बनानेमें ही अधिक लाभ समझा है।

जब (१९४३ में) 'अर्धकथानक' का पहला संस्करण प्रकाशित हुआ था, तब तक हमें यह टीका प्राप्त नहीं हुई थी। सन् १८७६ में स्व० भीमसी माणिकने इस टीकाके आधारसे नाटक समयसारकी जो गुजराती टीका प्रकाशित की थी, उसके प्रारम्भमें लिखा है कि इस ग्रन्थकी व्याख्या रूपचन्द नामक किसी पंडितने की है जो हिन्दुस्तानी भाषामें होनेसे सबकी समझमें नहीं आ सकती। इसलिए उसका आश्रय लेकर हमने गुजरातीमें व्याख्या की है। इस गुजराती व्याख्याको हमने देखा था परन्तु उससे हम टीकाकारके सम्बन्धमें विशेष कुछ न जान सके थे, इसलिए हमने अनुमान किया था कि वह टीका बनारसीदासके साथी रूपचन्दकी होगी। परन्तु अब यह टीका प्रकाशित हो चुकी है[1] और उससे बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि इसके कर्त्ता रूपचन्द्र खरतरगच्छकी क्षेम शाखाके श्वेताम्बर साधु थे।

इसकी प्रशस्तिमें उनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार है—मुनि शान्तिहर्ष-जिनहर्ष--वाचकसुखवर्धन-दयासिंह और दयासिंहके शिष्य मुनि रूपचन्द्र। इनका जन्म आँचलिया गोत्रके ओसवाल वंशमें पाली (मारवाड़) में संवत् १७४४ में हुआ और स्वर्गवास संवत् १८३४ में[1]। इस तरह उन्होंने ९० वर्षका दीर्घजीवन प्राप्त किया। उनकी पहली रचना (समुद्रवद्ध कवित्त) संवत् १७६७की और अन्तिम १८२३ की है। संस्कृत और राजस्थानीमें श्री अगरचन्दजी नाहटाको उनके लगभग ४० ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं। उनमें ज्योतिष, वैद्यक, काव्य, कोशग्रन्थोंकी राजस्थानी और हिन्दी टीकायें आदि हैं।

रूपचन्दजीकी यह टीका वि० सं० १७९२ आश्विन वदी १ सोमवारको सोनगिरिपुरमें समाप्त हुई और गणधरगोत्रीय मोदी जगन्नाथजीके समझनेके लिए इसका निर्माण किया गया। सोनगिरिपुरके राजाने मोदीका पद देकर फतेहचन्दजीका सन्मान बढ़ाया था, और जगन्नाथ इन्हीं फतेहचंदके पुत्र थे[2]।

१--वाग्देवतामनुजरूपधरा मरौ च, श्री ओसवंशवद् अंचलगोत्रशुद्धाः। श्रीपाठकोत्तमगुणैर्जगति प्रसिद्धाः सत्पल्लिकापुरवरे मरुमण्डले च। अष्टादशे च शतके चतुरुत्तरे च, त्रिंशत्तमेव च समये गुरु-रूपचन्द्राः। आराधनां धवलभावयुतां विधाय, आयुः सुखं नवतिवर्षमितं च भुक्ताः॥

२—पृथ्वीपति विक्रमके राज मरजाद लीन्हैं, सत्रहसै बीतेपर बानुआ बरसमैं।

इस टीकाकी एक प्रति वि० सं० १८३९ की लिखी हुई मिली है जो रूपचन्दके शिष्य विद्याशील और उनके शिष्य गजसार मुनिके द्वारा शुद्धिदन्तीपत्तन या सोजत (मारवाड़) में लिखी गई थी। अर्थात् इस प्रतिके लेखक टीकाकारके प्रशिष्य हैं।

इससे १३ वर्ष पहलेकी एक प्रति जयपुरके ग्रन्थभंडारमें है जिसका अन्तिम अंश पं० कस्तूरचन्दजीकाशलीवालने भेजनेकी कृपा की है। "—इति कविकृत भाषा पूर्णा। श्रीरस्तु पं० कल्याणकुशल लिपीकृतम्। सं० १८२६ वर्षे।"

मुनि कान्तिसागरजीने सोनगिरिपुरके विषयमें ग्वालियरके पासके 'सोनागिरि' तीर्थका अनुमान किया था; परन्तु प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलालजीने मुझे बतलाया कि वह मारवाड़का जालौर स्थान है। जालौरके निकट जो पहाड़ है, वह कनकाचल या सुवर्णगिरि कहलाता है। अतएव रूपचन्दजीने इसीके पासके नगर जालौरमें अपनी टीका लिखी होगी।[2]

स्व० धर्मानन्द कोसंबीके पुत्र प्रो० दामोदर कोसम्बीने भर्तृहारके 'शतकत्रयादिसुभाषितसंग्रह' का एक अपूर्व संस्करण सिंघी जैन-ग्रन्थमालामें प्रकाशित किया है। उसके इंट्रोडक्शनमें शतकत्रयकी मूल और सटीक प्रतियोंका जो विवरण

आसू मास आदि द्यौस संपूरन ग्रंथ कीन्हौ, बारतिक करिकै उदार बार ससिमैं। जो पै यहु भाषाग्रन्थ सब्द सुबोध याकौ, तौहू बिनु संप्रदाय नावै तत्त्व बसमैं। यातैं ग्यानलाभ जानि संतनिकौ बैन मानि, बातरूप ग्रन्थ लिख्यौ महा सान्तरसमैं। खरतरगच्छनाथ विद्यमान भट्टारक, जिनभक्तसूरिजूके धर्मराज धुरमैं। खेमसाखमांझि जिनहर्षजू बैरागी कवि, शिष्य सुखवर्धन सिरोमनि सुघरमैं॥ ताकै शिष्य दयासिंघ गणि गुणवंत मेरे, धरम आचारिज बिख्यात श्रुतधरमैं। ताकौ परसाद पाइ रूपचन्द आनंदसौं, पुस्तक बनायौ यह सोनगिरिपुरमैं॥ मोदी थापि-महराज जाकौं सनमान दीन्हौ, फतैचन्द पृथीराम पुत्र नथमालके। फतेहचन्दजूके पुत्र जसरूप जगन्नाथ, गोत गुनधरमैं धरैया शुभ चालके॥ तामैं जगन्नाथजूके बूझिवेके हेतु हम, ब्यौरिकै सुगम कीन्है बचन दयालके। बांचत पढ़त अब आनंद सदाए करौ, संगि ताराचन्द अरु रूपचन्द बालके।

देसी भाषाकौ कहूं, अरथ बिपर्जय कीन।
ताकौ मिच्छा दुक्कडं, सिद्ध साखि हम कीन॥

दिया है उसमें वाचक रूपचन्द्रकी राजस्थानी टीकाकी दो प्रतियोंका उल्लेख है। उनमें एक प्रति संवत् १७८८ की वाचक रूपचन्दके शिष्य चन्द्रवल्लभ द्वारा सोजत नगरमें बैठकर लिखी हुई है —

" संवद्गजाष्टशैलेंदुवर्षे चाश्विनमासके,
शुक्लपक्षनवम्याश्च सोमवारे लिखितं प्रति ॥ १
वाचका रूपचंद्राख्यास्तच्छिष्यश्चंद्रवल्लभः
शुद्धदन्तीपुरे रम्ये प्रयासं सफलं व्यधात् ॥ २

श्रीर्भवतु श्री स्यात्। संवत् १७८८ वरसै विषै आसोजमासै विषै उजवाला पंखरी नवमी तिथिरै विषै मंगलवाररै दिन आ परति लिखतौ हुऔ। वाचकरूप-चंद्रजी तिणरौ शिष्य चंद्रवल्लभ सोजितनगरमध्ये प्रयास सफल करतौ हुऔ।"

दूसरी प्रति संवत् १८२७ की लिखी हुई है। उसके अन्तका अंश यह है— "तरणितेज खरतरैं गच्छ जिणभगतिसूरि गुर। विजयमान बडवखत खेमसाखामधि सद्गुर। वाणारस गुणवंत सुख्यवरधन अति सुज्जस। वाणारस विरुदाल श्रीदयालसिंध सिष्य तस॥ तसु चरणरेणुसेवातणैं भल प्रसाद मनभाविया। इम रूपचन्द परगट अरथ सतक तीन समझाइया॥२॥ छत्रपति कमधांछात सकलराजराजेसर। महाराजकुलमुगट श्री अभैसिंघ नरेसर। विजैराज तसु वीर सकल हुजदार-सिरोमणि। जीवराजघण जाण प्रसिध मंत्री वीरधणि। मनरूपपुत्र तसु प्रबलमति आग्रह तसु आरंभिया। इम रूपचन्द परगट अरथ सतक तीन समझाविया॥ ३॥

इससे दो बातें मालूम होती हैं। एक तो नाटकसमयसार-टीकाके चार वर्ष पहले रूपचन्द्रके शिष्य चन्द्रवल्लभने शतकत्रयकी राजस्थानी भाषा टीकाकी प्रतिलिपि की थी और दूसरी यह कि रूपचन्दकी गुरुपरम्परा वही है जो नाटक समयसार टीकामें दी है—सुखवर्धन-दयासिंह-रूपचन्द। इस प्रशस्तिमें सुखवर्धनको जो 'वाणारस

१—मुनि कान्तिसागरने इस प्रतिको अपने संग्रहकी बतलाया है (विशाल-भारत, मार्च, १९४७ पृ० २०१) और ब्र० नन्दलालजीद्वारा प्रकाशित टीकामें भी इसी प्रतिकी यह प्रशस्ति दी हुई है।

२—तपागणपतिगुणपद्धति (पृ० ८५) के अनुसार जोधपुरनरेश गजसिंहके मंत्री जयमल्ल विजयसिंहसूरिको जालौर दुर्ग लाये और वहाँ एकके

गुणवंत' और दयासिंहको 'बाणारसविरुदाल' विशेषण दिये हैं, सो क्या बनारसीदासको इंगित करते हैं ?

पूर्वोक्त दूसरी प्रतिके अन्तिम अंशसे मालूम होता है कि जिस समय बृहत्खरतर गच्छके प्रधान आचार्य जिनभक्तसूरि थे, उस समय उक्त गच्छकी ही क्षेमकीर्ति शाखामें विरागी कवि जिनहर्षके शिष्य सुखवर्धन, और उनके शिष्य दयालसिंह गणि हुए।

नाटकसमयसारकी टीकाकी प्रतिमें लिपिकर्त्ताका जो परिचय दिया है उससे मालूम होता कि वे स्वयं पं० रूपचन्दजीके प्रशिष्य गजसार थे और उन्होंने शुद्धदन्तीपुर अर्थात् सोजत (मारवाड़) में पौषवदी ५ मंगलवार संवत् १८३९ को प्रति लिखी थी[1]। अर्थात् रचना-कालसे लगभग ४७ वर्ष बाद इसकी प्रतिलिपि की गई है।

सोनगिरिपुर जोधपुर राज्यका जालौर ही जान पड़ता है। जालौरके पासके पर्वतका नाम स्वर्णगिरिपुर है। इसका उल्लेख श्वेताम्बर साहित्यमें अनेक जगह हुआ है[2]।

बाद एक चातुर्मास करके स्वर्णगिरिशीर्षपर तीन जिन मन्दिर प्रतिष्ठापित किये। इसी स्वर्णगिरिके पासका नगर सोनगिरिपुर है।

१-" नन्दवह्निनागेन्दुवत्सरे विक्रमस्य च, पौषसितेतरपंचमीतिथौ, धरणीसुतवासरे श्रीशुद्धिदन्तीपत्तने श्रीमति विजयसिंहाख्यसुराज्ये, बृहतखरतरगणे निखिलशास्त्रौघपारगामिनो महीयांसः श्रीक्षेमकीर्तिशाखोद्भवाः पाठकोत्तमपाठकाः श्रीमद्रूपचन्द्रगणयस्तच्छिष्यः पं० विद्याशीलमुनिस्तच्छिष्यो गजसारमुनिः समयसारनाटकग्रंथं लिखितम्। श्रीमद्गवडीपुराधीशप्रसादाद्भावके भूयात् पाठकानां श्रोतृणां छात्राणां शश्वत। श्रीरस्तु। "

२-तपागच्छपट्टावलीमें लिखा है—" तत्र च श्रीयोधपुराधीश्वरश्रीगजसिंहराजस्य मुख्य मान्य श्री जयमल्ल नाम्ना जालोरदुर्गे प्रतिष्ठात्रयमन्तरान्तरा चतुर्मासत्रयं श्रीगुरुणामाग्रहेण कारयित्वा स्वर्णगिरौ चैत्यं स्वकारितं प्रतिष्ठापयामास। " तपागणपतिगुणपद्धतिमें भी लिखा है कि विजयसिंहसूरिको जोधपुरनरेश गजसिंहके मंत्री जयमल्ल जालोर दुर्ग लाये और वहाँ एकके बाद एक तीन चौमासे करके स्वर्णगिरिशीर्षपर तीन मंदिर प्रतिष्ठापित किये।

अठारहवीं शताब्दिके रूपचन्द (रामविजय) का एक अष्टक मिलता है जिसकी प्रति लश्करके श्वेताम्बर मन्दिरमें है। उसके अनुसार रूपचन्दका जन्म ओसवाल वंशके आंचलिया गोत्रमें मारवाड़के पाली नगरमें हुआ था और स्वर्गवास संवत् १८३४ में ९० वर्षकी अवस्थामें। इस हिसाबसे उनका जन्म १७४४ में हुआ होगा। ×

दतिया राज्यके सोनागिरिको कुछ लोगोंने नाटक समयसार टीकाका रचना-स्थान बतलाया है, जो ठीक नहीं है। जालौर खरतरगच्छके साधुओंका केन्द्र रहा है।

इनका 'गोतमीय काव्य' नामका एक संस्कृत काव्य है जो देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार फण्डकी ओरसे प्रकाशित हो चुका है। उससे मालूम होता है कि इनका दूसरा नाम रामविजय था और जोधपुरके राजा अभयसिंह द्वारा ये सम्मानित थे। * जिनलाभसूरिने सं० १८१७ में इन्हें उपाध्यायपद दिया था।

इन सब बातोंसे स्पष्ट है कि नाटकसमयसारके टीकाकर्त्ता रूपचन्द न तो बनारसीदासजीके गुरु थे, न साथी और न समकालिक। वे श्वेताम्बर सम्प्रदायके थे और इस टीकाको ध्यानसे देखनेसे इसकी प्रतीति सहज ही हो जाती है। + वे जगह जगह लिखते हैं, "यह कथन दिगम्बर सम्प्रदायका है।" "याही प्ररूपणा दिगम्बर सम्प्रदायकी है।" "ये अठारह दूषण दिगम्बरसम्प्रदायके हैं। अन्य सम्प्रदायमें १८ दोष न्यारे कहे हैं।" ऊपर जो लेखककी प्रशस्ति दी गई है, उससे भी स्पष्ट है कि वे श्वेताम्बर खरतरगच्छके साधु थे।

चतुर्भुज

पंच पुरुषोंमें दूसरा नाम चतुर्भुजका है जो आगरेकी ज्ञातामण्डलीके एक सदस्य थे। इनके विषयमें बहुत कुछ प्रयत्न करनेपर भी हम और कुछ नहीं जान सके।

× देखो, पृष्ठ ९ की पहली टिप्पणी।

* ...तच्छिष्योऽभयसिंहनामनृपतेः लब्धप्रतिष्ठामहा-
गंभीरार्हतशास्त्रतत्त्वरसिकोऽहं रूपचन्द्राह्वया।
प्रख्यातापरनामरामविजयो गच्छेशदत्ताज्ञया,
काव्यं कार्षमिमं कवित्वकलया श्रीगौतमीये शुभम्॥

भगवतीदास

पंच पुरुषोंमें ये तीसरे हैं। अर्धकथानकके अनुसार ये अध्यात्मज्ञानी बासूसाह ओसवालके पुत्र थे और बनारसीदास उनके यहाँ अपने कुटुंबसहित कोई छह महिनेतक ठहरे थे²। यह संवत् १६५५ की बात है। अभी तक इनकी भी कोई रचना नहीं मिली और न इनके विषयमें और कुछ ज्ञात हुआ। पं० हीरानन्दजीने अवश्य ही अपने पद्यबद्ध पंचास्तिकाय (वि० सं० १७११) एक 'भगौतीदास ग्याता'का उल्लेख किया है और उक्त पंचपुरुषोंमेंके भगवतीदास ही पं० हीरानन्दके अभिप्रेत मालूम होते हैं। ब्रह्मविलासके कर्त्ता भैया भगवतीदास भी आगरेके रहनेवाले कटारियागोत्रके ओसवाल थे। परन्तु वे कोई और ही मालूम होते हैं। क्योंकि ब्रह्मविलासमें उनकी जितनी रचनायें संग्रहीत हैं वे संवत् १७३१ से १७५५ तक की हैं और नाटक समयसारकी रचना सं० १६९३ में हुई है जिसमें बनारसीदासके साथ परमार्थकी चर्चा करनेवाले भगवतीदासका नाम गिनाया है। उस समय उनकी उम्र ५५-६० से कम न होगी। क्योंकि बनारसीदास उनके घर सं० १६५५ में जाकर ठहरे थे। ब्रह्मविलासकी रचनायें सं० १७५५ तक की हैं, अतएव तब तक बासूसाहुके पुत्र भगवतीदासके जीवित रहनेकी बात कष्टकल्पना होगी।

कुँअरपाल

अभी तक हम इतना ही जानते थे कि सोमप्रभकी सूक्तिमुक्तावलीका पद्यानुवाद बनारसीदासने कुँअरपालके साथ मिलकर किया था और बनारसीविलासमें संग्रहीत ज्ञान-बावनीमें भी कुँअरपालका उल्लेख है। बनारसीदासने उन्हें अपना एकचित्त मित्र बतलाया है और महोपाध्याय मेघविजयने युक्तिप्रबोधमें लिखा है कि बनारसीदासके परलोकगत होनेपर कुँअरपालने उनके

१—तहाँ भगौतीदास है ग्याता, घनमल और मुरारि विख्याता।

२—बासूसाह अध्यातम-जान, बसै बहुत तिन्हकी संतान।
बासूपुत्र भगौतीदास, तिन दीनौ तिन्हकौं आवास।
तिस मंदिरमैं कीनौ बास, सहित कुटुंब बनारसिदास॥ १४२

मतको धारण किया और वे उनके अनुयायियोंमें गुरुके समान सर्वमान्य हो गये।

पर इधर उनके विषयमें कुछ और प्रकाश पड़ा है। एक तो पाण्डे हेमराजने अपनी दो रचनाओंमें कुँअरपाल ज्ञाताका उल्लेख किया है। 'सितपट चौरासी-बोल' में लिखा है—

नगर आगरेमैं वसै, कौंरपाल सग्यान।
तिस निमित्त कवि हेमनैं, कियउ कवित परवांन॥

और प्रवचनसारकी बालबोध-टीकामें लिखा है—

बालबोध यह कीनी जैसे, सो तुम सुणहु कहूँ मैं तैसे।
नगर आगरेमैं हितकारी, कौंरपाल ग्याता अधिकारी॥ ४॥
तिनि विचारि जियमैं यह कीनी, जो भाषा यह होइ नवीनी।
अलपबुधी भी अरथ बखानै, अगम अगोचर पद पहिचानै॥ ५॥
यह विचार मनमें तिनि राखी, पांडे हेमराजसौं भाखी।
आगै राजमल्लनैं कीनी, समयसार भाषारसलीनी॥ ६॥
अब जो प्रवचनकी है भाखा, तो जिनधर्म बढ़ै सौ साखा।
सत्रहसै नव ओतरै, माघ मास सितपाख।
पंचमि आदितवारकौं, पूरन कीनी भाख॥

इससे मालूम होता है कि सं० १७०९ में कुँअरपाल आगरेमें अधिकारी ग्याता समझे जाते थे और उन्होंने राजमल्लजीकी बालबोधिनी टीकाके ढंगकी प्रवचनसारकी भी टीका लिखानेका यह प्रयत्न किया था।

श्री अगरचन्द नाहटा द्वारा भेजे हुए दो पुराने गुटकोंमेंसे एक गुटका सं० १६८४-८५ में स्वयं कुँवरपालके हाथका लिखा हुआ है और उसमें स्वयं

१—'चौरासी बोल' में रचनाका समय नहीं दिया है, परन्तु मेरी एक नोंध-पोथीमें संवत् १७०७ लिखा हुआ है।

२—आनन्दघनके पद, द्रव्यसंग्रह भाषाटीका, फुटकर सवैया, और चतुर्विंशति स्थानानिके बाद लिखा है—"सं० १६८४ आषाढ सु० ६ कौरा अमरसीका चोरडया श्री आगरामध्ये स्वयं पठनार्थं।" तत्त्वार्थके अन्तमें लिखा है—"सं० १६८५ सावण सुदि ८ लि० कौरा।" योगसारके अन्तमें "सं० १६८५ आसोज वदी १३ दिने। लि० कवरा स्वयं पठनार्थं।"

उनकी भी कई रचनाये हैं। दूसरा गुटका उनके लिए अन्य लेखकों द्वारा लिखा हुआ है और उसकी कई रचनाओंके नीचे लिखा है—"श्री जैसलमेरुमध्ये पुण्य-प्रभावक सा कुअरजी पठनार्थं" "लिखितं श्री जैसलमेरुनगरे सुश्रावक सा० कुवरजी वाच्यमानः चिरंजीयादिति श्रेयः।" इस गुटकेमें कुँअरपालकी भी 'समकितबत्तीसी' आदि कई रचनाएँ हैं।

समकितबतीसीमें ३३ पद्य हैं। क से लगाकर ह तकके एक एक अक्षरसे प्रारंभ होनेवाले प्रत्येक पद्यकी अन्तिम पंक्तिमें 'कँवरपाल' नाम आता है। ३१-३३ वें पद्योंमें कविने अपना परिचय और रचनाकाल दिया है—

खितमधि ओसवाल अति उत्तम, चोरोडिया बिरद बहु दीजइ।
गौडीदास अंस गरवत्तन, अमरसीह तसु नंद कहीजइ॥
पुरि-पुरि कंवरपाल जस प्रगट्यौ, बहु बिध तास बंस बरणिज्जइ।
धरमदास जसकंवर सदा धनि, बडसाखा बिसतर जिम कीजइ॥ ३१
सुद्ध एक आगइ छक उत्तिम, अष्ट करम भंजन दल आगर।
सत्ता सुद्ध भई जा फागुनि, बोधबीज उज्जलपद नागर॥
तव रेवइ नक्षत्र तीरथफल, सुनि हइ ग्यान जिके सुखसागर।
ए संवत् वाइक अति सुंदर, कंवरपाल समझइ नर नागर॥ ३२
हुऔ उछाह सुजस आतम सुनि, उत्तम जिके परम रस भिन्नै।
ज्यउं सुरही तिण चरहि दूध हुइ, ग्याता तेरह प्रन गुन गिन्नै॥
निजबुधि सार विचारि अध्यातम, कवित बतीस भेंट कवि किन्नै।
कंवरपाल अमरेसतनूभव, अतिहितचित आदर कर लिन्नै॥ ३३

इससे मालूम होता है कि ओसवाल वंशके चोरडिया गोत्रीय गौड़ीदासके दो पुत्र थे, बड़े अमरसिंह या अमरसी और छोटे जसू। जसूके पुत्र धरमदास या धरमसी थे और अमरसीके कँवरपाल। कँवरपालका नगर नगरमें जस फैल गया और उन्होंने संवत् १६८७ में उक्त समकितबत्तीसीकी रचना की[1]।

अर्धकथानकमें लिखा है कि जसू और अमरसी भाई-भाई थे और छोटे भाईके पुत्र (लघुबन्धवपूत) धरमदासके साझेमें बनारसीदासने जवाहरातका व्यापार किया था[2]।

१—श्री अगरचन्दजी नाहटा 'सत्ता' पदसे संवत् १६८१ अर्थ करते हैं, १६८७ संवत् नहीं।

२—देखो, अर्धकथानक पद्य ३५२, ५३, ५४।

कुँवरपालके हाथके लिखे हुए गुटकेकी कई रचनाओंके नीचे उनके लिखनेका संवत् १६८४ और ८५ दिया हुआ है और पांडे हेमराजजीने प्रवचनसार टीका सं० १७०९ में उनकी प्रेरणासे ही बनाई थी। उसके बाद वे और कब तक जीवित रहे, इसका पता नहीं।

पहले गुटकेमें चौवीस ठाणाके लिख चुकनेके बाद उन्होंने अपनी दो कविता और दी हैं जिनमें अपना उपनाम 'चेतन कंवर' दिया है—

बंदौ जिनप्रतिमा दुखहरणी।
आरंभ उदौ देख मति भूलौ, ए निज सुधकी धरणी ॥ वन्दौ० ॥
बीतरागपदकूं दरसावइ, मुक्ति पंथकी करणी।
सम्यगदिष्टी नितप्रति ध्यावइ, मिथ्यामतकी टरणी ॥ १ ॥
गुणश्रेणी जे कही एकदस, आतम अमरित झरणी।
तिणकौ कारण मूल जाणजिइ, खिपक भावकी वरणी ॥ २ ॥
रतनागर चउबीसी अरिहत, गुंगनिध सुण अघ चरणी।
चेतन कवर यहै लिव लागी, सुमति भई जब घरणी ॥ इति ॥
जाणी जाणै भेव वीतराग पदकौ कही।
मूढ़ न जाणै जेह, जिनठवणा बंदै नही ॥ १ ॥
जिनप्रतिमा जिनसम लेखीयइ,
ताकौ निमित पाय उर अंतर, राग दोष नहि देखीयइ। जिन प्र० ॥ १ ॥
सम्यगदिष्टी होइ जीव जे, तिण मन ए मति रेखीयइ।
यहु दरसन जाकूं न सुहावइ, मिथ्यामत भेखीयइ। जि० ॥ २ ॥
चितवत चित चेतना चतुर नर, नयन मेष न मेखीयइ
उपशम क्रया ऊपजी अनुपम, कर्म कटइ जे सेखीयइ ॥ ३ ॥
वीतराग कारण जिण भावन, ठवणा तिण ही पेखीयइ।
चेतन कवर भयै निज परिणति, पाप पुन्न दुइ लेखीयइ ॥

कुँवरपालजी अध्यातमी मित्रोंमें प्रधान थे और कवि भी। इससे आशा है, आगरा आदिके भण्डारोंमें उनकी और भी रचनायें मिलेंगी। संवत् १६८४-८५ में वे आगरेमें थे और १७०९ में भी, जब प्रवचसारटीकाकी रचना हुई है। जान पड़ता है जैसलमेरमें भी वे रहे हैं। शायद वह उनका मूल स्थान होगा और वहाँ आते जाते रहते होंगे। जैसलमेरमें भी संवत् १७०४ में गजकुशल गणिने उनके पढ़नेके लिए संग्रहिणीसूत्र लिखा था।

धरमदास

बनारसीदासके पाँच साथियोंमें एक धरमदास भी थे और ये उक्त कुँअरपालके चचेरे भाई ही जान पड़ते हैं। ये जसासाहुके पुत्र थे। अर्धकथानक (३५३) के अनुसार ये कुसंगतिमें पड़ गये थे, नशा करते थे और इनके साथ बनारसीदासने साझेमें व्यापार किया था। पूर्वोक्त दूसरे गुटकेमें इनकी 'गुरुशिष्यकथनी' नामकी एक कविता मिली है, जो यहाँ दी जा रही है—

इण संसार समुद्रकौ, ताकै पैं तट्टा।
सुगुरु कहै सुणि प्राणिया, तूं धरजे भ्रम बट्टा ॥
पूरब पुन्य प्रमाण तैं, मानव भव खट्टा।
हिव अहि लौ हारे मतां, भाजे भव भट्टा।
लालच मैं लागौ रवे, करि कूड़ कपट्टा ॥ २
उलझैगौ तूं आपसूं, ज्यूं जोगी जट्टा।
पाचिस पाप संताप मैं, ज्यूं भौ भरभट्टा।
भमसी तू भव नव नवा, नाचै ज्यूं तट्टा ॥
ऐमिंदर ऐ मालिया, ऐ ऊँचा अट्टा ॥ ३
है वर गै वर हींसता, गो महिषी थट्टा।
जाल दुलीचा डूब खा, पल्लिग सुघट्टा ॥
माणिक मोती मुंद्रडा, परबालं प्रगट्टा।
आइ मिल्या है एकठा, जैसा थलवट्टा ॥ ४
लोभै ललचाणौ थकौ, मत लागि लपट्टा।
काल तकै सिर ऊपरै, करिसी चटपट्टा।
जे जासी इक पलकमैं, ज्यूं बाउल घट्टा।
राहगीर संध्या समै, सोवै इकहट्टा ॥ ५
दिन ऊगौ निज कारिजैं, जायै दहवट्टा।
त्यूं ही कुटुंब सबै मिल्यौ, मन जाणि उलट्टा ॥
एहिज तोकूं काढिसी, करि वे सपलट्टा।
साथ जलैंगे कप्पमें, दुई च्यार लकुट्टा ॥ ६
स्वारथकौ संसार है, विण स्वारथ खट्टा।

रोग ही सोग वियोगका, सबला संकट्टा ।
दान दया दिल्मैं धरौ, दुख जाइ दहट्टा ।
धरम करौ कहै धरमसी, सुख होइ सुलट्टा ॥ ७

इसी ढंगकी 'मोक्षपैड़ी' नामकी रचना बनारसीदासकी भी है, जो बनारसी-विलासमें संग्रहीत है। वर्धमान-वचनिकामें भी सुखानन्द, भणसाली मीठू, नेमिदास आदिकी अध्यातम सैलीमें एक धरमदासका नाम आता है।

नरोत्तमदास और थानमल

ये दोनों बनारसीदासके घनिष्ठ मित्रोंमें थे। 'नाममाला' की रचना उन्होंने इन दोनोंकी प्रेरणासे की थी[1]। राग बरवा (बनारसीविलास) भी दोनोंके निमित्तसे रचा था[2]। नरोत्तम बेणीदास खोबराके पुत्र थे[3]। इनकी प्रशंसामें उन्होंने एक सुन्दर कविता लिखी थी जिसे वे भाटकी तरह रात दिन पढ़ते थे[4]। 'शान्तिनाथ जिनस्तुति' (बनारसीविलास) में भी उन्होंने दो जगह नरोत्तमका नाम दिया है[5]।

चन्द्रमान और उदयकरण

ये भी उनके ऐसे मित्र थे जिनके साथ वे धींगामस्ती करते और फिर अध्यात्म-ज्ञानकी बातें। अपनी ज्ञानपचीसी (बनारसीविलास) उन्होंने उदयकरणके लिए लिखी है। इनके विषयमें और अधिक कुछ न मालूम हो सका।

१—मित्र नरोत्तम थान, परम विचच्छन धर्मनिधि।
तासु बचन परवांन, कियौ निबंध विचार मनि ॥ २८० ॥

२—उधवा गाइ सुनाएहु, चेतन चेत। कहत बनारसि, थान नरोत्तम हेत ॥

३—अर्धकथानकका ४८६ वाँ पद्य।

४—रीझि नरोत्तमदासकौ, कीनौ एक कवित्त।
पढ़ै रैनदिन भाट सौ, घर बजार ज़ित कित्त ॥ ४८५ ॥

५—सांति जिनेस नरोत्तमको प्रभु। मिलिया तुझ कंत नरोत्तमकौ प्रभु ॥

पीताम्बर

बनारसीविलासमें 'ग्यान बावनी' नामकी एक कविता संग्रह की गई है, जिसमें ५२ इकतीसा सवैया हैं। इसके प्रत्येक सवैयामें 'बनारसीदास' नाम आया है और इसलिए उसे अन्तमें 'बनारसीनामांकित ग्यानबावनी' लिखा है। इसके सिवाय प्रत्येक सवैयाका आदि अक्षर वर्णानुक्रमसे रक्खा है। प्रारंभके पाँच पद्योंके आदि अक्षर 'ओं न मः सि धं' और आगेके 'अ आ इ ई' आदि हैं। कविता बहुत गूढ़ है और उसमें अध्यात्म शैलीसे बनारसीके गुणोंका कीर्त्तन किया गया है। इसके कर्त्ताका नाम पीताम्बर है और यह कुँआर सुदी १० सं० १६८६ को निर्मित हुई है। आगरेमें कपूरचन्द साहुके मंदिरमें सभा जुड़ी हुई थी जिसमें कँवरपाल आदि भी थे। उसी समय बनारसीदासजीके वचनोंकी चर्चा चली और तब सबके 'हुकम' से पीताम्बरने ग्यानबावनी तैयार की।

'ग्यानबावनी' के सिवाय कविकी और कोई रचना नहीं मिली और न उनके विषयमें और कुछ ज्ञात हुआ। 'आगरे नगर ताहि भेंटे सुख पायौ है' पदसे ऐसा जान पड़ता है कि वे कहीं बाहरसे आये थे और आगरेमें बनारसी-दाससे उनकी भेंट हुई थी। उस समय बनारसीदासकी बहुत ख्याति हो गई थी और सारी खलक उनका बखान करती थी।

सकबंधी सांचौ सिरीमाल जिनदास सुन्यौ,
ताके बंस मूलदास बिरद बढ़ायौ है।
ताके बंस छितिमें प्रगट भयौ खरगसेन,
बनारसीदास ताके अवतार आयौ है।
बीहोलिया गोत गरवत्तन उदोत भयौ,
आगरे नगर ताहि भेंटे सुख पायौ है।
बानारसी बानारसी खलक बखान करै
ताकौ बंस नाम ठाम गाम गुन गायौ है। ४५
खुसी ह्वैकै मंदिर कपूरचन्द साहु बैठे,
बैठे कौंरपाल सभा जुरी मनभावनी।

बनारसीदासजूके बचनकी बात चली,
याकी कथा ऐसी ग्याताग्यानमनलावनी ॥
गुनवंत पुरुषके गुन कीरतन कीजै,
पीतांबर प्रीति करि सज्जन सुहावनी ।
वही अधिकार आयौ ऊँघते बिछौना पायौ,
हुकमप्रसादतैं भई है ग्यानबावनी ॥ ५०
सोलहसौ छियासिए संवत कुंआरमास,
पच्छ उजियारौ चंद्र चढ़िवेकौ चाव है ।
बिजै दसौं दिन आयौ सुद्ध परकास पायौ,
उत्तरा असाढ़ उडुगन यहै दाव है ।
बानारसीदास गुनयोग है सुकल बाना,
पौरष प्रधान गिरि करन कहाव है ।
एक तौ अरथ सुभ मुहूरत बरनाव,
दूसरे अरथ यामैं दूजौ बरनाव है ॥ ५१

जगजीवन

यद्यपि स्वयं पं० बनारसीदासजीने अपनी रचनाओंमें कहीं इनका उल्लेख नहीं किया है परन्तु ये भी उनके अनुयायी थे। वि० सं० १७०१ में इन्होंने बनारसीदासजीकी समस्त रचनाओंको एकत्र किया और उसे 'बनारसीविलास' नाम दिया। ये आगरेके रहनेवाले गर्गगोत्री अग्रवाल थे। इनके पिताका नाम संघवी अभयराज और माताका मोहन दे था। अवश्य ही ये बनारसीदासके साथियों और अनुयायियोंमें थे।

"समै जोग पाइ जगजीवन विख्यात भयौ,
ग्यानिनकी मंडलीमें जिसकौ विकास है।"

पं० हीरानंदजीने अपने पंचास्तिकाय पद्यानुवादमें उनके पिता संघवी अभयराज और माता मोहनदेका उल्लेख करनेके पश्चात् कहा है कि जगजीवन जाफर खाँ नामक किसी उमरावके दीवान थे—

ताकौ पूत भयौ जगनामी, जगजीवन जिनमारगगामी ।
जाफरखाँके काज सँवारै, भया दिवान उजागर सारै ॥

पं० हीरानन्दजीने उक्त जगजीवनजीके कहनेसे ही वि० सं० १७११ में पंचास्तिकायकी रचना की थी।

पांडे हेमराज

कँवरपालजीका परिचय देते हुए ऊपर लिखा जा चुका है कि उनकी प्रेरणासे हेमराजजीने 'सितपट चौरासी बोल' और प्रवचनसारकी बालबोधटीका लिखी थी, जिसका रचनाकाल १७०९ है। इसके बाद उन्होंने परमात्मप्रकाशकी भाषाटीका संवत् १७१६ में, गोम्मटसार कर्मकाण्डकी भा० टी० संवत १७१७ में, पंचास्तिकायकी १७२१ में और नयचक्रकी टीका संवत् १७२६ में लिखी है। मानतुंगके भक्तामर स्तोत्रका एक सुन्दर पद्यानुवाद भी इनका किया हुआ है। राजस्थानके जैनग्रन्थभंडारोंकी सूचीपरसे हम यह नामावली दे रहे हैं, संभव है, इनके सिवाय और भी उनकी रचनाएँ हों[1]। इनसे मालूम होता है कि अपने समयके ये भी बड़े विद्वान् थे और कुँवरपाल आदि अध्यात्मियोंसे इनका विशेष सम्पर्क था। 'चौरासी बोल' से मालूम होता है कि इनकी कविता भी सुन्दर होती थी---

सुनयपोष हतदोष, मोषमुख सिवपददायक,
गुनमनिकोष सुघोष, रोषहर तोषविधायक।
एक अनंत सरूप संतबंदित अभिनंदित,
निज सुभाव पर भाव भावि भासेइ अमंदित।
अविदितचरित्र विलसित अमित, सर्व मिलित अविलिप्त तन,
अविचलित कलित निजरस ललित, जय जिन दलित (सु) कलिल घन ॥ १

१—पं० कस्तूरचन्दजी कासलीवाल लिखते हैं कि पं० हेमराजकी १२ रचनायें प्राप्त हो चुकी हैं। ऊपर लिखी छह रचनाओंके सिवाय नयचक्र भाषा, प्रवचनसार पद्यानुवाद, हितोपदेश बावनी, दोहाशतक, जीवसमास और हैं।

२—पं० परमानन्दजी शास्त्रीने देहलीसे 'चौरासी बोल' नामकी एक और पुस्तकका आद्यन्त अंश उतार कर भेजा है जिसके कवि जगरूप हैं और जिसे उन्होंने जयसिंहपुरा (नई दिल्ली) में संवत् १८११ में बनाकर समाप्त किया था। इसमें भी श्वेताम्बर सम्प्रदायकी मतभेदसम्बन्धीकी ८४ बातोंका खण्डन किया गया है।

नाथ हिम भूधरतैं निकसि गनेस चित्त, भूपरि बिथारी सिवसागर (लौं) धाई है।
परमतवाद मरजाद कूल उनमूलि, अनुकूल मारग सुभाय ढरि आई है॥
बुध हंस सरै पापमलको विधंस करै, सरबस सुमतिविकासि बरदाई है।
सपत अभंग भंग उठैं हैं तरंग जामैं, ऐसी बानी गंग सरबंग अंग गाई है॥

ऊपर लिखा जा चुका है कि रूपचन्द इनके गुरु थे।

पं० कस्तूरचन्दजीने अभी हाल ही पाण्डे हेमराजके 'उपदेश दोहा-शतक' का परिचय दियां है जिसमें १०१ सुभाषित दोहे हैं और जिसकी रचना कार्तिक सुदी ५ सं० १७२५ को समाप्त हुई है। दोहा-शतकसे यह बात विशेष मालूम हुई कि उनका जन्म सांगानेरमें हुआ था और यह दोहा शतक काम गढ़ (कामां, भरतपुर) में कीर्तिसिंह नरेशके समयमें बनाया गया। शतकके कुछ दोहे देखिए—

ठौर ठौर सोधत फिरत, काहे अंध अवेव।
तेरे ही घटमैं बसैं, सदा निरंजन देव॥ २५॥
मिलैं लोग बाजा बजै, पान गुलाल फुलेल।
जनम मरन अरु व्याहमैं, है समान सौ खेल॥ ३६॥

पाण्डवपुराण (भारत-भाषा सं० १७५४) के कर्त्ता कवि बुलाखीदासकी माता जैनुल दे' या 'जैनी' बड़ी विदुषी थीं और वे पं० हेमराजकी पुत्री थीं। बुलाखीदासके अनुसार हेमराज गर्गगोत्री अग्रवाल थे[2]।

वर्द्धमान नवलखा

मुलतानके रहनेवाले पाहिराज साहुके पुत्र वर्द्धमान या बद्धूरचित 'वर्द्धमान-वचनिका' की प्रति श्री अगरचन्दजी नाहटाकी कृपासे प्राप्त हुई। ये ओसवाल थे और नवलखा इनका गोत्र था। माघ सुदी पंचमी सं० १७४६ को वर्द्धमान-वचनिकाकी रचना हुई और चैत्र वदी १ संवत् १७४७ को विशालोपाध्याय गणिके शिष्य ज्ञानवर्धन मुनिने मुलतानमें ही इसकी प्रतिलिपि की।

इसके पत्र २० में नीचे लिखे दोहे हैं—

१—अनेकान्त वर्ष १४ अंक १० में देखो 'हिन्दीके नये साहित्यकी खोज'।
२—हेमराज पंडित बसै, तिसी आगरे ठांइ।
गरगगोत गुन आगरौ, सब पूजैं जिस पांइ॥

धरमाचारिज धरमगुरु, श्रीबणारसीदास ।
जासु प्रसादै मैं लह्यौ, आतम निजपदबास ॥ १
बंदूं हूं श्री सिद्धगण, परमदेव उतकिष्ट ।
अरिहंत आदि ले च्यार गुरु, भविकमांहि ए शिष्ट ॥ २
परंपरा ए ग्यानकी, कुंदकुंद मुनिराज ।
अमृतचंद्र राजमल्लजी, सबहूंके सिरताज ॥ ३
ग्रंथ दिगंबरकै भलै, भेष (?) सेतांबर चाल ।
अनेकांत समझै भला, सो ग्याताकी चाल ॥ ४
स्याद्वाद जिनके बचन, जो जानैं सो जांन ।
निश्चै व्यवहारी आत्मा, अनेकांत परमांन ॥ ५

आगे गद्य इस प्रकार है—

"अथ चतुर्विधसंघस्थापना लिख्यते ।

साध्वी १, श्रावक २, श्राविका ३, अंबरसहित जाणवा । जघन्ये साध लज्या जीत न सकै तिणवास्ते स्वेतांबर होवै । साधवी पण निस्संकिता अंगरै वास्ते स्वेतांबर होवै । उतकृष्टा मुनीस्वर ६ गुणठाणे आदि ले केवली भगवंत सीम दिगंबर परम दिगंबर होवै । परम दिगंबर छै तिको मोक्ष साधनरो अंग छै । भावकर्म १, द्रव्य-कर्म २, नोकर्म ३ री त्यागभावना भावै । भेष भावै जिसौ हुवै । परम दिगंबर मोक्ष साधै । दिगंबर मुनीस्वर ओलखवारो लिंग जाणवौ । इतरी चौथे आरेरी बात लिखी छै । जिआं मुनीस्वरांरा संघयण सबला हुता ताहिवै पांचमा आरारी वार्ता लिख्यते ।"

पत्र ३० में ये दो दोहे हैं—

जिनधरमी कुलसेहरो, श्रीमालां सिणगार ।
बाणारसी बहोलिया, भविक जीव उद्धार ॥ १
बाणारसी प्रसादतैं, पायो ग्यांन विग्यांन ।
जग सब मिथ्या जाण करि, पायौ निज स्वथांन ॥ २

पत्र ७६ के अन्तमें—

बाणारसी सुपसाय ले, लाधो भेद विग्यांन ।
परगुण आस्या छंडिकै, लीजै सिवकौ थान ॥

दयासागर मुनि चूंप बताई । बद्धूके मन साची आई ।
जिनंददेवकै साचे बैन, दयासागर ऊतारै जैन ॥ २
दयासागर साचो जती, समझै निज नयसंग ।
अध्यातम वांचै सदा, तजौ करमकौ रंग ॥ ३
पाहिराज साहिको सुतन, नवलख गोत्र उदार ।
आतमग्यानी दास है, वर्धमान सुखकार ॥ ८
धरमदास आतमधरम, साचौ जगमैं दीठ ।
और धरम भरमी गिणे, आत्म अमीसम सीठ ॥ १०
मिट्ठू मीठे जिनवचन, और कड्डू सहु मान ।
उपादेय निज आतमा, और हेय तू जान ॥ ११
सुखानंद निजपद कह्यौ, अविनासी सुखकार ।
अनुभव कीजै पदतणौ, पुदगल सगली छार ॥ १२

मुलतान शहर अध्यात्मी या बनारसीदासजीके अनुयायियोंका मुख्य स्थान रहा है। वहाँके ओसवाल श्रीमाल इसी मतके अनुयायी रहे हैं। वर्धमान वचनिकासे इस बातकी पुष्टि होती है। इसमें धरमदास, भणसाली मिट्ठू, सुखानन्द आदिका उल्लेख है। श्वेताम्बर साधु दयासागरको भी अध्यात्मी बताया है। इस वचनिकाके लिपिकर्त्ता पं० ज्ञानवर्धन मुनि भी श्वेताम्बर थे। श्री अगरचन्दजी नाहटाके अनुसार खरतर गच्छके जिनसमुद्रसूरिने सं० १७११ में गणधरगोत्रीय नेमिदास श्रावकके आग्रहसे आतम-करणीसंवाद ग्रंथ रचा है। खरतरगच्छके सुमतिरंगने सं० १७२२ में मुलतानके श्रावक चाहड़मल्ल, नवलखा वर्धमान आदिके आग्रहसे प्रबोधचिन्तामणि चौपाई और योगशास्त्र चौपाईकी रचना की है। पिछले ग्रन्थमें चाहड़, करमचन्द, जेठमल, ऋषभदास, पृथ्वीराज, शिवराजका उल्लेख किया है। ये सब अध्यातमी थे—

जिनवाणी जगतारक जान, चाहड़ ऋषभदास वर्धमान ।
समझदार श्रावक मुलतानी, करइं सदा मिल अकथ कहानी ॥

दयाकुशलके शिष्य धर्म मन्दिरने १७४० में दयादीपिका चौपाई, १७४१ में प्रबोध-चिन्तामणि, मोहविवेकरास, १७४२ में परमात्मप्रकाश चौपाई (योगीन्दुदेव)

१ यह ग्रन्थ जसलमेरके डूंगरसी भंडारमें है।

बनाये। इनमें मुल्तानके वर्धमान, मीठू, सुखानन्द, नेमिदास, धर्मदास, शान्तिदासका उल्लेख है—" अध्यातम सैली मन लाइ, सुखानन्द सुखदाइजी।"

ए श्रावक आदरकरी जोड़ावी चौपई सारी रे।
अध्यातम पंडित सुधी ते, थापे यहाँ अधिकारी रे॥

मुनि देवचन्दने मुल्तानके भणसाली मिठूमल्लके आग्रहसे ज्ञानार्णव (शुभचन्द्र) के अनुसार ध्यानदीपिका चौपाईकी रचना सं० १७६६ में की। उन्होंने यहाँके श्रावकोंको अध्यातम-श्रद्धाधारी और मिठूमल्लको आतमसूरजध्याता कहा है।[1]

बर्धमानने यद्यपि अपना ग्रन्थ १७४६ में बनाया है, अर्थात् बनारसीदासजीकी मृत्युके ४५ वर्ष बाद, परन्तु उनके 'बनारसी सुपसाय ले,' 'बानारसी प्रसादतें,' 'धरमाचारज-धरम गुरु श्रीबनारसीदास' आदि वाक्योंसे ऐसा मालूम होता है कि उनका बनारसीदाससे शायद साक्षात्कार भी हुआ हो। और धर्मगुरु धर्माचार्य तो वे माने ही जाने लगे थे। १७२२ में सुमतिरंगने प्रबोधचिन्तामणिमें नवलखा वर्धमानका उल्लेख किया है। तब उससे पहले भी उनका रहना सम्भव है।

हीरानन्द मुकीम

ये ओसवाल वंशके थे और अरडक सोनी इनका गोत्र था। इनके पितामहका नाम साह पूना और पिताका नाम कान्हड़ था। अर्धकथानकके अनुसार इन्होंने चैत्र सुदी २ संवत् १६६१ को प्रयागसे सम्मेदशिखरकी यात्राके लिए संघ निकाला था और बनारसीदासके पिता खरगसेन इनकी चिट्ठी आनेपर संघमें जाकर शामिल हो गये थे। यात्रासे लौटते समय लोगोंके अनुरोध पर हीरानन्दने जौनपुरमें चार दिनके लिए मुकाम भी किया था। संघसे लौटनेवाले सम्मेद शिखरके पानीके प्रभावसे बहुतसे यात्री मर गये। खरगसेन भी पटना आकर बीमार हो गये और उन्होंने बहुत दुख पाया[2]।

इस यात्राका विवरण खरतरगच्छके तेजसारके शिष्य वीरविजय मुनिने अपनी

१—देखिए, 'मुल्तानके श्रावकोंका अध्यात्म-प्रेम' नामक लेख। जैन सिद्धान्तभास्कर भाग १३, किरण १

२—अर्धकथानक २२३–२४३ पद्य।

सम्मेद-शिखर चैत्यपरिपाटीमें भी किया है और श्री अगरचन्दजी नाहटाने उसे हाल ही प्रकाशित किया है।

इसके अनुसार खरतर गच्छका यात्रासंघ माघ सुदी १३ सं० १६६० को आगरेसे चला था और शाहजादपुर होता हुआ प्रयाग पहुँचा था। साह हीरानन्द सलीमशाहको प्रसन्नकर उनकी आज्ञासे प्रयागसे बनारस आकर संघमें शामिल हुए थे, जब कि अर्धकथानकके अनुसार चैत्र सुदी २ को हीरानन्दने प्रयागसे संघ निकाला था[२]। इस चैत्यपरिपाटीसे भी मालूम होता है कि हीरानन्द शाह सलीमके कृपापात्र थे और बहुत बड़े धनी थे। उनके साथ अनेक हाथी, घोड़े, पैदल और तुपकदार थे। उनकी ओरसे प्रतिदिन संघका भोज होता था और सबको सन्तुष्ट किया जाता था।

सलीमके गद्दीनशीन होनेपर इन्होंने संवत् १६६७ में उसे अपने घर आमंत्रित करके बहुत बड़ा नजराना दिया था जिसका आलंकारिक वर्णन 'जगन' नामक कविने किया है[३]।—

संवत् सोलह सतसठे, साका अति कीया।
मेहमानी पातिसाहदी, करके जस लीया॥
चुनि चुनि चोखी चुनी, परम पुराने पना,
कुन्दनकों देने करि लाए घन तावके।
लाल लाल लाल लागे कुतब (?) बदखशां[४]
विविध बरन बने बहुत बनावके॥

१—अनेकान्त, वर्ष १४, अंक १०।

२—संघ निकालनेके समयमें यह अन्तर क्यों पड़ता है, कुछ समझमें नहीं आया।

३—यह कविता श्री मणिलाल बकोरभाई व्यासने 'श्रीमालीओनो ज्ञातिभेद,' नामक गुजराती पुस्तकमें दी है, जो बहुत ही अशुद्ध है। यहाँ हमने उसके कुछ समझमें आने योग्य अंश ही शुद्ध करके उद्धृत किये हैं।

४—देश, जहाँके लाल (रत्न) बहुत प्रसिद्ध है।

रूपके अनूप आछे अंबलक आभरन,
देखे न सुने न कोऊ ऐसे राणा रावके ।
बावन मतंग माते नंदजू उचित (?) कीने,
ज़रीसेती जरि दीने अंकुस जड़ावके ॥

× × ×

दानके विधानको बखान हौं कहाँ लौं करौ,
बीरनिमें हीरा देत हीरानंद जौहरी ॥

× × ×

पाइए न जेते जवाहर जगमांझ ढूंढ़े,
जेतो ढेर जौहरी जवाहरको लायौ है ।
कसँबी कुमांचे मखमल जरवाफ साफ,
झरोखालौं गृहलग मगमें बिछायौ है ।
जंपत 'जगन' विधि आन न बरनि जात,
जहाँगीर आए नंद आनंद सवायौ है ।
करसी ?) छिटकि कहूँ कहूँ उमराउनकी
पेसँकसी पेखतैं पसीना तन आयौ है ॥

आगरेके श्वेताम्बर जैनमंदिरके सं० १६८८ के प्रतिमालेख (नं० १४५४) के 'राजद्वारशोभनीक सोनी श्री हीरानन्द श्री जहाँगीरस्य... गृहे' पदसे भी इस बातका संकेत मिलता है कि हीरानन्दने जहाँगीरको अपने घरपर आमंत्रित किया था। एक और प्रतिमालेख (नं० १४५१) इस प्रकार है—"॥ ॐ सिद्धिः ॥ संवत् १६६८ ज्येष्ट सुदि १५ तिथौ गुरुवासरे अनुराधानक्षत्रे ओसवालज्ञातीय अरडकसोनीगोत्रे साह पूनासंताने सा० कान्हड भा० भामनीव्रहू पुत्र सा० हीरानन्देन बिम्बं कारापितं प्रतिष्ठितं श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनवर्धनसूरिसंताने श्रीलब्धिवर्द्धनशिष्येन।" एक और प्रतिमालेख (नं० १४५७) इस प्रकार है—"सं० १६६८ ज्येष्ट सुदि १५ गुरौ ओसवालज्ञातीयशृंगार अरडकसोनीगोत्रे सा० हीरानन्दपुत्र सा० निहालचन्देन श्रीपार्श्वनाथकारिताः

१—चितकबरा। २ बढ़िया मलमल। ३–४ जरीके कपड़े। ६ भेंट उपहार।

८

सर्परूपाकार श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनसिंहसूरिपट्टे श्रीजिनचन्द्रसूरिणा श्रीआगरा-नगरे।" साह निहालचन्द हीरानन्दके पुत्र थे[1]।

जगतसेठके पूर्वज हीरानन्दके पौत्र और माणिकचन्दके पुत्र फतेहचन्दका बखान करनेवाले कुछ पद्य मुनि कान्तिसागरने अपने एक लेखमें प्रकाशित किये हैं जिनके रचयिता निहाल नामके एक यति थे, जो बरसों एक साथ रहे थे और उन्होंने पौष वदी १३ सं० १७९८ को मकसूदाबादमें ये लिखे थे। इनके अनुसार राजा माणिकचन्दने मुर्शिदाबाद (बंगाल) में अपनी कोठी स्थापित की और फर्रुखसियर बादशाहने उन्हें सेठका पद दिया। उनके इन्द्रके समान पुत्र फतेह-चन्द दिल्ली गये और तब उन्हें दिल्लीपतिने जगतसेठका खिताब दियाँ।

१—अर्ध-कथानकके पिछले संस्करणमें हमने हीरानन्द मुकीमको सुप्रसिद्ध जगतसेठका वंशज लिखा था, बो भूल थी। जगतसेठकी पदवी तो सेठ माणिक-चन्दके पुत्र फतेहचन्दको दिल्लीके बादशाहने दी थी और वे हीरानन्दके बाद हुए हैं। इस तरह ये हीरानन्द जगतसेठके पूर्वज हीरानन्द नहीं, किन्तु एक दूसरे ही धनी सेठ थे।

२—देखो, विशालभारत, मार्च १९४७

३ देस बंगालो उत्तम देस, आए माणिकचन्द नरेस।
नाम नगर मकसूदाबाद, करि कोठी कीनौ आबाद ॥ ९
राजा प्रजा और उमराव, फौजदार सूबा नव्वाब।
सहुको माने हुकुम प्रमान, दिल्लीपत दै अतिसन्मान ॥ १०
पातस्याह श्री फर्रुकसाह, सेठ पदस्थ दियौ उच्छाह।
माणिकचंद सेठनै नाम, फिरी दुहाई ठामो ठाम ॥ ११
देस बंगालाकेरो धणी, दिन दिन संतति संपति घणी।
जाकै पुत्र सुरिंद समान, प्रगटे फतेहचंद सुग्यान ॥ १२
दिली जाइ दिल्लीपत मेट, नाम किताब दियौ जगसेठ।
जगतसेठ जगती अवतार... ॥ १३

आनन्दघन

आनन्दघन, घनानन्द, आनन्द नामके अनेक कवि हो गये हैं, उनमेंसे एक अध्यातमी कवि बनारसीदासके समयमें हुए हैं। स्व० मोतीचन्दजी कापड़ियाने अनुमान किया है कि उनका जन्मकाल सं० १६६० और स्वर्गवास १७३० के लगभग होना चाहिएं। क्यों कि उपाध्याय यशोविजयका देहोत्सर्ग वि० सं० १७४३ में डभोई (गुजरात) में हुआ था और उनका आनन्दघनसे साक्षात्कार हुआ था। परन्तु इस साक्षात्कारका अभी तक कोई स्पष्ट और विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिला है। उपाध्यायजीका लिखा हुआ एक अष्टक है जिसमें कई जगह 'आनन्दघन' नाम प्रयुक्त हुआ है और उसी परसे उक्त साक्षात्कारकी कल्पना की गई है। उक्त अष्टकका पहला पद यह है—

मारग चलत चलत गात आनंदघन प्यारे।
ताको सरूप भूप तिहुं लोकतैं न्यारो, बरखत मुखपर नूर।
सुमति सखीके संग नित नित दौरत, कबहुं न होतहि दूर।
'जस विजय' कहै सुनो हो आनंदघन, हम तुम मिले हजूर ॥ १ ॥

इसमें आनन्दघन शब्द स्पष्ट ही चिदानन्दघन निजात्माको लक्ष्य करके है, जो सुमति या सम्यक्ज्ञानके साथ निरन्तर रहता है, कभी दूर नहीं होता।

दूसरे पदमें 'सुमति सखी और नवल आनंदघन मिल रहे गंग तरंग' कहा है।

तीसरे पदमें कहा है—

आनंद कोउ न पावै, जो पावै सोई आनंदघन ध्यावै।
आनंद कौन रूप कौन आनंदघन, आनंद गुण कौन लखावै।
सहज संतोष आनंद गुण प्रगटत, सब दुविधा मिट जावै।
'जस' कहै सोई आनंदघन पावत, अंतर जोत जगावै।

१—'श्रीआनन्दघनजीना पदों' की गुजराती प्रस्तावना।—महावीर जैन विद्यालय प्रकाशन।

२—डभोईमें यशोविजयजीकी चरणपादुकायें सं० १७४३ में स्थापित की गई हैं।

इसमें स्पष्ट कहा है कि जो आनन्दघन आत्माका ध्यान करता है वही आनन्द पाता है और सहज संतोषसे आनन्द गुण प्रकट होता है। उसके प्रकट होते ही आनन्दघन आत्माकी प्राप्ति होती है और अन्तर्ज्योति जग जाती है।

पाँचवें पदमें कहा है, " आनंद कोउ हमें दिखलावै। कहाँ ढूँढ़त तू मूरख पंथी, आनंद हाट न बिकावै " अर्थात् यह आनन्द या आनन्दघन बाजारमें नहीं मिलता है, जो तू उसे ढूँढ़ता फिरता है।

व्रजके भक्त कवियोंने आनन्दघन या घनआन द शब्दका व्यवहार अपने इष्टदेव श्रीकृष्णके लिए किया है। आनन्दघनने भी आनन्दघन आत्माके सिवाय कहीं कहीं अपने इष्ट परमात्माके लिए किया है और चिदानन्द आत्माके लिए तो प्रायः ही किया है —

" आनन्दघन प्रभु दास तिहारौ, जनम जनमके सेन ॥ " पद १७
" आनंदघन प्रभुके घरद्वारै, रहन करूँ गुणधामा ॥ " पद २६
" आनंदघन चेतनमय मूरति, सेवक जन बलि जाही ॥ " २९
" आनंदघन प्रभु बांहड़ी झालै, बाजी सघली पालै ॥ " ४८

सो पूर्वोक्त ' आनन्द ' या ' आनन्दघनसे मिले ' जैसे शब्दोंसे किसी आनन्दघन नामक महात्मासे मिलनेका अनुमान करना कष्ट-कल्पना ही मालूम होती है। यदि यशोविजयजी उनसे मिले होते तो इन शब्दोंके साथ कुछ और स्पष्ट संकेत दे सकते थे। यशोविजयजीके लिखे हुए बीसों ग्रन्थ हैं उनमें भी तो वे कहीं न कहीं उल्लेख कर सकते थे।

आनन्दघनके पदोंसे और उनके सम्बन्धमें प्रचलित जनश्रुतियोंसे मालूम होता है कि वे अध्यातमी सन्त थे और यशोविजयजीकी अध्यात्मियोंके प्रति सद्भावना नहीं थी। उन्होंने ' अध्यात्ममतपरीक्षा ' और ' अध्यात्ममतखण्डन ' नामके दो ग्रन्थ अध्यात्मियोंके विरोधमें ही लिखे हैं।

आनन्दघनकी वाणी सन्त कवियों जैसी लाग-लपेटसे रहित है। यद्यपि वे श्वेताम्बर सम्प्रदायमें दीक्षित साधु थे, परन्तु कहा जाता है कि वे लोकसंसर्ग छोड़कर निर्जन स्थानोंमें पड़े रहते थे और परम्परागत साध्वाचारकी कोई परवा न करते थे। साधु और श्रावकों द्वारा वे उपेक्षित थे। इससे भी इस बातपर विश्वास

नहीं होता कि यशोविजय उपाध्याय जैसे प्रतिष्ठाप्राप्त श्वेताम्बर साधु उनकी प्रशंसा करें या उनसे मिलें।

श्रीअगरचन्द नाहटाके पहले गुटकेमें आनन्दघनजीके ६५ पद लिखे हुए हैं[1] और यह गुटका बनारसीदासजीके साथी कुँवरपाल चोरडियाने सं० १६८४-८५ में अपने पढ़नेके लिए लिखा था। इससे मालूम होता है कि उनकी रचना १६८४ से काफी पहले हो चुकी थी और उनकी प्रसिद्धि हो जानेपर ही अध्यातमी कुँवरपालने उनकी प्रतिलिपि की होगी। इस लिए समय पर विचार करनेसे भी यशोविजयजीके साथ आनन्दघनके साक्षात्कार होनेकी बातमें सन्देह होता है।

यशोविजयजीके जन्म-कालका तो ठीक पता नहीं। परन्तु वह सं० १६८० के लगभग अनुमान किया जाता है और १६८८ में उन्हें दीक्षा दी गई थी। कान्तिविजय गणिकी 'सुजलबेलि भास'के अनुसार सं० १६९९ में अहमदाबादमें उन्होंने अष्टावधान किये थे और तभी उनकी योग्यता देखकर विधाध्ययनके लिए किसी धनीके द्वारा बनारस भेजनेका विचार किया गया था। अर्थात् उनके जन्म-काल और दीक्षाकालके पहले ही आनन्दघनके पद रचे जा चुके थे।

श्रीनाहटाजी और कुछ दूसरे लेखकोंने बतलाया है कि आनन्दघनका मूल नाम लाभानन्द था और वे खरतर गच्छके साधु थे। जैसा कि अन्यत्र बतलाया गया है खरतरगच्छके अनेक साधु अध्यातमी हुए हैं।

कुँवरपालने अपने गुटकोंमें अध्यातमी कवियोंकी—बनारसीदास, रूपचन्द, ज्ञानानन्द, कबीर, सूरदास आदिकी रचनायें संग्रह की हैं और उनकी इसी रुचिका परिचय आनन्दघनके पदोंसे मिलता है। सो आनन्दघन बनारसी-दासजीसे कुछ पहलेके अध्यातमी ही जान पड़ते हैं।

१—इस गुटकेमें आनन्दघनके पदोंके बाद द्रव्यसंग्रह, नयचक्र आदि लिखे हुए हैं। नाहटाजी बतलाते हैं कि उन पदोंकी लिपि और आगेकी लिपिमें कुछ भिन्नता है। फिर भी वे पद इस गुटकेके प्रारम्भमें ही लिखे हुए हैं। इससे पीछेके लिखे हुए नहीं जान पड़ते।

४—श्रीमाल जाति

श्रीमाल जातिकी उत्पत्ति श्रीमाल नामक स्थानसे बतलाई जाती है। अहमदाबादसे अजमेर जानेवाली रेलवे लाइनके पालनपुर और आबू रोड स्टेशनसे लगभग ५० मील गुजरात और मारवाड़की सरहदपर प्राचीन 'श्रीमाल'के खण्डहर पड़े हुए हैं और अब उक्त स्थान 'भिन्नमाल' कहलाता है। श्रीमाल-पुराणमें लिखा है कि सतयुगमें विष्णुपत्नी लक्ष्मीदेवीने इसकी स्थापना की थी। सतयुगमें इसका नाम पुष्पमाल, त्रेतामें रत्नमाल, द्वापरमें श्रीमाल और कलियुगमें भिन्नमाल रहा। विमलप्रबन्ध और विमलचरितके अनुसार द्वापरयुगके अन्तमें श्रीमाल नगरमें श्रीमाल जातिकी स्थापना हुई और श्रीदेवी इस जातिकी कुल देवी मानी गई। एक श्वेताम्बर जैनकथाके अनुसार श्रीमल्ल राजाके नामसे उसके नगरका नाम श्रीमाल पड़ा था। इसी तरह एक और कथाके अनुसार गौतम स्वामीने उस राजाको जैन बनाकर उसके नामसे श्रीमाल कुल स्थापित किया। लक्ष्मी श्रीमल्ल राजाकी पुत्री थी और वह आबूके परमार राजाको ब्याही गई थी। परन्तु ये सब पौराणिक कहानियाँ हैं, इनमें कुछ अधिक तथ्य नहीं मालूम होता।

बनारसीदासजी इनमेंसे किसी भी कहानीकी कोई चर्चा नहीं करते और वे कहते हैं कि रोहतकके निकटके बिहोली गाँवके राजवंशी राजपूत गुरुके उपदेशसे जैन हो गये, जो णमोकार मन्त्रकी माला पहिनकर श्रीमाल कहलाये और बिहोलीके राजाने उनका गोत्र बिहोलिया ठहराया। इसमें इतना तो ठीक मालूम होता है कि बिहोली गाँवके कारण इनका गोत बिहोलिया हुआ। जैनोंके अधिकांश गोत्रोंके नाम स्थानोंके कारण ही रक्खे गये हैं, परन्तु समग्र श्रीमाल जातिके उत्पत्तिस्थानके विषयमें वे कुछ नहीं कहते। अधिक संभव यही है कि भिनमाल या श्रीमालसे श्रीमाल जाति निकली हो। हुएनसंगके समयमें यह नगर गुर्जर देशकी राजधानी था।

श्रीमाल जातिकी जो गोत्रसूची मिलती है, उसमें १२५ के करीब गोत्रोंके नाम हैं, जिनमेंसे अर्धकथानकमें बूकड़ी, खोबरा, चिनालिया, ढोर,

बदलिया, बिहोलिया, ताँत्री, मोठिया, और सिंघड़ गोत्रके श्रीमालोंका उल्लेख किया गया है।

श्रीमाल धनी और सम्पन्न जाति है। गुजरात और बम्बई प्रान्तमें इसकी आबादी अधिक है। राजपूतानेमें श्रीमाल वैश्योंके अतिरिक्त श्रीमाल ब्राह्मण और श्रीमाल सुनार भी हैं। वैश्योंमें जैन और वैष्णव श्रीमाल दोनों हैं। जैनोंमें श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुयायी ही अधिक हैं। खानदेशके घरणगाँव और पंजाबके मुल्तान आदि स्थानोंमें श्रीमालोंके कुछ घर दिगम्बर सम्प्रदायके अनुयायी भी रहे हैं।

गुजरात और बम्बई प्रान्तके श्रीमालोंमें किसी भी गोत्रका अस्तित्व नहीं है। इस विषयमें एक कहावत प्रसिद्ध है कि " गुजरातमें गोत नहीं, और मारवाड़में छोत (छूत) नहीं। " यहाँ ओसवाल पोरवाड़ आदि जातियोंमें भी गोत्र नहीं है। अपने अपने धन्धोंसे ही वे अपना परिचय देते हैं, जैसे घिया (घीवाले) दोसी (दूष्य या कपड़ेके व्यापारी) नाणावटी (नाणा या सिक्केके व्यापारी सराफ), जवेरी (जौहरी) आदि। परन्तु बनारसीदासजीने आगरा, जौनपुर, खैराबाद आदिके श्रीमालोंका उल्लेख गोत्रसहित किया है। जान पड़ता है ये लोग वहाँ पहलेसे बसे हुए होंगे और मारवाड़की ओरसे उस ओर गये होंगे जहाँ कि नामके साथ गोत्र अवश्य रहता है।

जहाँ तक हम जानते हैं वैश्योंकी वर्तमान जातियाँ दसवीं शताब्दिसे पहलेकी नहीं हैं। श्रीमाल जातिका भी कोई उल्लेख इससे पहलेका नहीं मिलता। सतयुग द्वापर या त्रेतामें जातियोंकी उत्पत्तिसम्बन्धी कथाओंमें कोई ऐतिहासिकता नहीं है।

बनारसीदासजीके बस्ता या वस्तुपाल, जेठू या जेठमल्ल, मूलदास, पर्वत, कुँअरजी, अरथमल आदि पूर्व पुरुषोंके नाम और छजमल, घनमल, चापसी, जसा, धरमसी आदि रिश्तेदारोंके नामोंसे भी श्रीमाल वंशकी उत्पत्ति पंजाबमें नहीं, भिन्नमालमें ही ठीक बैठती है। बादशाहों, सूबेदारों, नवाबोंके कारबारमें सहायक होनेसे यह जाति उत्तर भारत, बिहार, बंगाल तक फैल गई थी।

५–जौनपुरके बादशाह

बनारसीदासजीने अपने पुरखोंसे सुनसुनाकर जौनपुरके नौ बादशाहोंके नाम लिखे हैं[१]। महापंडित राहुल सांकृत्यायनने लिखा है[२] कि मुहम्मद तुगलकका ही दूसरा नाम जौनाशाह था और उसीके नामसे यह शहर बसाया गया। हो सकता है कि गोमतीके किनारे पहले भी कोई नगर रहा हो जिसका नाम मालूम नहीं। मुन्शी देवीप्रसादजीने फारसी तवारीखोंके आधारसे लिखा है[३] कि मुहम्मद तुगलकके कोई बेटा नहीं था, इसलिए उसके काका सालार रज्जबका बेटा फीरोज शाह बारुबक बादशाह हुआ। इसने सं० १४२९ में बंगालसे लौटते हुए गोमतीके तीरपर एक अच्छी समचौरस जमीन देखकर यह शहर बसाया और उसका नाम अपने चचेरे भाई मुहम्मद तुगलकके असली नाम मलक जौनाके नामसे जौनपुर रखा, क्योंकि उसने स्वप्नमें मलिक जौनाको यह कहते हुए सुना था कि शहरका नाम मेरे नामपर रखना। दूसरे बादशाहका नाम बनारसीदासने बबक्कर शाह लिखा है, वह फिरोजशाह बारबुक है। तीसरा जो सुरहर सुलतान लिखा है वह ख्वाजाजहाँ है जिसका नाम मलिक सरवर था। सरवर ही सुरहर हो गया है। चौथा जो दोस्त मुहम्मद लिखा है वह मुबारिक शाह है जिसका नाम करनफल था। शायद जौनपुरवाले उसे दोस्त मुहम्मद कहते थे। पाँचवाँ जिसको शाह निजाम लिखा है उसका पता मुबारक शाह और इब्राहीमके बीचमें कुछ नहीं लगता। छट्ठा जो शाह बिराहिम लिखा है वह इब्राहीमके बेटे महमूद और पोते मुहम्मद शाहके पीछे हुआ था। बीचके दो बादशाहोंके नाम नहीं दिये। आठवाँ जो गाजी लिखा है वह सैयद बहलोल लोदी है। शाह हुसैनके पीछे यही जौनपुरका मालिक हुआ। नवाँ बख्या सुलतान बहलोलका बेटा बारबुक हो सकता है।

---

१ - अर्धकथानक पद्य ३२–३७।

२ —देखो, मई १९५७ की सरस्वतीमें 'हेमचन्द्र विक्रमादित्य लेख।'

३ —देखो, बनारसीविलास (प्रथम संस्करण सन् १९०५ पृ० २६, २८)

महापण्डित राहुल सांकृत्यायनने मई १९५७ की सरस्वतीमें 'हेमचन्द्र विक्रमादित्य' शीर्षक एक लेख लिखा है। उसमें जौनपुरके सम्बन्धमें कुछ विशेष जानने योग्य बातें लिखी हैं, जो यहां दी जाती हैं—

"जौनपुरकी बादशाहतमें हिन्दू-मुसलमान दोनोंका बराबरीका दर्जा था। उसने वहाँकी संस्कृतिको नहीं भुलाया जिसमें वह साँस ले रही थी। भारतीय संगीतको उसने प्रश्रय दिया। अवधी भाषा और साहित्यका समर्थन किया जिसका सुबूत यह है कि अवधीके महाकवि मंझन कुतुबन और जायसी जौनपुर दरबारके ही थे जिन्होंने मुसलमान होते हुए भी देशकी भाषा और शैलीको अपनाया।

जौनपुरका व्यापार

जौनपुरमें जो बनारसीदासजीने जवाहिरातका व्यापार होना लिखा है, सो सही है। क्यों कि जौनपुर आगरे और पटनेके बीचमें बड़ा भारी शहर था, और जब वहाँ बादशाही थी, उस वक्त तो दूसरी दिल्ली बना हुआ था, और चार कोसमें बसता था।

इलाहाबाद बसनेके पीछे जौनपुर उसके नीचे कर दिया गया था।

आईने अकबरीमें जौनपुरके १९ मुहाल लिखे हैं, परंतु अब तो वह जौनपुर पाँच ही तहसीलोंका जिला रह गया है।

जौनपुरकी बस्ती अकबरके समयमें कितनी थी, इसका पता जुगराफिए (भूगोल) जौनपुरसे मिलता है। उसमें लिखा है कि अकबर बादशाहने गरीबोंकी आँखोंका इलाज करनेके लिए एक हकीमको भेजा था, जो गरीबोंका मुफ्त इलाज करता था, और अमीरोंको मोल लेकर दवा देता था। तो भी हजार पन्द्रह सौ रुपए रोजकी उसकी आमदनी हो जाती थी। एक दिन उसके गुमाश्तोंने जब उससे कहा कि आज तो पाँचसौका ही सुरमा बिका है, तब उसने एक बड़ी आह भरी और कहा—हाय! जौनपुर वीरान (ऊजड़) हो गया। फिर वह उसी दिन आगरेको चला गया।

६—चीन कुलीच खाँ

यह इन्दूजानका रहनेवाला जानी कुरवानी जातिका तुर्क था। बादशाह अकबरने इसे सं० १६२९ में सूरतकी किलेदारी, सं० १६३५ में गुजरातकी सूबेदारी और फिर १६३७ में वजारत दी। १६४० में वह गुजरात भेजा गया और १६४६ में राजा तोड़रमल्लके मरने पर उसे दीवान बना दिया गया, जो १६५ तक रहा। इसी बीच १६५८ में जौनपुर भी उसकी जागीरमें दे दिया गया। सं० १६५३ में शाहजादा दानियाल इलाहाबादके सूबेमें भेजा गया, तो कुलीच खाँको उसका अतालीक (शिक्षक) बनाकर साथ रख दिया। उसकी बेटी शाहजादेको व्याही थी।

सं० १६५६ में आगरेकी और १६५८ में लाहोर तथा काबुलकी सूबेदारी उसे दी गई। १६६२ में बादशाह जहाँगीरने उसे गुजरातमें बदल दिया और १६६४ में लाहोर भेज दिया। इसके बाद १६६९ में वह काबुल और अफगानिस्तानके बन्दोबस्त पर मुकर्रर होकर गया और वहाँ सं० १६७८ में मर गया।

एक तो सं० १६५५ में जौनपुर कुलीच खाँकी जागीरमें ही था और दूसरे सं० १६५३ में उसकी तैनाती भी इलाहाबादके सूबेमें हो गई थी जिसके नीचे जौनपुर था। जहाँगीरके समयके मोतमित खाँके लेखोंका जो सार मिला है उससे मालूम होता है कि जौनपुरका सूबेदार नवाब कुलीच खाँ प्रजापीड़क था। उसकी शिकायत आने पर बादशाहने उसे वापिस बुलाया और यदि वह रास्तेमें ही न मर जाता तो उसे कड़ा दण्ड मिलता। अकबर और जहाँगीरने कभी किसी अत्याचारीकी रियायत नहीं की।

७—लालबेग और नूरम

तुजक जहाँगीरीकी भूमिकामें जो हाल जहाँगीर बादशाहकी युवराजावस्थाका लिखा है, उससे अर्धकथानकमें लिखे हुए जौनपुरके विग्रहका पता लग जाता है।

संवत् १६५५ में अकबर बादशाह तो दक्खन फतह करनेको गये और अजमेरका सूबा शाह सलीमको जागीरमें देकर रानाको सर करनेका हुक्म दे गये। शाह कुलीचखाँ महरम और राजा मानसिंहकी नौकरी इनके पास बोली गई। बंगालेका सूबा जो राजाके पास था, उसे राजा अपने बड़े बेटे जगतसिंहको सौंपकर शाही खिदमतमें रहने लगे।

शाह सलीमने अजमेर आकर अपनी फौज रानाके ऊपर भेजी और कुछ दिनों पीछे आप भी शिकार खेलते हुए, उदयपुरको गये, जिसको राना छोड़ गये थे, और सिपाहियोंको पहाड़ोंमें भेजकर रानाके पकड़नेकी कोशिश करने लगे।

खुशामदी और स्वार्थी लोग इनके कान भरा करते थे कि बादशाह तो दक्खनके लेनेमें लगे हैं और वह मुल्क एकाएक हाथ आनेवाला नहीं है; और वे भी उसे बगैर लिये वापस होनेके नहीं। इसलिए हजरत जो यहाँसे लौटकर आगरेके परेके आबाद और उपजाऊ परगनोंको ले लें, तो बड़े फायदेकी बात हो। बंगालेका फिसाद भी जिसकी खबरें आ रही हैं और जो बगैर गये राजा मानसिंहके मिटनेवाला नहीं है, जल्द दूर हो जायगा। यह बात राजा मानसिंहके भी मतलबकी थी, क्योंकि उन्होंने बंगालेकी रखवालीका जिम्मा ले रक्खा था, इस लिए उन्होंने भी हाँमें हाँ मिलाकर लौट चलनेकी सलाह दे दी।

शाह सलीम इन बातोंसे राजाकी मुहीम अधूरी छोड़कर इलाहाबादको लौट गये। जब आगरेमें पहुँचे तो वहाँका किलेदार कुलीचखाँ पेशवाईको आया। उस वक्त लोगोंने बहुत कहा कि, इसको पकड़ लेनेसे आगरेका किला जो खजानेसे भरा हुआ है, सहजहीमें हाथ आता है। मगर इन्होंने कबूल न करके उसको रुखसत कर दिया और यमुनासे उतरकर इलाहाबादका रास्ता लिया। इनकी दादी हौदेमें बैठकर इनको इस इरादेसे मना करनेके लिए किलेसे उतरी ही थी कि ये नावमें बैठकर जल्दीसे चल दिये और वे नाराज होकर लौट आई।

सावन सुदी ३ संवत् १६५७ को शाह सलीम इलाहाबादके किलेमें पहुँचे और आगरेसे इधरके बहुतसे परगने लेकर उन्होंने अपने नौकरोंको जागीरमें दे दिये। बिहारका सूबा कुतबुद्दीनखाँको दिया। जौनपुरकी सरकार लालबेगको, और कालपीकी सरकार नसीम बहादुरको दी। घनसूर दीवानने तीन लाख रुपएका

खजाना बिहारके खालिसेमेंसे तहसील करके जमा किया था, वह भी उससे ले लिया।

इससे जाना जाता है कि शाह सलीमने जो लालाबेगको जौनपुर दिया था, उसे नूरम सुलतान लेने नहीं देता होगा, जिसपर शाह सलीम शिकारका बहाना करके गया था, फिर नूरमबेगके हाजिर होनेपर लालाबेगको वहाँ रख आया होगा।

८—गाँठका रोग या मरी (प्लेग)

वि० सं० १६७३ में आगरेमें गाँठका रोग फैलनेका अर्धकथानक (५७२-७६) में जिक्र किया गया है, उसके सम्बन्धमें नीचे लिखे प्रमाण और मिले हैं—

१ – जहाँगीरनामेमें बादशाह जहाँगीरने अपने चौदहवें वर्षके विवरणमें लिखा है, "वैशाख वदी १ मंगलवार सं० १६७५ की रातको बादशाहने अहमदाबादकी ओर बाग फेरी। गर्मीकी तेजी और हवाके बिगड़ जानेसे लोगोंको बहुत कष्ट होने लगा था, इसलिए राजधानीको जानेका विचार छोड़कर अहमदाबादमें रहना स्थिर किया। क्योंकि गुजरातकी बरसातकी बहुत प्रशंसा सुनी थी। अहमदाबादकी भी बहुत बड़ाई होती थी। उसी समय यह भी खबर आई कि आगरेमें फिर मरी फैल गई है और बहुतसे आदमी मर रहे हैं। इससे आगरे न जानेका विचार और भी स्थिर हो गया।

ज्योतिषियोंने माघ सुदी २ सं० १६७५ को राजधानीमें प्रवेश करनेका मुहूर्त निकाला था। परन्तु इन दिनों शुभचिन्तकोंने अनेक बार प्रार्थना की कि ताऊनका रोग आगरेमें फैला हुआ है। एक दिनमें न्यूनाधिक १०० मनुष्य काँख तथा जाँघके जोड़ या गलफड़ेमें गिलटी उठकर मरते हैं। यह तीसरा वर्ष है। जाड़ेमें यह रोग प्रबल हो जाता है और गर्मीमें जाता रहता है। अजब बात यह है कि इन तीन वर्षोंमें आगरेके सब गाँवों और कसबोंमें तो फैल चुका है परंतु फतहपुरमें बिलकुल नहीं पहुँचा। अमनाबादसे फतहपुर ढाई कोस है, जहाँके मनुष्य मरीके डरसे घरबार छोड़कर दूसरे गाँवोंमें चले गये हैं। इस

लिए विचारपूर्वक यह बात ठहराई गई कि इस मुहूर्तपर फिर प्रवेश करूँ और जब रोग धीमा पड़ जावे तब दूसरा मुहूर्त निकलवाकर आगरे जाऊँ।

मृत आसफखाँकी बेटीने, जो खान आजमके बेटे अब्दुल्लाखाँके घरमें है, बादशाहसे यह विचित्र चरित्र ताऊनके विषयमें कहा और उसके सत्य होनेपर बहुत जोर दिया। इससे बादशाहने वह घटना तुजुकमें लिख ली।

"उसने कहा था कि एक दिन घरके आँगनमें एक चूहा दिखाई दिया। वह मतवालोंकी भाँति गिरता पड़ता इधर-उधर दौड़ रहा था। उसे कुछ सुझाई न देता था। मैंने एक लौण्डीसे इशारा किया। उसने उसकी पूँछ पकड़कर बिल्लीके आगे डाल दिया। पहले तो बिल्लीने बड़े मोदसे उछलकर उसको मुँहमें पकड़ा किन्तु पीछे घिन करके तुरन्त छोड़ दिया। बिल्लीके चेहरेपर धीरे-धीरे मांदगीके चिह्न दिखाई देने लगे। दूसरे दिन वह मरण-प्राय हो गई। तब मेरे मनमें आया कि थोड़ा-सा तिरियाक-फारूक (विष उतारनेवाली एक औषध) इसको देना चाहिए। जब उसका मुँह खोला गया तो देखा कि उसकी जीभ और तालू काला पड़ गया था। तीन दिन बुरा हाल रहा। चौथे दिन उसे कुछ सुध आई। फिर लौण्डीको ताऊनकी गाँठ निकली। उसकी जलन और पीड़ासे वह सुध भूल गई। रंग बदलकर पीला और काला हो गया। प्रचण्ड ज्वर चढ़ा। दूसरे दिन वह मर गई। इसी प्रकार सात-आठ मनुष्य उस घरमें मरे और रोगग्रस्त हुए। तब मैं उस स्थानसे निकलकर बागमें चली गई। वहाँ फिर किसीके गाँठ नहीं निकली, पर जो पहले बीमार थे वे नहीं बचे। आठ-नौ दिनमें सत्रह मनुष्य मर गये। उसने यह भी कहा कि जिनके गाँठें निकली हुई थीं, वे यदि किसीसे पानी पीने या नहानेको माँगते थे तो उसको भी यह रोग लग जाता था। अन्तको ऐसा हुआ कि मारे डरके कोई उनके पास नहीं जाता था।"

२—बम्बईके भूतपूर्व कमिश्नर 'सर जेम्स केम्बले' ने 'अहमदाबाद गेजेटियर' में कुछ दिन पहले इस विषयसम्बन्धी अनेक उल्लेख किये हैं। उन्होंने लिखा है कि "ईस्वी सन् १६१८ अर्थात् वि० सं० १६७५ के लगभग अहमदाबादमें प्लेग फैल रहा था, जो कि आगरा-दिल्लीकी ओरसे आया था, और जिसका प्रारंभ ई० स० १६११ में पंजाबसे निश्चित होता है। जिस समय प्लेग आगरा और दिल्लीमें कहर मचा रहा था, वहाँके तत्कालीन बादशाह

जहाँगीर उससे डरकर अहमदाबादमें कुछ दिनोंके लिए आ रहे थे। कहते हैं कि उनके आनेके थोड़े ही दिन पीछे इस छुआछूतके रोगने अहमदाबादमें अपना डेरा आ जमाया था। सारांश यह कि अहमदाबादमें आगरा-दिल्लीसे और आगरा-दिल्लीमें पंजाबसे प्लेगका बीज आया था। उस समय प्लेगका चक्र यत्र तत्र आठ वर्षके लगभग चला था। वर्तमान प्लेगकी नाईं उस समय भी उसका चूहोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता था, अर्थात् उस समय जहाँ जहाँ रोगका उपद्रव होता था, चूहोंकी संख्यामें वृद्धि होती थी।"

३—उस समय हिन्दुस्तानमें जो यूरोपियन रहते थे, उन्हें भी प्लेगमें फँसना पड़ा था। वह काले और गोरोंके साथ समदर्शीकी नाईं तब भी एक-सा वर्ताव करता था। इस विषयमें मि० टेरी नामक ग्रंथकारने लिखा है, "नौ दिनके अरसेमें सात अँग्रेजोंकी मृत्यु हो गई। प्लेगमें फँसनेके बाद इन रोगियोंमेंसे कोई भी चौबीस घंटेसे अधिक जीता नहीं रहा, बहुतोंने तो बारह घंटेमें ही रास्ता पकड़ लिया।" इतिहाससे पता लगता है कि सन् १६८४ में औरंगजेब बादशाहके लश्करमें भी प्लेगने कहर मचाया था।

४—बनारसीदासजीके नाटक समयसार ग्रंथमें भी प्लेगका उल्लेख मिलता है। उसमें बंधद्वारके कथनमें जगवासी जीवोंके लिए कहा है—

"भरमकी बूझी नाहिं उरझे भरममाहिं,
नाचि नाचि मर जाहिं मरी कैसे चूहे हैं। ४३"

उस समय प्लेगको मरी कहते थे। यद्यपि महामारी (हैजा) को भी मरी कहते हैं, परन्तु चूहोंका मरना यह प्लेगका ही असाधारण लक्षण है, हैजेका नहीं।

९—मृगावती और मधुमालती

जब बनारसीदासजी आगरेमें अपनी सब पूँजी खो चुके थे और बिल्कुल खाली हाथ थे, तब समय काटनेके लिए वे मधुमालती और मृगावती नामक दो

पोथियोंको पढ़ा करते थे और उन्हें सुननेके लिए वहाँ दस बीस आदमी इकट्ठे हो जाते थे। ये दोनों ही प्रेम-काव्य हैं और दोनोंके ही कर्त्ता सूफी हैं।

मृगावती—इसके कर्त्ता कुतबन चिश्ती वंशके शेख बुरहानके शिष्य थे और जौनपुरके बादशाह हुसेन शाह (शेरशाहके पिता) के आश्रित थे। पदमावतके कर्त्ता मलिक मुहम्मद जायसी इनके गुरुभाई थे। मृगावती चौपाई-दोहाबद्ध है और हिजरी सन् ९०९ (वि० स० १५५८) में लिखी गई थी। इसमें चन्द्रनगरके राजा गणपतिदेवके राजकुमार और कंचनपुरके राजा रूपमुरारिकी कन्या मृगावतीकी प्रेम-कथाका वर्णन है। इस कहानीके द्वारा कविने प्रेम-मार्गके त्याग और कष्टका निरूपण करके साधकके भगवत्प्रेमका स्वरूप दिखलाया है। बीच बीचमें सूफियोंकी शैलीपर बड़े सुन्दर रहस्यमय आध्यात्मिक आभास हैं[1]। इसकी एक सम्पूर्ण प्रति अभी हाल ही फतेहपुर जिलेके एकलड़ा गाँवसे डा० रामकुमार वर्माको मिली है।

हाल ही मालूम हुआ है कि काशी नागरीप्रचारिणी सभाके कलाभवनमें मंझनकी मधुमालतीकी दो प्रतियाँ संग्रह की गई हैं जिनमें एक उर्दू लिपिमें है और दूसरी नागरीमें। सभा इसको शीघ्र ही प्रकाशित कर रही है।

मधुमालती—इसके कर्त्ता मंझन नामके कवि हैं, परन्तु उनके सम्बन्धमें अभी तक और कुछ भी मालूम नहीं हुआ। स्व० पं० रामचन्द्र शुक्लने अपने 'हिन्दी साहित्यका इतिहास' में लिखा है कि "मंझनकी रची मधुमालतीकी एक खण्डित प्रति मिलती है जिससे इनकी कोमल कल्पना और स्निग्ध सहृदयताका पता लगता है। मृगावतीके समान मधुमालतीमें भी पाँच चौपाइयों (अर्द्धालियों) के उपरान्त एक दोहेका क्रम रक्खा गया है। पर मृगावतीकी अपेक्षा इसकी कल्पना विशद है और वर्णन भी अधिक विस्तृत तथा हृदयग्राही। आध्यात्मिक प्रेमभावकी व्यंजनाके लिए प्रकृतिके भी अधिक सुन्दर दृश्योंका समावेश मंझनने किया है[2]।" जायसीने अपने पद्मावतमें अपने पूर्ववर्ती चार प्रेमकाव्योंका उल्लेख किया है जिनमें मधुमालती भी है—

१-२—देखो पं० रामचन्द्र शुक्लकृत हि० सा० का इतिहास पृ० १०६-७ (१९९९ का संस्करण)

मुग्धावती, मृगावती, मधुमाल्ती और प्रेमावती । पद्मावतका रचनाकाल वि० सं० १५९५ है। उसमान कविकी चित्रावलीमें भी जो वि० सं० १६७० की रचना है—मधुमाल्तीका उल्लेख है[1]।

चतुर्भुजदास निगमकी बनाई हुई 'मधुमालती' नामकी एक पुस्तक और भी है जिसकी एक अशुद्ध प्रति अभी कुछ समय पहले मुझे बम्बईके अनन्तनाथजीके मन्दिरमें देखनेको मिली[2]। इसकी रचना ७९६ दोहा-चौपाइयोंमें हुई है। यह भी एक प्रेमकथा है परंतु इसमें राजनीतिकी चरचा अधिक है। इसकी प्रशंसामें कविने लिखा है।—

बनसपतीमैं अंब्र फल, रस मैं.....संत।
कथामाहिं मधुमाल्ती, छै रितमाहिं बसंत ॥ ८१ ॥
लतामाहिं पंनग लता,.....घनसार।
कथामाहिं मधुमाल्ती, आभूषणमैं हार ॥ ८२ ॥

निगमकी इस मधुमाल्तीकी प्रतिका लिपिकाल सं० १७९८ है।

१०—छत्तीस पौन और कुरीं

अर्धकथानक (पद्य २९) में जौनपुरमें बसनेवाली जिन ३६ जातियोंके नाम दिये हैं और जिन्हें छत्तीस पउनियाँ कहा है, वे शूद्र गिनी जानेवाली पेशेवर जातियाँ हैं। पदमावतमें जायसीने भी छत्तीस कुरी बतलाई हैं, पर वे केवल शूद्रोंकी ही जातियाँ नहीं हैं, उनमें ब्राह्मण, अग्रवाल, वैस, चंदेले, चौहान आदि ऊँची जातियाँ हैं और कोरी, सुनार, कलवार, कायस्थ, पटुवा, बरई आदि शूद्र जातियाँ भी—

भै भहान पदुमावति चली। छत्तीस कुरी भै गोहने भली ॥ १
भै कोरी संग पहिरि पटोरा। बाँभनि ठाउँ सहस अँग मोरा ॥ २
अगरवारिनि गज गवन करेई। बैसनि पाव हंसगति देई ॥ ३
चंदेलिनि ठवँकन्ह पगु ढारा। चली चौहानी होइ झनकारा ॥ ४

१—डा० वासुदेवशरणने मधुमाल्तीका समय ई० स० १५४५ बतलाया है।
२—इसका समय सोलहवीं सदी है।

चली सोनारि सोहाग सुहाती । औ कलवारि पेम मदमाती ॥ ५
बानिनि भल सेंदुर दै माँगा । कैथिनि चली समाइ न आँगा ॥ ६
पटुइनि पहिरि सुरँग तन चोला । औ बरइनि मुख सुरस तँबोला ॥ ७
चली पवनि सब गोहने, फूल डालि ले हाथ ।
बिस्वनाथकी पूजा. पदुमावतिके साथ ॥ २०।३

पदमावतमें ही छत्तीसों जातियोंके प्रत्येक घरमें पद्मिनी स्त्रियाँ बतलाई हैं--

घर घर पुदुमिनि छतिसौ जातीं ।
सदा बसन्त दिवस औ राती ॥
जेहि जेहि बरन फूल फुलवारी ।
तेहि तेहि बरन सुगंध सो नारी ॥

मध्यकालमें राजपुत्रोंके भी ३६ कुलोंकी संख्या प्रसिद्ध हो गई थी। इसकी सूची ज्योतिरीश्वर ठक्कुरने (१४ वीं शतीका प्रथम भाग) अपने वर्णरत्नाकर पृ० ३१ मे दी है-डोड, पमार, विन्द, छोकोर, छेवार, निकुंभ, राओल चाओट, चांगल, चन्देल, चौहान, चालुकि, रठउल, करचुरि, करम्ब, बुधेल, बीरब्रह्म, वंदाउत, वएस वछोम, वर्धन, गुडिय, गुहिजउत, तुरुकि, सहिआउत; शिषर, सूर खातिमान, सहरओट, भांड, भद्र, भज्जमटि, कूढ, खरसान, क्षत्रीशओ कुली राजपुत्र चलुअह ।

कुरी शब्द कुलका ही वाचक जान पड़ता है, उसमें नीच ऊँचका भेद नहीं है। इसलिए कुरीमें ऊँच नीच दोनों तरहकी जातियाँ गिनाई गई हैं। राजपुत्रों या राजपूतोंके कुल भी एक तरहसे कुरी हैं।

११–जगजीवन और भगवतीदास

इधर भगवतीदास और जगजीवनके सम्बन्धमें कुछ नई बातें मालूम हुई हैं। पं० कस्तूरचन्दजी शास्त्रीने पं० हीरानन्दकृत समवसरणविधानका आद्यन्त अंश लिखकर भेजा है, जिसकी रचना सावन सुदी ७ बुधवार सं० १७०१में हुई थी और जो जयपुरके लूणकरणजी पांड्याके मन्दिरके गुटका नं० १४४ में है। उसके निम्न पद्य उपयोगी हैं —

अब सुनि नगरराज आगरा, सकल सोभ अनुपम सागरा।
साहजहाँ भूपति है जहाँ, राज करै नयमारग तहाँ ॥ ७५ ॥
ताकौ जाफरखां उमराउ, पंचहजारी प्रगट कराउ।
ताकौ अगरवाल दीवान, गरगगोत सब बिधि परधान ॥ ७९ ॥
संघही अभैराज जानिए, सुखी अधिक सब करि मानिए।
बनितागण नाना परकार, तिनमैं लघु मोहनदे सार ॥ ८० ॥
ताकौ पूत पूत-सिरमौर, **जगजीवन** जीवनकी ठौर।
सुंदर सुभगरूप अभिराम, परम पुनीत धरम-धन-धाम ॥ ८१ ॥
काल-लबधि कारन रस पाइ, जग्यौ जथारथ अनुभौ आइ।
अहनिसि ग्यानमंडली चैन, परत, और सब दीसै फैन ॥ ८२ ॥
ग्यानमंडली कहिए कौन, जामैं ग्यानी जन परनौंन।
हेमराज पंडित परबीन, **रामचंद** ग्यायक गुनलीन ॥ ८३ ॥
संगही **मथुरादास** सुजान, प्रगट **भवालदास** सुजवान (?)।
स्वपरप्रकास **भगौतीदास**, इत्यादिक मिलि करैं बिलास ॥ ८४ ॥
स्यादवाद जिन आगम सुनै, परम पंचपद अहनिसि धुनै।
भेदग्यान बरनत इक रोज, उपज्यौ जिनमहिमारस चोज ॥ ८५ ॥
तब ही पंडित **हीरानंद**, विकट मोहरस-मगन सुछंद।
देखि कह्यौ अपनों ऊमहौं, क्या है जिन विभूति जो कहौं ॥ ८६ ॥
तिनसौं कही साधु जे साधु, चहिए इहू भव्य आराधु।
अरु जे निकट भव्य आतमा, ते साधत नित परमातमा ॥ ८७ ॥
जिनविभूतिका जो अनुभौन, करैं मुख्य जद्यपि है गौन।
निहचै मारगकी इह गैल, मन निरमल ह्वै साधै सैल ॥ ८८ ॥
पर इतनी मति हममैं कहां, बिधि बरनवै जहांकी तहां।
अरु जो तुम सहायसौं कहै, तो अचरज कोऊ नहिं लहै ॥ ८९ ॥
इतनी सुनि जगजीवन जबै, आदिपुरान मंगाया तबै।
इसै देखि तुम कहौ निसंक, हम जानैं है है निकलंक ॥ ९०
इतना कारन लहि करि **हीर**, मनमैं उद्दिम धरै गहीर।
समोसरन कृत रचनाभेद, जथापुरान समस्त निवेद ॥ ९१
एक अधिक सत्रहसौ समै, सावन सुदि सातमि बुध रमै।
ता दिन सब संपूरन भया, समवसरन कहवत परिनया ॥ ९२

इससे दो बातोंपर प्रकाश पड़ता है—एक तो यह कि संवत् १७०१ में आगरेमें ज्ञाताओंकी एक मंडली या अध्यात्मियोंकी सैली थी, जिसमें संघवी जगजीवन, पं० हेमराज, रामचन्द, संघी मथुरादास, मवालदास, और भगवतीदास थे। भगवतीदासको 'स्वपरप्रकाश' विशेषण दिया है। ये भगवतीदास वही जान पड़ते हैं जिनका उल्लेख बनारसीदासजीने नाटक समयसारमें निरन्तर परमार्थ चर्चा करनेवाले पंचपुरुषोंमें किया है। हीरानन्दजीने अपने दूसरे छन्दोबद्ध ग्रन्थ पंचास्तिकाय (१७११) में भी घनमल और मुरारिके साथ इन्हींका ग्यातारूपसे उल्लेख किया है।

सं० १६५५ के फतेहपुरनिवासी बासूसाहुके पुत्र भगवतीदास दूसरे ही हैं और इनसे पहलेके हैं।

दूसरी बात यह कि जाफर खाँ बादशाह शाहजहाँका पाँच हजारी उमराव था जिसके कि जगजीवन दीवान थे और जगजीवनके पिता अभयराज सर्वाधिक सुखी सम्पन्न थे। उनके अनेक पत्नियाँ थीं जिनमेंसे सबसे छोटी मोहनदेसे जगजीवनका जन्म हुआ था।

पूर्वोक्त गुटके (नं० १४४) में ही भगवतीदासके दो पद मिले हैं—

सोइ गंवाई रातड़ी, दिन लालच खोया।
क्या ले आया ले चल्या, क्या घरमंहि तेरा ॥
परधन पंछी ज्यौं मिल्या, निसि बिरछ बसेरा।
सरवर तजि हंसा चल्या, फिरि कियउ न फेरा ॥ १
कनक कामिनील्यौं रच्या, सोइ जनमु गंवाया।
पिया सुखरसि बसि परउ, ...आपण डहकाया ॥
बालू पेरत रैन गई, फिरि तेलु न पाया ॥ २
माया संगमु दुख सहै, फिरि गहत न लाजै।
ज्यौं सुवटा नलिनी फंधइ, तिस छांड़ि न भाजै ॥
पर नारी चोरी बुरी, अपजस जगि बाजै ॥ ३
जीवदया भ्रम पालिए, मुख झूठ न कहिए।
कीड़ी कुंजर सम गिनौ, ज्यौं सिवपुर जहिए ॥
दास भगोती यौं कहै, व्रत संजमु गहिए ॥ ४

दूसरा पद 'राजुल बीनती' है जिसके अन्तमें कहा है—

राजमती सुरपुर गई प्रभु, नेमि कियौ सिवबास।
मोतीहट जोगिनपुरै प्रभु, भणत भगौतीदास ॥ ७

इससे मालूम होता है कि यह योगिनीपुर या दिल्लीकी मोतीहाटमें रहते थे और कोई तीसरे ही भगवतीदास थे, अध्यातमी नहीं।

१२--रूपचन्दकृत पदसंग्रहमें आनन्दघन

अभी अभी मुझे अपने संग्रहमें स्व० गुरुजी (पन्नालालजी वाकलीवाल) के हाथका लिखा हुआ 'रूपचन्दकृत पदसंग्रह' मिला, जो उन्होंने जयपुरसे (सन् १९१०) भेजा था। इसमें राग आसावरी, वसन्त, टोड़ी, विभास, विलावल, विहागड़ो गूजरी, केदारो, कल्यान, सारंग, नट, टोड़ी जौनपुरी, श्रीराग, कानरौ, आसा और सारंग, इन रागोंके २२ गीत हैं और इनके बाद जकड़ीसंग्रह है। यह जकड़ीसंग्रह उसी समय 'परमार्थ-जकड़ीसंग्रह' नामसे छपा दिया गया था।

इनमेंके १७ गीतोंके अन्तिम चरणोंमें रूपचन्दका नाम है, पर शेष पाँचमें काजी महम्मद, रामानन्द, राज, पंदमकीरति, और आनन्दघनके नाम दिये हैं। इससे मालूम होता है कि ये पाँचों कवि उनके पूर्ववर्ती या समकालीन हैं और सभी अध्यातमी हैं। उनका संग्रह स्वयं रूपचन्दजीने अपने पदोंके साथ कर लिया है।

इनमेंसे राज या राजसमुद्र और आनन्दघनके पद नाहटाजीके भेजे हुए गुटकोंमें भी रूपचन्दजीके पदोंके साथ लिखे हुए मिले हैं। रामानन्द वैष्णव सन्त मालूम होते हैं। पदमकीर्ति कोई भट्टारक और काजी मुहम्मद कोई सूफी हैं।

आनन्दघनका पद यह है—

रे घरियारी बाउरे, मत घरी बजावै।
नर सिर बांधै पाघरी, तू क्या घरी बजावै॥ रे घ०
केवल काल-कला कलै, पै अकल न पावै।
अकल कला घटमैं घरी, मोहि सो घरी भावै॥ रे घ०

आतम अनुभव रसभरी, तामैं और न भावै ।
आनंदघन सो जानिए, परमानंद गावै ॥ रे घ०

सं० १६९३ में बनारसीदासने नाटक समयसारमें अपने पाँच साथियोंमेंसे रूपचन्दजीको एक बतलाया है, अर्थात् उस समय वे जीवित थे, परन्तु पं० हीरानन्दने अपने समवसरणविधानमें आगरेके ज्ञाताओंके जो नाम दिये हैं उनमें भगवतीदास, हेमराज, जगजीवनके नाम तो हैं, परन्तु रूपचन्दका नाम नहीं है और यह विधान संवत् १७०१ में रचा गया है। इससे संभव है कि रूपचन्दजी उस समय नहीं रहे हों।

रूपचन्दजीने आनन्दघनका एक पद संग्रह किया है, इससे अनुमान किया जा सकता है कि वे उनके पूर्ववर्ती हैं और कँवरपाल अपने पहले गुटकेमें सं० १६८४ के लगभग आनन्दघनके ६५ पदोंका संग्रह कर सकते हैं।

यशोविजयजी और आनन्दघनका साक्षात्कार होनेकी बात इससे भी सन्देहास्पद हो जाती है।

राज या राजसमुद्र भी रूपचन्द्रके पूर्ववर्ती हैं। इनकी उपदेशबत्तीसी दूसरे गुटकेमें संग्रहीत है।

१३—भ० नरेन्द्रकीर्तिका समय

भूमिकाके पृष्ठ ४९–५३ में आमेरके भट्टारक नरेन्द्रकीर्तिका जिक्र है जिनके समयमें तेरापंथकी उत्पत्ति हुई। बखतरामजीने संवत् १७७३ और चन्द्रकविने संवत् १६७५ उत्पत्तिकाल बतलाया है। पर दोनोंने ही अमरा भौंसाके पुत्र जोधराज गोदीकाको सभासे निकाल देनेकी बात लिखी है और जोधराज गोदीकाने अपने दो ग्रन्थ—सम्यक्त्वकौमुदी और प्रवचनसार—सं० १७२४ और १७२६ में लिखे हैं, साथ ही तेरापन्थका भी उल्लेख किया है, इसलिए भट्टारक नरेन्द्रकीर्तिका समय भी लगभग यही होना चाहिए।

अभी वीरवाणी वर्ष ७ अंक १४–१५ में प्रकाशित हुए श्री अनूपचन्दजी न्यायतीर्थके लेख (जयपुरके जैनमन्दिरोंके मूर्ति एवं यन्त्रलेख) पर मेरी दृष्टि पड़ी और उससे भ० नरेन्द्रकीर्तिका समय निश्चित हो गया।

नं० ९ के सम्यक्चारित्र यंत्रपर लिखा है — " संवत् १७०९ फागुन वदी ७ मूल० भट्टारक नरेन्द्रकीर्तिस्तदा अग्रवालगोयलगोत्रे सं० तेजसाउदयकरणाभ्यां गिरिनारे प्रतिष्ठापितं । "

नं० १२ के ह्रींकार यंत्रपर लिखा है —

" संवत् १७१६ वर्षे चैत्रवदी ४ सोमे श्री मूलसंघे नन्द्याम्नाये बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक १०८ श्रीनरेन्द्रकीर्तिस्तदाम्नाये अग्रवालान्वये गर्गगोत्रे नन्दरामपुत्रसंघाधिपतिजगसिंहेन अम्बावत्यां...

इनके अनुसार सं० १७०९ और १ १६ में नरेन्द्रकीर्ति भट्टारकका अस्तित्व स्पष्ट होता है और ' अम्बावत्यां ' से यह भी कि वे आमेरकी गद्दीके भट्टारक थे। आमेरका ही नाम अम्बावती है ।

महाराजा जयसिंहके मुख्य मन्त्री मोहनदास भौंसाने जयपुरको पुरानी राजधानी अम्बावती या आमेरमें संवत् १७१४ में एक विशाल जैनमन्दिर निर्माण कराया था और १७१६ में उसपर सुवर्णकलश चढ़वाया था। इसके दो शिलालेख मिले हैं, उनमें उन्हें नरेन्द्रकीर्ति भट्टारककी आम्नायका लिखा है और यह भी कि ' भट्टारकश्रीनरेन्द्रकीर्युपदेशात् ' बनवाया ।

पं० बखतरामजीने लिखा है कि अमरा भौंसाको राजाका एक मन्त्री मिल गया, उसने एक नया मन्दिर भी बनवा दिया, और तेरापन्थको बढ़ाया, सो शायद यही मन्त्री मोहनदास भौंसा होंगे ।

---

१ — ये शिलालेख अब जयपुर-म्यूजियममें हैं और मन्दिर आमेरमें टूटी-फूटी हालतमें पड़ा है। शिलालेख पं० भँवरलालजी न्यायतीर्थने वीरवाणी, वर्ष १ अंक ३ में प्रकाशित कर दिये हैं ।

१४—विज्ञप्तिपत्रमें आगरेके श्रावक

कार्तिक सुदी २ सोमवार सं० १६६७ को तपागच्छके आचार्य विजयसेनको आगराके श्वेताम्बर जैन संघकी ओरसे एक विज्ञप्तिपत्र भेजा गया थाै, उसमें वहाँके ८८ श्रावकों और संघपतियोंके नाम दिये हुए हैं, जिनमेंसे कुछ नाम अर्द्धकथानकमें आये हैं—

१-**वर्द्धमानकुंअरजी**—अ० क० के ५७९ वें पद्यमें लिखा है, "वरधमान-कुंअरजी दलाल, चल्यौ संघ इक तिन्हके नाल।" विज्ञप्तिपत्र (पंक्ति ३०) में इनका नाम है और इन्हें संघपति बतलाया है। सं० १६७५ में बनारसी-दासजीने इन्हीके संघके साथ अहिछत्ता और हथनापुरकी यात्रा की थी।

२-**बंदीदास**—इनके पिताका नाम दूलह साह और बड़े भाईका नाम उत्तमचन्द जौहरी था। ये बनारसीदासके बहनोई थे और मोतीकटलेमें रहते थे। अ० क० ३११ में सं० १६६७ के लगभग इनकी चर्चा की गई है। विज्ञप्ति पत्र (पं० ३०) में 'साह बंदीदास' नाम दिया है।

३ **ताराचन्द साहू**—परबत तांबीके दो पुत्र थे, ताराचन्द और कल्याण मल्ल। कल्याणमल्लकी लड़की बनारसीदासको ब्याही थी। उसे लिवानेके लिए ताराचन्द आये थे और सं० १६६८ में इन्होंने बनारसीदासको अपने घर लाकर रक्खा था। अ० क० १०९, ३४४, ३४६, ३४९, ३५१ में इनका जि॰ है। वि० प० की पं० ३२ में इन्हें साह ताराचन्द लिखा है।

४ **सबलसिंघ** मोठिया—ये आगरेके वैभवशाली धनी थे। अ० क० ४७४–७५, ५६७, ५७७ में इनका, १६७२–७३ के लगभग जिक्र आया है। विज्ञप्तिपत्र (पं० ३५) में संघपति सबलका नाम है।

~~~~~~

१—'एन्स्येंट विज्ञप्तिपत्राज' में डा० हीरानन्द शास्त्रीने इसे बडोदा-राज्यकी ओरसे प्रकाशित किया है।
~~~~~~

१५—युक्तिप्रबोधके उद्धरण

टीका—...श्रीशान्तिसूरिवादिदेवसूरिप्रभृतयस्तद्वितर्कविघटनकरणानि...भूरिप्रकरणानि विदधिरे इति न तत्र पुनः प्रयासः साधीयान्, तथाप्यधुना द्वेधापि उग्रसेनपुरे वाणारसीदासश्राद्धमतानुसारेण प्रवर्तमानैराध्यात्मिका वयमिति वदद्भिर्वाणारसीयापरनामभिर्मतान्तरीयैर्विकल्पकल्पनाजालेन विधीयमानं कतिपयभव्यजनमोहनं वीक्ष्य तथा भविष्यत्श्रमणसंघसन्तानिनां एतेऽपि पुरातना जिनागमानुगता एव, सम्यक् चैषां मतं, न चेत्कथं 'छव्वाससएहिं नवोत्तरेहिं सिद्धिं गयस्स वीरस्स। तो वोडियाण दिट्ठी रहवीरपुरे समुप्पण्णा।' इत्युत्तराध्ययननिर्युक्तौ श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ च इत्यादिवत् कुत्रापि श्रीश्रमणसंघधुरीणैरेतन्मतोत्पत्तिक्षेत्रकालप्ररूपणाभेदादि च नाभिहितम् इत्येवं लक्षणां भ्रान्तिं समुद्भाविनीं विज्ञाय तन्निरासार्थमेतन्मतोत्पत्त्याद्यभिधेयमेव, न च दिगम्बरमतानुसारित्वादस्य तन्मताक्षेपसमाधानाभ्यामस्याप्याक्षेपसमाधाने इति किमेतदुत्पत्त्याद्यभिधानेनेति वाच्यं, कथंचिदभेदेऽपि उत्पत्तिकालप्ररूपणादिकृतभेदात्, ततश्चैतन्मतोत्पत्त्याद्यभिधित्सुर्ग्रन्थकर्ता...गाथामाह—

पणमिय वीरजिणिंदं दुम्मयमयमयविमद्दणमयंदं।
वुच्छं सुयणहियत्थं वाणारसियस्स मयभेयं॥ १॥

टीका—.. ततश्च एतेषां वाणारसीयानां तु श्वेताम्बरमतापेक्षया सर्वसिद्धान्तप्रतिपादितस्त्रीमोक्षकेवलिकवलाहारादिकमश्रद्दधतां दिगम्बरनयापेक्षयाऽपि पुराणाद्युक्तपिच्छिकाकमण्डलुप्रमुखाणामनङ्गीकरणेन कथं सम्यक्त्वं श्रद्धेयं? यज्ञब्रह्मचारिपिच्छिकाकमण्डलुप्रभृतिपरिभाषकत्वेन आर्षवाक्यं विना पौरुषेयवाक्यस्यैव केवलं प्रमाणकारकत्वेन सर्वविसंवादिनिह्नवरूपत्वेन च दिगम्बरनयस्यापि अस्मत्प्राचीनाचार्यैः प्रथमगुणस्थानित्वं निरणायि, तर्हि तदनुगतश्रद्धावतां वाणारसीयानां तत्त्वे किं वक्तव्यमिति।

* * *

सिरि आगराइनयरे सड्ढो खरयरगणस्स संजाओ।
सिरिमालकुले वणिओ वाणारसिदासणामेणं॥ २॥

सो पुव्वं धम्मरुई कुणइ य पोसहतवोवहाणाई।
आवस्सयाइपढणं जाणइ मुणिसावयायारं॥ ३॥

दंसणमोहस्सुदया कालपहावेण साइयारत्तं।
मुणिसद्धवए मुणिउं जाओ सो संकिओ तम्मि ॥ ४ ॥

जाया वयट्ठियस्सवि कयापि तस्सन्नपाणपरिभोगे।
छुहतिण्हाइसपणं मणसंकप्पाओ वितिगिच्छा ॥ ५ ॥

पुट्ठं तेण गुरूणं भयवं जंपेह दुव्विकप्पस्स।
णिच्छयओ किमवि फलं केवलकिरिआइ अत्थि ण वा ॥ ६ ॥

अह तेहिं भणियमेयं णत्थि फलं भद्द किमवि विमणस्स।
तेणावधारियं तो किं ववहारेण विफलेण ॥ ७ ॥

इत्थंतरे य पुरिसा अवरे वि य पंच तस्स संमिलिया।
तेसिं संसग्गेणं जाया कंखावि णियधम्मे ॥ ८ ॥

टीका—प्रागुक्तयुक्त्या व्यवहारवैफल्यं श्रद्दधानस्य तस्य कदाचित् कालान्तरे अपरेऽपि पंचपुरुषा रूपचन्द्रपण्डितः १, चतुर्भुजः २, भगवतीदासः ३, कुमारपालः ४, धर्मदासश्चेति ५, नामानो मिलिताः। ......स वाणारसीदासः पूर्वं प्रोषध-सामायिकप्रतिक्रमणादिश्रद्धक्रियासु तथा जिनपूजनप्रभावनासाधर्मिकवात्सल्य-साधुजनवन्दनमाननअशनादिदानप्रभृतिश्राद्धव्यवहारेषु सादरोऽभूत्, पश्चाच्छंकया विचिकित्सया च कलुषितात्मा सन् दैवात्पंचानां पूर्वोक्तानां संसर्गवशात् सर्वं व्यवहारं तत्याज। ..वाणारसीदासोऽपि नानाशास्त्राणि वाचयन् प्रमाणनयनिक्षेपाधिगममार्गाप्राप्त्या अनेकनयसन्दर्भान्निरीक्ष्य रूपचन्द्रादिदिगम्बरमतीयवासनया श्वेताम्बरमतं परस्परविरुद्धत्वान्न सम्यक् विचारसहं, दिगम्बरमतमेव सम्यक्, इत्यादिकाक्षां प्राप्तवान्, ...

तदेवं दृष्टिभिरनेकागमयुक्त्या प्रबोध्यमानोऽपि न स्थिरीभूतो वाणारसीदासः प्रत्युत दशाश्चर्यादिश्वेताम्बरागमोक्तं स्वमनीषया दूषयन् अनेकजनान् व्युद्ग्राह्य स्वमतमेव पुपोष।...

अज्झत्थसत्थसवणा तस्सासंवरणएवि पडिवत्ती।
पिच्छियकमंडलुजुए गुरूण तत्थावि से संका ॥ ९ ॥

टीका—प्रायशोऽध्यात्मशास्त्रे ज्ञानस्यैव प्राधान्याद्दानशीलादितपःक्रियानां गौणत्वेन प्रतिपादनादध्यात्मशास्त्राणामेव श्रवणं प्रत्यहं, तस्मात् तस्य वाणारसी-

दासस्य आशाम्बरा दिगम्बरास्तेषां नये शास्त्रे प्रतिपत्तिः निश्चयोऽभूत्, तदेव प्रमाणमिति स्वीचकार। अपि शब्दादध्यात्मशास्त्रादिदिगम्बरतन्त्रेऽपि व्रत-समित्यादिप्रतिपादकग्रन्थे न प्रामाण्यमिति तन्मते निश्चय इत्यर्थः। यद्वा अध्यात्मशास्त्रश्रवणादाशाम्बरनये विप्रतिपत्तिः अनिश्चयो, व्यवहारविरोधाद्, दिगम्बरा हि प्राचीनाः स्वगुरून् मुनीन् श्रद्दधते, अस्य तु तदश्रद्धानात्, एवमन्योऽपि तन्मते विशेषः, तमेवाह—गुरूणां पिच्छिका कमण्डलु चैतद्द्वयं परिग्रहत्वान्नोचितं, दिगम्बराणां बहुषु ग्रन्थेषूक्तमपि न प्रमाणमिति तस्य बाणा-रसीदासस्य शंकाऽभवत्, तेन श्वेताशाम्बरनयद्वयापेक्षयाऽपि बाणारसीयमते न सम्यक्त्वमिति सिद्धं।...

वयसमिइबंभचेरप्पमुहं ववहारमेव ठावेइ।
तेण पुराणं किंचिवि पमाणमप्पमाणमवि तस्स॥ १०॥

टीका—सर्वेषां शास्त्राणां निश्चयनयोन्मुखत्वेऽपि निश्चयसाधनाय व्यवहार एव प्रागुक्तयुक्त्या समर्थः, ततस्तमेव मुख्यवृत्त्या व्यवस्थापयति। तेन हेतुना पुराण-शास्त्रं किंचिदेव प्रमाणं आदिपुराणादिकं, न सर्वं पुराणमात्रं, किन्तु अप्रमाणमेव, किंचित्प्रमाणोक्तेरेवाप्रामाण्यं शेषस्यागतं चेत् किं पुनरुक्तेनेति न धार्यं, आदि-पुराणादिके प्रमाणेऽपि यत्स्वमतव्याघातकं तदप्रमाणमिति यथाच्छन्दत्वज्ञापनात्। यद्वा पुराणं प्राचीनं दिगम्बराचरणं प्रमाणमप्रमाणमिति व्याख्येयम्, उभयवचनात्, न मम दिक्पटमतेन कार्यं, किन्तु अहं तत्वार्थी, तथा च यज्जिनवचनानुसारि तदेव प्रमाणं नान्यदिति ख्यापितं। यद्वा पुराणं जीर्णं तत्त्वार्थादिसूत्रमित्यपि ज्ञेयं, अत्र यद्यपि पुराणादि दिगम्बरमतोत्थापने त एव प्रतिविधातारस्तथापि कवलाहा-रादिव्यवस्थापने साक्षिकस्थानीयत्वात्पुराणप्रामाण्यं साध्यते।...

अह नियमयबुद्धिकए पयासियं तेण समयसारस्स।
चित्तकवित्तणिवेसं नाडयरूवं मइविसेसा॥ ११॥
बाणारसीविलासं तओ परं विविहगाहदोहाइ।
अबुहाण बोहणत्थं करेइ संथवणभासं च॥ १२॥
सम्मत्तम्मि हु लद्धे बंधो णत्थित्ति अविरओ भुज्जा।
वयमग्गस्स अफासी न कुणइ दाणं तवं बंभं॥ १३॥

णाणी सया विमुत्तो अज्झप्परयस्स निज्जरा विउला।
कूंवरपालप्पमुहा इय मुणिउं तम्मए लग्गा॥ १४॥
वणवासिणो य णग्गा अट्ठावीसइगुणेहिं संविग्गा।
मुणिणो सुद्धा गुरुणो संपइ तेसिं न संजोगो॥ १५॥
तम्हा दिगंबराणं एए भट्टारगावि णो पुज्जा।
तिलतुसमेत्तो जेसिं परिग्गहो णेव ते गुरुणो॥ १६॥
एवं कत्थवि हीणं कत्थवि अहियं मयाणुराएणं।
सोऽभिनिवेसा ठावइ भेयं च दिगंबरेहिंतो॥ १७॥

टीका –सम्प्रति दृश्यमहीमण्डले मुनयो न सन्ति, मुनित्वेन व्यपदिश्यमाना भट्टारकादयो न गुरवः, पिच्छिकादिरुपधिर्न रक्षणीयः, पुराणादिकं न प्रमाणं, इत्यादिकं प्राक्तनदिगम्बरनयात् न्यूनं, अध्यात्मनयस्यैवानुसरणं, नागमिकः-पन्था प्रमाणयितव्यः, साधूनां वनवास एव इत्याद्यधिकं स्वमतस्य अभिप्राय-स्यानुरागो-दृढीकरणरुचिस्तेन अभिनिवेशात् हठात् व्यवस्थापयति, न वयं दिगम्बरा नापि श्वेताम्बराः किन्तु तत्त्वार्थिन इति धिया दिगम्बरेभ्योऽपि भेदं व्यवस्थापयति, तत्कालापेक्षया वर्तमाना, चकारात् सिताम्बरेभ्यस्तु महानेवास्य मतस्य भेद इति गाथार्थः।

सिरिविक्कमनरनाहा गएहिं सोलससएहिं वासेहिं।
असि उत्तरेहिं जायं बाणारसियस्स मयमेयं॥ १८॥
अह तम्मि हु कालगए कूंवरपालेण तम्मयं धरियं।
जाओ तो बहुमण्णो गुरुव्व तेसिं स सव्वेसिं॥ १९॥

टीका –...तस्मिन वाणारसीदासे परलोकं गते निरपत्यत्वात्तस्य मतं कुंअर-पालनाम्ना वणिजा धृतं, प्रागेव तन्मताश्रितानां स्थिरीकरणेन नवीनानां तथाश्रद्धानोत्पादनेन समाहितं, तन्मतं निष्ठास्थानमभवदित्यर्थः। ततस्तेषां वाणारसीयानां सर्वेषां गुरुरिव बहुमान्यः, परस्परचर्चायां यत्तेनोक्तं तत्प्रमाणीबभूव, गुरुरितिकथनान्नान्यः सितपटो दिक्पटो वा तद्गुरुर्बभूविवान्, उपकरणधारित्वात्तयो-रिति भावः...।

जिणपडिमाणं भूसणमालारुहणाइ अंगपरियरणं।
बाणारसिओ वारइ दिगंबरस्सागमाणाए॥ २०॥

महिलाण मुत्तिगमणं कवलाहारो य केवलधरस्स ।
गिहिअन्नलिंगिणो वि हु सिद्धी णत्थि त्ति सद्दहइ ॥ २१ ॥
आयारंगपमुहं सुयणाणं किमवि णो पमाणेइ ।
सेयंबराण सासणसद्धाइ तयंतरं बहुलं ॥ २२ ॥

टीका — नव्याशाम्बरा बाणारसीयाः श्वेताम्बरगीतार्थेभ्यो व्याख्यानं शृण्वन्तोऽन्यजनस्य तच्छासनश्रद्धाविभंगाय चतुरशीति जल्पान् (चौरासी बोल) चर्याशयविषयीचक्रुः, तन्निबन्धोऽपि कवित्वरीत्या हेमराजपण्डितेन निबद्धः, ।...

अह गीयत्थजणेहिं आगमजुत्तीहिं बोहिओ अहिय ।
तह वि तहेव य रुच्चइ बाणारसियो मए तिसिओ ॥ २३ ॥
पाएण कालदोसा भवंति दाणा परम्मुहा मणुआ ।
देवगुरूणमभत्ता पमादिणो तेसिमित्थ रुई ॥ २४ ॥

टीका—अवसर्पिणीकालानुभावात् धनस्य न महती उत्पत्तिः, तदभावात् केचिद्धनोपार्जनेऽपि मतिवैक्लव्यात कार्पण्यपरवशा दानात् स्वत एव निवर्तन्ते देवेषु गुरुषु चैत्यपूजाहारादानादिना व्ययभयात्, अभक्ता न मनागपि रागभाजः अतएव प्रमादिनो यथेच्छाहारविहारादिपराः तेषामत्र मते रुचिः श्रद्धा स्यात्, कारणं तु प्रागुक्तमिति गाथार्थः ।

इय जाणिऊण सुअणा वाणारसियस्स मयवियप्पमिणं ।
जिणवरआणारसिआ हवंतु सुहसिद्धिसंवसिआ ॥ २५ ॥

१६—शब्द-कोश

अ आ

अंगयौ = आंगपर लिया, ग्रहण किया, लिया। ६२

अंतरधन = छुपाया हुआ भीतरका धन। ६५

अऊत = निपूती, निस्सन्तान, एक सतीका नाम। सं०, अपुत्रा। ७९, १३६, १३७

अकह = अकथ्य, न कहने योग्य। ४६०

अठताल = अड़तालीस। ९४

अत्तो = इतना, संस्कृत इयतसे बना। ४७

अदेख = बिना देखा। ६५

अनेकारथ = धनंजय नाममालाका अन्तिम अंश, अनेकार्थनिघण्टु। १६९

अपनपौ = आत्मपना, अपनापा। १

अबेब, अभेव = अभेद, एक जैसे। २३७

अमल = नशा, अफीम। ३५३

अरदास = अर्ज़दाश्त (फारसी), प्रार्थना, विनय। १५९

अलंगनी = अर्गनी, कपड़े टाँगनेकी रस्सी। ३२१

अवद्य = अनुचित, न कहने योग्य, झूठ। ६८४

अवस्था = हालत, दशा। ४२

असराल = असरार, लगातार, बहुत। २०

अस्तोन = स्तवन, स्तोत्र। १०६

अहीरीधाम, अहीरीगेह = अहीरीके घर, ग्वालिनके घर। ५०३, ५०५

आयु = उम्र। ६१९, ६२१

आउषा = आयुष्य, आयु। ६२०

आन = सं० आज्ञा, प्रा० आण, आज्ञा, हुकुम। ३४

आसिखी = आशिकी, प्रेम, इस्कबाज़ी। १७८, १८०

इ ई

इजार = (फारसी) इज़ार, पायजामा। ३१९

ईति = दैवकृत उपद्रव (अतिवृष्टि-रनावृष्टिः मूषका शलभा शुकाः) ५७२

उ ऊ

उचाट = विरक्ति, उदासी, चित्त न लगना। ८१

उचापति = उधार माल देनेका काम (यह शब्द इसी अर्थमें सागर जिलेमें अब भी प्रचलित है।) १५

उजारि = उजाड़, उजड़ा, शून्य स्थान। २९०

उदंगल = दंगल, उपद्रव, ऊधम। २१२, ४६७

उन्नईस, उनीस=उन्नीस । ५३१, ५३२

उवझाइ = उपाध्याय, अध्ययन कराने-वाला जैन साधु । १७३

उवरे = बचे । २३९

उरे परे=इधर उधर, आगे पीछे। २३८

ऊचलाचाल = भूचाल, उथल पुथल । १५४, ४३१,

ऊवट पंथ = अटपटा, ऊँचा-नीचा, ऊबड़-खाबड़ रास्ता । ६४

ओ

ओखद-पुरी = औषधकी पुड़िया । १८९

क

कंदोई = हलवाई (सं० कान्दविक) २९

कच्छा = कच्छ, धोतीकी काँछ, अंटी । २८८

कजी = कमी, टेढ़ापन, नुक्स । (मेरठके आस-पास बोला जाता है ।) २६३

कबीसुरी = कवीश्वरी, कविता । ६३६

करोरी = करोड़ी, रोकड़िया, करसंग्राहक । ३२२

कल्लासाहु = कल्याणमलका पुकारनेका नाम । ३७१

कलाल = (सं० कल्यपाल) कलवार, शराब बनाने-बेचनेवाला । २९

कलावत = कलावन्त, गायक । ५५८

कसिवार = काशीदेश, कसिवार परगना जिसका आजकल कसबा राजा है । २

कहान = कथन, कथानक । ४६०

कहार = पनिहारा (सं०उदकहार) २९

कागदी = कागजी, कागज़ बनाने-बेचनेवाला । २९

काछी = तरकारी भाजी बोने-बेचने-वाला । (नदी किनारेके जल-प्राय देशको कच्छ कहते हैं । ऐसे स्थानोंमें शाक सब्जी पैदा करनेवाला ।) २९

कान धरि = कान लगाकर ७

कारकुन = (फारसी) कारिन्दा, क्लार्क । ५६

कीन्हौ काल = काल किया, मर गए । २०

कुंदीगर = कुन्दी करनेवाला । धुले या रंगे कपड़ोंकी तह करके उनकी सिकुड़न और रुखाई दूर करनेके लिए लकड़ीकी मोंगरीसे पीटनेकी क्रिया, कुंदीं । २९

कुतबा = खुतबा पढ़ना, सर्वसाधारणको सूचना देनेके लिए सिंहासनासीन होनेकी घोषणा करना । २७

कुरीज = क्रौंच, सारस, कुररी (कुररीव दीना) १९४

कुलाल = कुम्हार, मिट्टीके बर्तन बनाने वाल । २९

कूप = कुप्पा, घी-तेल रखनेका चमड़ेका बना बर्तन । २८४

केवली = केवलज्ञानी, सर्वज्ञ । ४९२

कोठीवाल = देन-लेन करनेवाला महाजन ४६८

कोररे = कोरड़े, कोड़े, चाबुक। ११३

कोररे = कोरे, खालिस । ३२५

कौल, कोल = अलीगढ़का पुराना नाम। तहसीलका नाम अब भी कोल है। ३९६

कौल = कसम, सौगंद । ५०१

ख

खतिआइ = खतौनी करना, खातेवार लिखना। ३५६

खालसै = खाल्सा (अरबी)। किसी जमीन या घरपर राजाके द्वारा अधिकार किया जाना। २२

खेस = ओढ़नेका मोटा कपड़ा । २५४

खोसरामती = दुष्टबुद्धिवाला । (फारसीमें 'खुदसरा' शब्द है जिसका अर्थ है स्वतंत्र, मनमाना करनेवाला, स्वेच्छाचारी।) ६०८

ग

गर्भित बात = गर्भमें रखी हुई, भरी हुई, छुपी हुई। ७

गवन = गमन, जाना । ६६

गस्त = गश्त (फारसी), भ्रमण, चक्कर, घूमना । ३५५

गाँठिका रोग = प्लेग, ताऊन, मरी । ५७२

गांड़ि = देहाती मुहाविरा है कि 'पूँजी गाँड़में घुस गई ।' ३६५

गिरौं = गिरवी, रेहन, मार्गेज । ३१७

गुनह = गुनाह, अपराध । १६५

गैरसाल = गैर टकसालका, बनावटी या जाली रुपया । ५०६, ५१०

गोपुर = नगरद्वार या फाटक । २९६

गोल = ग़ोल (फारसी) झुण्ड, मंडली । ५०१

गोवै = गोमती नदी, गोवई, गोवै नदी । २५

गृह-भेस = गृही या गृहस्थका भेष, अदीक्षित शिष्य । १७४

घ

घड़नाई = बाँसके ढाँचेमें घड़े बाँधकर बनाई हुई नाव । ४७१

घनदल = बादलोंका समूह । १९

घमंडि = घुमड़कर । २८९

घोंघी = एक शंखजातीय कीड़ा, शंबूक। ३६५

च

चंग = सुन्दर, शोभायुक्त । हिन्दी चंगा, मराठी चाँगला। ३०

चक्क = चक्र, देश, भूमंडल। ६१६

चाल = आचार, चरित्र । ५८६

चटसाल = चट्टशाला, छात्रशाला, पाठशाला । ४६

चिंतौन = चिन्तवन, विचार। ६६१
चितेरा = चित्रकार। २९
चिनालिया – श्रीमाल जातिका एक गोत। ३९
चिरी = चिड़िया, चिरैया। १९४
चूनी = चुन्नी, एक तरहका रत्न। १७२, ३५५
चौविहार = खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय, इन चार तरहके आहारोंका त्याग। ६०

छ

छप्परबंध = मकानोंके छप्पर छाने-सुधारनेवाला। २९
छरछोबी = पाखाना, बुन्देलखंडमें छाबछोरी कहते हैं। २११
छरे = छड़े, एकाकी, अकेले, खाली। ३०९

ज

जच्छ= यक्ष। प्रत्येक तीर्थंकरके सेवक कुछ यक्ष होते हैं, उनमेंसे पार्श्वनाथका यक्ष। एक जातिका व्यन्तर देव। ९०
जड़िया=नग जड़नेका काम करनेवाला। ४६८
जलाल=तेज, प्रकाश, प्रभाव। अकबरका विशेषण, जलाल-उद्-दीन, धर्मका प्रकाश। २५७
जहमति= (अरबी) जहमत, विपत्ति, बीमारी। २०५
जात=सं० यात्रा, देवदर्शनके लिए जाना, देवस्थानपर होनेवाला मेला। २२८–२३०
जाव-जीव=यावज्जीव, जीवनभरके लिए। २७५
जिन-जनमपुरि-नाम-मुद्रिका=पार्श्वनाथ जिनकी जन्मनगरी बनारसीके नामकी मुद्रिका जिसने धारण की, अर्थात् जिसका नाम बनारसी है। ३
जेम=जैसे। एम-ऐसे, केम=कैसे। ये शब्द गुजरातीमें इसी अर्थमें प्रयुक्त होते हैं। ३७–४२

ट

टक-टोहे=देखे, तलाशी ली। ५०९
टेरै=पुकारै। १२०
टोइ=टोहि, खोजकर, टटोलकर। ३१७

ठ

ठठेरा = ताँबे, पीतल, काँसेके बरतन बनानेवाला, तमेरा, कँसेरा। सं० तष्टकार। २९
ठाउं=स्थान, सं० स्थाम। २१
ठाहर = जगह, ठहरनेका स्थान। २०३

ढ

ढोर = श्रीमालोंका एक गोत। पद्य ५९२ में इसी गोत्रके अरथमल्लका उल्लेख है। ७०
ढोवनी = ढोनेवाली। १५५

त

तम्बोल = ताम्बूल, पान। २२९

तखत = तख्त, राजधानी। २७

तमाइ = अरबी तमअसे बना शब्द, लोभ, परवा। १३५

तये = तपे, तचे, झुलस गए। १९

तवाला = तमारा, तवारा, नशा, बेहोशी। २४९

तहकीक = जाँच-पड़ताल। निश्चित। ३००, ३५७, ५२१

तहसीलहि दाम = दाम या पैसा वसूल करता था। ५६

ताइत = ता'वीज, ताईत (मराठी) ३६९

तांति = तन्त्री, वीणा। ५५९

ताईं = तक, पर्यन्त। ५

तुरित = त्वरित, जल्दी, तत्काल ही। ७४

तुलाई = तूल या रुईसे भरी हुई, धुनी हुई। २९२

तोइ = तोय, पानी। २९४

थ

थया = हुआ, गुजराती 'थयुँ' का खड़ा रूप। ३३१

थिति = स्थिति, आयु, जन्म। ६१, ६२

थूलरूप = स्थूलरूपमें, मोटे तौरपर। ६

द

दरदबंद = दर्दमन्द, हमदर्द, दुखी, दयालु, कोमलहृदय। १७१

दरवेस = दरवेश, भिखारी, फकीर। १९९

दानि, दानिसाहि = शाहजादा दानियाल। १३३, १४५

दिलवाली = दिल्लीवाल। ३५२

दुकूल = कपड़ा। २८४

दुविहार = खाद्य और स्वाद्यके त्यागकी प्रतिज्ञा। ४३७

दुल – दुर, मोती, नाकमें पहननेका लटकन। २१९

देहुरा = देहरा, देवगृह, मन्दिर। ६३१

दोहिता= दौहित्र, लड़कीका लड़का। ४

द्यौहरे = देहरे, देवगृहे, मन्दिरमें। २३

ध

धार, धारि = धाड़, धाटी, धाड़े मारना हमला, डकैती। १५७, २५५, ५१६

धोक = प्रणाम, पालागी, नमस्कार ४१८

न

नुकती = बेसनकी बारीक बुंदियाँ य मोतीचूर, एक मिठाई। १३६

नखासा = यों तो ढोरों या घोड़ोंके बाजारको कहते हैं, पर यहाँ बाजारका ही मतलब जान पड़ता है। ३१४, ७

नठे = भागे हुए, निकले हुए। २९

नन्हसाल = नानाका घर, ममेरा। ४५

नन्द = पुत्र। ४७५

नफर = नफ़र (अरबी), नौकर, दास। ४९८

नाम-माला = महाकवि धनंजयका संस्कृत कोश। १६९

नाल = तोप। १५४

नाल = साथमें, संगमें, साथ साथ, पूर्वी पंजाबमें विशेष प्रचलित। १०९, १३१, ४१२, ५७९

नाह = नाथ, स्वामी। २४७

निचीत = निश्चिन्त, बेफिक्र। ५२९

निदान = कारणका पता लगाना, जाँच। ५३३

निरख = निर्णय, जाँच। ५२३

नूरदी = नूरुद्दीन, जहाँगीर नूर-उद्-दीन=धर्मकी शोभा। २५९

नेवज = नैवेद्य, देवताको चढ़ानेका द्रव्य। ६०१

नौकारसहि या नौकारसी = प्रातः दो घड़ी दिन चढ़े तक भोजन न करनेकी प्रतिज्ञा लेना। ४३५

नौकरवाली = नमोकारमंत्र-जापकी माला। इसे ही दोहा १० में मंत्रकी माला कहा है। नौकरवाली एक जाप = एक बार नमोकार मंत्रकी माला जपना। ४३५

नौतन गेह करनकौ नेम = नया घर बनाने या बसानेका नियम ले लिया, कि आगे न बनाऊँगा। ५१

न्यारो = जुदा, अलग, निराला। ७०

प

पंचनवकार = पंचनमस्कार, जैनोंका प्रसिद्ध मंत्र जिसमें अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु-समुदायको नमस्कार किया जाता है, णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं। ६०

पखावज = एक बाजा, मृदंग। सं० पक्षवाद्य। ५५९

पटबुनिया = पट या वस्त्र बुननेवाला; कोरी, बुनकर। २९

१–नौकरवाली शब्द एक प्राचीन दोहेमें भी आया है—"नवकरवाली मणिअड़ा तिहिं अग्गला चियारि। दाणसाल जगडूतणी कित्ती कलिहि मझारि।" (–पुरातनप्रबंधसंग्रह।) नवकरवाली मणिअड़ा = नमोकार मंत्र जपनेकी मणियोंकी माला। अग्गला=अर्गला, ब्योंड़ा। चिआरि = खोलकर (चिआरना=खोलना)। अर्थात्—कलियुगमें जगडूशाहकी दानशालाकी कीर्ति प्रसिद्ध है। वे अपनी मणियोंकी माला दानमें देकर उसकी अर्गला खोलते हैं, अर्थात् हाथकी मणिमालाके दानसे दानशालाका आरम्भ होता है।

पटभौन = पट या वस्त्रका मकान, तम्बू, रावटी, पटमंडप। ५१

पटुवा = पटवा, रेशम या सूतमें गहने गूँथनेवाला, पटहार। पट्टवाय। २९

पठई = पठाई, भेजी। ३३२

पड़िकौना = प्रतिक्रमण, किए हुए पापोंका अनुताप करके उससे निवृत्त होना और नई भूल न हो इसके लिए सावधान रहना। जैन साधु और गृहस्थोंकी एक आवश्यक क्रिया, जो सुबह शाम की जाती है। ५१

पतिआइ=प्रतीति या विश्वास करें। ३५६

पथ=पथ्य, भोजन। २०७-३२६

पन=पण, प्रतिज्ञा। २२९-२३०-२३२

पन=पण, शर्त। ६८४

पन-पन्ना रत्न। ४४५

परचून=फुटकर, परचूरन (गुजराती)। २८३

परबाह=प्रवाह। २५

परवान=प्रमाण, परिमाण। १६

पले=पल्लेमें। ३२१

पहपहे=पौफटे, बिलकुल सवेरे। ४२३

पाइ = पैर, पाँव। २१४

पाइक = पायक, पैदल सिपाही, नौकर। ६२

पाउजा = प्रव्रजसे बना है। गौना। (पद्य १९३ में लिखा है कि सासससुरने अपनी लड़की गौने नहीं भेजी, इससे पाउजाका अर्थ गौन ही जान पड़ता है जिसके लिए वे गये थे। १८२

पाग = पगड़ी। ६०१

पाछिलौ = पिछला, पहलेका। ३८

पानिजुगल=पाणियुगल, दोनों हाथ। १

पारसी = फारसी। १३, ५२१

पास = पार्श्वनाथ। २३१

पास-जनमकौ गाँव = पार्श्वनाथका जन्म ग्राम (स्थान) वाराणसी या बनारसी। ९१

पास-सुपास = पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर। १

पिउसाल = पितृशाला, पिताका घर। ४४०

पितर = प्रेतत्वसे छूटे हुए पूर्वज। १३७

पीतिआ, पीतिया = पितृव्य, पिताका भाई, पितराई (गुजराती) ६७,१०९

पुजारा = पुजारी, पुजेरा, पूजा करनेवाला। ८७

पुब्ब पुरखा = पूर्व पुरुष। ३७

पुरकने = पुर या नगरके पास, ओर। कने बुन्देलखण्डमें इसी अर्थमें प्रचलित है। ३१

पेसकसी = पेशकश, भेंट, सौगात। ३७२

पेम = प्रेम। ५१

पैजार = पैजार (फारसी) जूता। ६०१

पोट = पोटली, गठरी । ६२
पोत = बच्चा, पुत्र । ३९४
पोत = दफा, बार । ५९१
पोतदार = पोत अर्थात् मालगुजारी, लगान । पोतदार (फारसी) लगानका रुपया जमा करनेवाला खजांची । ५०
पोसह = प्रोषध । अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्वतिथियोंमें करने योग्य जैन गृहस्थका एक व्रत । आहार आदिके त्यागपूर्वक किया हुआ अनुष्ठान । ५१
पौसाल = प्रोषधशाला, उपाश्रय, उपासरा, जैनसाधु जिसमें ठहरते हैं । १७५, १९६, २०२
पौन, पौनिया, पउनिया = ब्याह शादीके अवसरोंपर नेगके रूपमें कुछ पानेवालीं विविध पेशोंवाली शूद्र जातियाँ । २९
प्रदेस = परदेश, अन्यत्र, दूसरी जगह । २१५

फ

फरजंद = पुत्र, लड़का । ३४४
फरि = फड़पर, माल बेचनेकी जगह पर । ३९१
फारकती=फारखती, चुकती, बेबाकी । ५१
फावा = फाहा, धुनी हुई रुई, फिरते फिरते धुन गए । २९४
फैन = पानीके फेनके समान निस्सार बातें । ३७२
फोक = व्यर्थ, निस्सार । ८०

ब

बन्द = कविताका पद (फारसी) ३८६
बकसाए = फारसी बख्शसे बना है । माफ कराके । १६५
बकसीस = फारसी बख्शिश, भेंट, उपहार, इनाम । ३००
बणजै = वणिज व्यापार करता है । ३९
बनज = वाणिज्य, व्यापार । ७४
बागे = अँगरखा जैसा पुराना लम्बा पहिनावा । ३२४
बाढ़ई = बढ़ई, सुतार, लकड़ीका काम करनेवाला । २९
बारी = पत्तल-दोने बनानेवाला । २९
बाल = बाला, पत्नी । ४४०
बिंग = व्यंग । ६०५
बित्तकी सीम = धनकी सीमा या हद, बड़ा भारी धनी । २२४
बितरी = वितीर्ण कर दी, बाँट दी । २०४
बिंधेरा = मोती आदि बींधनेवाला, छेद करनेवाला । २९
बिसास = विश्वास, भरोसा । ५१
बिसाहे = खरीदे । २५४
बीझबन = बीहड़, जन-शून्य बन । ४१४
बीतिक = बीतक, घटना, बीती हुई बात । ११०
बुगचा = बुकचा (फारसी), कपड़ोंकी गठरी । ३२४

बूझत = पूछते हुए। ४०

बैंगन पच्चखान = बैंगन खानेका प्रत्याख्यान या त्याग। २७५

बौन = वमन, उल्टी, कै। ५९८

भ

भंडकला = भाँड़ों जैसी बातें करनेकी कला। ६८४

भई बात = वह बात जो हो चुकी, भूतकालकी कथा। ६

भाखसी = भाकसी, अन्ध कोठरी। ४६९

भाखौं = भाषण करूँ, कहूँ। ७

भाट = राजाओं आदिकी स्तुति करने वाला, वन्दीजन, स्तुतिपाठक, चापलूस। ४८५

भानहिं = भंग कर दें, तोड़ दें। ६१२

भारभुनिया = भड़भूँजा, भाड़में चने आदि भूँजनेवाला। २९

भोग अंतराई = भोगान्तराय नामका कर्म जिससे प्राणी प्राप्त भोगोंको भी नहीं भोग सकता। ११८

भौंहरी = भौंहरेका स्त्रीलिंगरूप। भुइंहरा, भूमिगृह (तहखाना) १४८

भौंदाइ = भौंदू या मूर्ख बना दिया। २१९

म

मंडई = मंडियाँ, थोक बिक्रीके बाजार। ३१

मकरचाँदनी = मक्र (फारसी) धोखेकी या बनावटी, चाँदनी जैसी दीखनेवाली। ४१२

मतौ मता = मत, सलाह, राय। २१४, ५३८

मया = माया, ममता, प्रेम। २९९

मरी = महामारी। २७२

मसक्कति = मशक्कत, मेहनत, कष्ट। ३६४

महघा = महार्घ, मँहगा। १०४

महासंख = महामूर्ख। २३७

माति = मत्त होकर। २०१

माट = मिट्टीका घड़ा, मटका, माटला (गुजराती) १२३

माहुर = माथुर, माहौर, वैश्योंकी एक जाति। ११९-१३१

मिही कोथली = महीन या छोटी थैली, बसनी। ५१२

मीर = अमीरका लघुरूप। शाही सरदार। ४३-१६४

मोदी = राजा या नवाबोंकी ओरसे जिन्हें भोजनादिकी तमाम आवश्यक सामग्री जुटानेका काम दिया जाता था वे मोदी कहलाते थे। १४

मुधा = व्यर्थ, झूठी। २१८

मौवास = मवास, शरणकी जगह, दुर्ग, गढ़। १६१-४७१

म्यान = मियान (फारसी), कमर, मध्यभाग, बीचमें। ३१९

मौठिया = श्रीमालोंका एक गोत। ४७५

र

रंगदाल = रंगसाज़, रंगरेज़। २९

रखपाल = रक्षपाल, रक्षक, ठाकुर, राजा। १०
रदी = रद्दी (अरबी), निकम्मी, बेकार। २६७
रफीक = रफ़ीक़ (अरबी), साथी, सहायक, मित्र। ३१०
रवनीक = रमणीय, सुन्दर। २६
राज = ईंट-पत्थर आदिसे घर बनानेवाला, थवइ (सं० स्थपति) २९
राती = रक्त, लाल। १३०
रास = रास्त, दुरुस्त, ठीक। ५३४
रासि = राशि, धन। ४०७
रूधी=रुद्ध कर दीं, बन्द कर दीं। १५३
रेजपरेजी = छोटी-मोटी फुटकर चीजें। २२४
रैंनि = रजनी, रात। ७१
रोक = रोकड़ा, नक़द. रोख (मराठी)। १४५

ल

लखेरा = लाखकी चूड़ियाँ वगैरह बनानेवाला। २९
लगन = लग्नपत्रिका १०३
लघु-कोक = छोटा काम-शास्त्र, कोक्काक पंडितकृत १६९
ल्टाकुटा = डंडे कुंडे, बोरिया बँधना। लटा = तुच्छ। कुटा = छोटा टुकड़ा ३३४
लहुरा = लघु. छोटा। ५२७
लार = पीछे पीछे, साथ। ५३५
लाहनि = लाहण, लाण, भाजी, आदि चीजें जो बिरादरीमें बाँटी जाती हैं। ४८८, ५९०
लेखा = हिसाब, गणित। ९८

व

वसुधा-पुरहूत = पृथ्वीका इन्द्र, बादशाह अकबर। १३३
बार = द्वार, फाटक। ४९९

स

संखोली = छोटा शंख। २१९
संगतरास = संगतराश (फारसी), पत्थर काटकर उसकी चीजें बनानेवाला। २९
संघ चलायौ = तीर्थयात्राके लिए बहुतसे सधर्मिओंको लेकर चलना। ५८
सकृत = एक समय, एक साथ। ४४६
सकार = सकाल, सवेरे, जल्दी, सकारें (बुन्देली) २९९
सजोष = योषा या स्त्रीके सहित, सस्त्रीक। ६४६
सनातरबिधि = स्नात्रविधि, स्नान या अभिषेककी क्रिया। १७६
सपतखने = सप्त या सात खंडके मकान। ३०
सरदहन = श्रद्धान, विश्वास। ६३७
सरियत = शर्त। ५२४
सरियति = शरीअत, इस्लामी कानूनको कहते हैं। शायद यहाँ कानून-

की जगह कचहरीसे मतलब है। ३००, ५२४

सलेम = सलीम, जहाँगीर। २५८,

सात खेत = दानके सप्त क्षेत्र—जिन प्रतिमा, जिनागम और मुनि-आर्यिका श्रावक-श्राविका रूप चार संघ। ४८६

साधै पौन = पवनका साधना, नाकके आगे उँगली रखकर श्वास खींचना। प्राणायाम। ८९

सामा, साम = सामान, डौल, तैयारी। ३३७—४१

सारंग-छाग-नंदावत-लच्छन = हरिण, बकरा और नन्द्यावर्त, ये शान्ति, कुन्थु और अरनाथके चिह्न हैं। ५८३

साहिब साह किरान = शाहजहाँ। ६१७

सिकलीगर = तलवार, छुरी आदि हथियारोंको तेज करनेवाला, उन-पर बाढ़ या सान चढ़ानेवाला। २९

सिखर = सम्मेदशिखर, पारसनाथ पर्वत। २२५

सिताब=शिताब (फारसी), जल्दी। ४९६

सिफथ = सिफत (अरबी), विशेषता, गुण। १

सिवमती = शैव, शिवके भक्त, शैवमतके उपासक। ७५

सिवमारग = मोक्षका मार्ग। २

सीर = साझेमें। ६८, ३५४

सीरनी = शीरीनी (फा०), मिठाई। १३६

सीसगर = सीसागर, काचकी चीजें बनानेवाले। कँचेरे। २९

सुकीउ = स्वकीय, अपने। ६६८

सुध = खबर। ३३२

सुखुन = सुखन (फारसी), बातचीत, बात। ५६८

सुपिनन्तर=स्वप्नांतर, स्वप्नमें। ९०

सूत = सूत्र, सिलसिला। ३३१

सोग = शोक, दुःख। ११

सोवण्ण = सुवर्ण, सोना। ४६

सौंज = सामग्री। २८५, २८६

सौरि = सौड़, रिजाई। २१२

सुतबोध = श्रुतबोध, छन्दशास्त्रका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ। १७७

ह

हंडवाई = सोना-चांदी। २५३, ३३४

हटवानी = हाट या बजारमें सौदा बेचनेवाले। २५२

हमाल = हम्माल (अरबी), मजदूर, कुली। ६२

हलबले = हलबलाये, घबड़ाये। ३०४

हवाईगर = हवाईगीर, आतिशबाजी बनानेवाला। २९

हिंदुगी = हिन्द देशकी स्थानीय भाषाके लिए मुसल्मानोंद्वारा रक्खा हुआ नाम। इसे ही जाय-सीने हिन्दुई कहा है। १३

हेच = (फारसी) तुच्छ, हीन, निकम्मी। ५९४

हेठ = नीचे। २०७

हेम खेम = क्षेमकुशल। ३७९

—*—